ਕੋਂਪਲੇਂ ਫਿਰ ਫੂਟ ਆਈਂ

ਭਗਵਾਨ ਸ਼੍ਰੀ ਰਜਨੀਸ਼

रजनीशधाम प्रकाशन

संकलन-संपादन
मा अमृत साधना
स्वामी चैतन्य कीर्ति

संयोजन
स्वामी नरेन्द्र बोधिसत्व

साज-सज्जा : **स्वामी आनन्दमूर्ति**
आवरण-सज्जा : **स्वामी आनन्द जयेश**
छायाकार : **स्वामी प्रेम प्रभु**

फोटोटाइप सेटिंग : **पेस सेटर्स, १३०३, सदाशिव पेठ, पूना-४११ ०३०**

प्रकाशक
स्वामी आनन्द स्वभाव
प्रेसीडेंट, रजनीशधाम १७ कोरेगांव पार्क,
पूना ४११ ००१ (महाराष्ट्र)

मुद्रक
संजय बोथरा
सुपर कार्टन्स वडगांव शेरी
पूना ४११ ०१४ (महाराष्ट्र)

प्रथम संस्करण : **११ दिसम्बर, १९८६,**
प्रतियां : ५५००

मूल्य : **३० रुपये**

अनूठी और अद्वितीय जीवन-शैली

भारत ने ध्यान के शिखर छुए। यही भारत का दुर्भाग्य हो गया। कभी-कभी सौभाग्य दुर्भाग्य बन जाता है। मुझसे पश्चिम में वैज्ञानिकों ने, डाक्टरों ने, सर्जनों ने, संगीतज्ञों ने, साहित्यकारों ने, न मालूम कितने लोगों ने यह पूछा कि जब भी हम भारत आपसे मिलने आये तो भारतीय लोगों ने, जो हमसे परिचित थे, जिनके यहां हम मेहमान हुए थे, हमारी हंसी उड़ाई, खिल्ली उड़ाई-- क्या तुम ध्यान के पीछे पड़े हो! क्या रखा है ध्यान में? सारा पूरब तो पश्चिम जा रहा है सीखने विज्ञान। और तुम भी एक छटे पागल हो -- तुम्हें धुन चढ़ी है ध्यान की! और हमने इस देश में ध्यान के बड़े-बड़े शिखर भी देखे तो क्या फायदा हुआ? लोग तो भूखों मर रहे हैं। तुम्हें भी भूखों मरना है? अभी भी लौट जाओ। कुछ बिगड़ा नहीं।

भारत के मन में -- वह जो विशाल भारत की जनता है उसके मन में -- ध्यान की जगह और चीज़ों ने ले रखी है। धन में उसे रस है, पद में उसे रस है, प्रतिष्ठा में उसे रस है। और आज पश्चिम में ध्यान के प्रति विराट रस पैदा हुआ है।

संन्यासियों ने जो कम्यून अमरीका में खड़ा किया था, उसको अमरीका की सरकार के मिटाने के पीछे और कोई राज नहीं, सिर्फ एक राज था। और वह राज यह था कि कम्यून

अमरीका की प्रतिभा को अपनी ओर आकर्षित कर रहा था। जितने प्रतिभाशाली लोग थे, वे किसी न किसी रूप में कम्यून के प्रति आकर्षित हो रहे थे। और कम्यून--एक भय अमरीका की सरकार के मन में पैदा करने लगा कि अगर लोग इस तरह बैठकर शांत ध्यान करने लगे तो तीसरे महायुद्ध का क्या होगा? अगर लोग ध्यान से भर कर प्रेम से भर गये तो वह जो अमरीका का साम्राज्य सारी दुनिया में फैला हुआ है, उसका क्या होगा? अगर लोगों के मन में पद, प्रतिष्ठा और धन की दौड़ न रही, तो अमरीका की जो आज ताकत है, डालर, वह हवा में विलीन हो जायगा। एक छोटी सी कम्यून पांच हजार लोगों की, उनके लिए इतनी ज्यादा कष्टप्रद हो गई कि उसे हर हालत में मिटाना है, उसे बिलकुल नेस्तनाबूद कर देना है। बुलडोजर चलवा कर, जहां कम्यून था वहां पुराना रेगिस्तान वापिस ले आना है। रेगिस्तान को हमने पांच साल मेहनत करके एक मरूद्यान बना दिया था। उस मरूद्यान को मिटा देना है।

जिस दिन मैं कम्यून में पहले दिन पहुंचा था, वहां एक पक्षी नहीं था। ऐसा प्रतीत होता है कि पक्षी और जानवर आदमी से ज्यादा समझदार हैं। धीरे-धीरे पक्षी आने शुरू हो गये। धीरे-धीरे हिरणों के झुण्ड के झुण्ड आने शुरू हो गये। और हिरण तुमने भी देखे होंगे। मैंने भी देखे हैं। लेकिन कम्यून में हिरणों ने जो समझ दिखलाई, वह हैरानी की थी। बीच रास्ते पर खड़े होंगे, तुम कार का हार्न बजाए जाओ, वे हटने वाले नहीं। उन्हें मालूम है कि ये उन लोगों की जमात है, जो किसी को चोट नहीं पहुंचाते। उतरो नीचे गाड़ी से, धक्के दो उनको, तब वे रास्ता छोड़ेंगे। और चूंकि अमरीका में हिरणों को मारने के लिए हर साल दस दिन के लिए छुट्टी मिलती है। उन दस दिनों में जितने हिरण तुम्हें मारने हो, मार सकते हो। तो आसपास जितने दूर-दूर से हिरण आ सकते थे, वे सब कम्यून में आ गये। कम्यून के पास जगह थी। कोई 126 वर्गमील जगह थी। हजारों हिरण अपने आप चले आये। जैसे कोई आंतरिक संदेश है कि यहां कोई फिक्र नहीं। यहां उन्हें कोई पत्थर भी मारने वाला नहीं है। यहां उन पर गोली नहीं चलेगी।

कम्यून ने अमरीका का कोई भी नुकसान नहीं किया था। सिर्फ एक मरुस्थान को जीवित मरूद्यान बनाया। लेकिन यही तकलीफ की बात हो गई, क्योंकि जो लोग वहां थे, वे ध्यान के लिए इकट्ठे हुए थे। और अगर ध्यान अमरीका की प्रतिभा को पकड़ ले-- और निश्चित पकड़ लेगा, कम्यून के मिटने से कोई फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि अमरीका ठीक उस अवस्था में है, जो हमसे उल्टी है। उन्होंने धन के शिखर छू लिए हैं। अब धन में वहां आकर्षण नहीं है। इसलिए ऊपर से तुम्हें दिखाई पड़ता है कि उनके पास इतना धन है। लेकिन धन में वहां किसी को आकर्षण नहीं है। कम्यून में ऐसे संन्यासी थे, जिन्होंने एक करोड़ रुपया दान दे दिया, जो कि उनकी पूरी सम्पत्ति थी। एक पैसा भी पीछे नहीं बचाया कि कल क्या होगा। दो सौ करोड़ रुपये कम्यून के बनाने में सिर्फ संन्यासियों ने दिये। हमने किसी और के सामने हाथ नहीं फैलाया और न किसी से भीख मांगी। दो सौ करोड़ रुपये देते वक्त किसी ने किसी से कोई आग्रह नहीं किया... लोगों के पास पैसा है। और यह भी समझ में आ गया कि पैसे से जो भी खरीदा जा सकता है, वह दो कौड़ी का है। कुछ और भी है, जो पैसे से नहीं खरीदा जा सकता है। और अब उसी की तलाश है, उसी की प्यास है, उसी की खोज है, उसी की अभीप्सा है। ध्यान उस सबका इकट्ठा नाम है। उसमें प्रेम जुड़ा है। उसमें करुणा जुड़ी है। ध्यान तो एक मंदिर है, जिसके बहुत द्वार हैं। उसमें वह सब जुड़ा है, जो पैसे से नहीं खरीदा जा सकता।

पश्चिम में अपूर्व रूप से ध्यान के प्रति आकर्षण है, क्योंकि पश्चिम ने कभी भी ध्यान के शिखर नहीं छुए -- न कोई गौतम बुद्ध, न कोई कबीर, न कोई रैदास। पश्चिम की आत्मा खाली है। हाथ भरे हैं, प्राण शून्य हैं। इस स्थिति ने पश्चिम के मन में धन के प्रति एक विकर्षण पैदा कर दिया और भारत में ध्यान के प्रति एक विकर्षण पैदा कर दिया।

जिन्दगी का चक्र बहुत अद्‌भुत है। इस बात का बहुत डर है कि पूरब पश्चिम हो जाए और पश्चिम पूरब हो जाए।

भारतीय पार्लियामेण्ट में विरोधी पार्टी के नेता के द्वारा पूछे गये प्रश्न के उत्तर में संबंधित मंत्री ने जवाब दिया था कि भगवान को या उनके किसी संन्यासी को भारत आने से नहीं रोका जाएगा। यह अफवाह कि उनके संन्यासियों को भारत आने से रोका जाएगा, झूठी है। मैंने कुछ संन्यासियों को अलग-अलग देशों में भारतीय राजदूतावासों में भेजा। एथेन्स में राजदूतावास में पूछा गया कि भारत किसलिए जाना चाहते हो? तो जो संन्यासिन वहां गई थी, उसने कहा ध्यान करने के लिए। और तुम हैरान होओगे कि उत्तर राजदूत ने यह दिया कि ध्यान, योग इत्यादि के लिए अब भारत में कोई स्थान नहीं। हमें इस तरह के यात्री नहीं चाहिये।

जो युवती गई थी, उसे मैंने खबर की कि तुम राजदूत से कहो कि हमें लिखित उत्तर चाहिए। यह जो तुम कह रहे हो, वह लिखित दो। मगर भारत की नपुंसकता ऐसी है कि लिखने की हिम्मत भी नहीं, कि यह लिखकर हम नहीं देंगे! क्योंकि मैं चाहता था कि लिखित उत्तर हो तो हम साबित कर सकेंगे कि पार्लियामेण्ट में जो मिनिस्टर बोला, वह झूठ बोला। यहां रोज पुलिस सुबह से लेकर शाम तक चक्कर मार रही है। दिन में

चार-चार, पांच-पांच बार व्यर्थ सूरज प्रकाश को परेशान कर रहे हैं-- कि यहां कितने विदेशी ठहरे हुए हैं? अगर तुम्हें विदेशियों को मेरे पास आने देने से कोई एतराज नहीं है, यह तुम पार्लियामेण्ट में कहते हो तो कुछ तो ईमान रखो। फिर यहां पुलिस भेजने की क्या जरूरत? और विदेशियों से तुम्हें इतनी घबड़हट क्या है? अगर वे ध्यान सीखने भारत आ भी रहे हैं तो तुम्हारी तो उनके धन पर नजर होनी चाहिये। तुम्हें तो ध्यान से कुछ लेना-देना नहीं है। आ रहे हैं तो कुछ धन खर्च करके ही जाएंगे। तो भारत के भिखमंगों की झोली में कुछ पैसे डालकर ही जाएंगे।

लेकिन नहीं। कारण यह है कि अमरीका जोर दे रहा है कि भारत किसी को भी ध्यान सीखने के लिए न आने दिया जाए। क्योंकि पश्चिम में एक घबड़ाहट है और वह घबड़ाहट यह है कि अगर लोग ध्यान में उत्सुक हो जाएं तो वह जो फिजूल के कामों में उनको लगा रखा है, उनमें उनकी अरुचि हो जाएगी। एक अजीब हालत है दुनिया की। पश्चिम की आकांक्षा है कि ध्यान की यात्रा करे। वहां की सरकारें उस आकांक्षा को रोकने की पूरी चेष्टा कर रही हैं। यहां पूरब ने ध्यान के आकाश को छुआ है, वह हमारी वसीयत है। सरलता से हम उसे वापिस उपलब्ध कर सकते हैं। लेकिन हम अपनी वसीयत को इन्कार कर रहे हैं! हम जैसे अंधों की दुनिया और दूसरी शायद ही हो। और खास कर मेरे पास किसी को आने से रोकना निहायत अपराध है। क्योंकि मैं संन्यास को संसार-विरोधी नहीं मानता और न ही ध्यानी को चाहता हूं कि घर-द्वार छोड़कर हिमालय भाग जाए।

मेरी चेष्टा इतनी भिन्न है पुरानी चेष्टाओं से कि शायद भारत के राजनीतिक नेता, या पश्चिम के राजनीतिक नेता उसे समझने में समर्थ भी नहीं हैं। मेरी चेष्टा है कि तुम दोनों यात्राओं पर एक साथ जा सकते हो। क्योंकि दोनों यात्राएं एक-दूसरे की दुश्मन नहीं हैं। ध्यान तुम्हें भीतर ले जाता है और जितने तुम भीतर जाते हो, उतनी ही तुम्हारी प्रतिभा निखरती है। और जितनी तुम्हारी प्रतिभा निखरती है, उतनी तुम बाहर की दुनिया में सफलता की यात्रा कर सकते हो। मैं बाहर और भीतर को दुश्मन नहीं मानता। वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इसलिए न तो भारत की सरकार को मुझसे डरने की जरूरत है और न अमरीका या यूरोप की सरकारों को मुझसे डरने की जरूरत है। मुझसे तो उन्हें बिलकुल निर्भय होना चाहिए। सच तो यह है कि अगर वे मुझे रोकते हैं तो वे अपनी-अपनी कौम और अपने-अपने राष्ट्र के साथ गद्दारी कर रहे हैं। और उन लोगों के हाथों में उन्हें धकेल रहे हैं, जो जीवन-विरोधी हैं। वे जो चाहते हैं, उससे उलटा ही परिणाम होगा। उन्हें मेरी अनूठी और अद्वितीय जीवन-शैली का कोई अंदाज नहीं। मैं यह कह रहा हूं कि ठीक संसार में रहते हुए तुम ईश्वर के मंदिर बन सकते हो और फिर मंदिर जितना सुंदर बन सके, सोने का बन सके, हीरे-जवाहरातों से जड़ा हुआ बन सके, उतना अच्छा।

मेरे भीतर कोई विरोध नहीं है बाहर और भीतर में। हां, अतीत में यह बात सच थी कि जो लोग बाहर रहने के लिए उत्सुक थे, वे भीतर का विरोध करते थे। उनके दिन लद गये। अब उनके मरे हुए संस्कारों को क्यों ढो रहे हो? और क्या दुनिया में कोई नई बात नहीं होने दोगे?

मेरा प्रयोग नया है। इसे किसी पुराने प्रयोग से जोड़ने की कोई जरूरत नहीं। मैं चाहता हूं प्रत्येक व्यक्ति सर्वांगीण रूप से समृद्ध हो। भीतर भी स्वर्ग का साम्राज्य हो और बाहर भी।

(इसी पुस्तक में से)

अनुक्रम

आत्मा की अग्नि

पहला प्रवचन : ३१ जुलाई, १९८६, ३.३० अपराह्न, सुमिला, जुहू, बम्बई

प्रश्न : भगवान, आप कैसे हैं ?

मैं तो वैसा ही हूं। और तुम भी वैसे ही हो। जो बदल जाता है वह हमारा असली चेहरा नहीं है। वह हमारी आत्मा नहीं है। जो नहीं बदलता, न जीवन में न मृत्यु में, वही हमारा यथार्थ है। हम लोगों से पूछते हैं, कैसे हो। नहीं पूछना चाहिए। क्योंकि हमने स्वीकार ही कर लिया पूछने में--बदलाहट को, परिवर्तन को, बचपन को, जवानी को, बुढ़ापे को, जीवन को, मौत को।

कुछ है तुम्हारे भीतर जिसका तुम्हें भी पता है। बचपन में भी यही था और नहीं जन्मे थे तब भी यही था। गंगा में बहुत जल बहता गया लेकिन तुम किनारे खड़े हो और वही हो। तुम दिखाई भी न पड़ोगे कल तो भी वही रहोगे। नये होंगे रूप, नयी आकृतियां, शायद तुम अपने को भी पहचान न पाओ। नये होंगे नाम, नया होगा परिचय, नया होगा वेष, फिर भी मैं कहता हूं तुम वही होओगे। तुम सदा से वही हो और तुम सदा वही रहोगे। इस सदा सनातन, शाश्वत को चाहो तो ईश्वर कहो, चाहो तो तुम्हारी सत्ता कहो--इस पर बहुत लहरें आती और जाती हैं, पर समंदर वही है।

बदलाहट झूठ है। लेकिन हमने बदलाहट को सच माना हुआ है और उसे संसार बना लिया है। काश, हम समझ सकें कि बदलाहट झूठ है तो चोर और साधु में कोई फर्क न

रह जाये, क्योंकि दोनों के भीतर जो है वह न तो चोर है और न साधु है, तो हिन्दू और मुसलमान में कोई फर्क न रह जाये। उनकी भाषाएं अलग होंगी लेकिन उनकी भाषाओं के भीतर छिपा एक साक्षी भी है। उनके कृत्य अलग होंगे, लेकिन उन कृत्यों के पीछे छिपा भी कुछ है, जो सदा वही है। और उस सनातन की तलाश ही धर्म है।

पूछना चाहिए लोगों से : ''बदले तो नहीं हो ?'' मगर उलटा है संसार, उलटे हैं उसके नियम, ऊलजलूल हैं उसकी बातें। और चूंकि भीड़ उनको मान कर चलती है, दूसरे भी उनको स्वीकार कर लेते हैं। अपने चेहरे को तुम देखते हो दर्पण में तो सोचते हो तुमने अपने को देख लिया। काश, इतना आसान होता तो सभी को आत्मदर्शन हो गया होता। सुनते हो अपना नाम तो सोचते हो तुम्हें अपना नाम पता है। बात इतनी सस्ती होती तो दुनिया में धर्म की कोई जरूरत न थी। वह नाम तुम्हारा नहीं है, उधार है और बासा है। आये थे तुम बिना नाम के और जाओगे तुम बिना नाम के।

हम जब मुर्दे को ले जाते हैं मरघट की तरफ तो कहते हैं: राम नाम सत्य है। उस आदमी का नाम जो मर गया कोई नहीं कहता। और जिन्दगी भर वही सच था, आज अचानक झूठ हो गया। पैदा हुआ तब बिना नाम के पैदा हुआ था और मरा है तो राम के नाम को सच कर गया और अपने नाम को झूठ कर गया। जिन्दगी भर 'राम नाम सत्य है' और हर पल, हर घड़ी आदमी अर्थी पर सवार है। किसी भी पल तुम्हारी यात्रा मरघट की तरफ शुरू हो सकती है।

अंग्रेजी में कहावत है: मत पूछो कि चर्च की घंटियां किसके लिए बजती हैं। क्योंकि जब कोई मरता है तो चर्च की घंटियां बजती हैं पूरे गांव को खबर देने को। कहावत है कि मत पूछो कि घंटियां किसके लिए बजती हैं। घंटियां सदा तुम्हारे लिए बजती हैं, मरता कोई भी हो। अर्थी हमेशा तुम्हारी निकलती है, भला अर्थी लेकर ही तुम क्यों न चल पड़े होओ। अर्थी पर जलती हुई लाश तुम्हारी होती है, भला अर्थी को आग तुमने ही क्यों न दी हो।

जीवन की सबसे बड़ी दुविधा यही है कि हमने उसमें बदलते हुए को सच मान लिया है और जो ठहरा हुआ है उसे बिल्कुल भूल गये हैं।

मैं तो वही हूं। कुछ और होने का उपाय नहीं है। चाहो भी तो कुछ और हो नहीं सकते हो। जिन्दगी भर कोशिश तो करते हो कुछ हो जाने की। सारी महत्वाकांक्षाएं, सारी दौड़-धूप एक ही तो है कि कुछ हो जाऊं। और सारे जीवन का दुर्भाग्य क्या है ? कि कोई भी कुछ नहीं हो पाता। और आश्चर्य कि तुम जो थे, सदा थे, कितने ही भागे, कितने ही

दौड़े, फिर भी वही रहे। लेकिन अन्तिम समय तक भी लोगों को इसका होश नहीं आता। जिस दिन इस बात का होश आ जाए कि मुझे कुछ होना नहीं है, मुझे सिर्फ उसे खोज लेना है जो मैं हूं--तुम्हारे जीवन में क्रान्ति का क्षण आ गया; तुम्हारे जीवन में परमात्मा की घड़ी आ गई; तुम मन्दिर के द्वार आ गये, अब तुम्हारी अर्थी नहीं उठ सकती; अब तुम्हारा नाम नहीं बदल सकता। अब सदियां आएंगी और जाएंगी, तारे ऊगेंगे और डूबेंगे, लेकिन तुम्हारा होना उस जगह पहुंच गया जहां सब थिर है, सब शांत है, सब मौन है, कोई हलचल नहीं, कोई लहर नहीं, कोई तरंग नहीं। इस निस्तरंग संगीत का नाम समाधि है। इस शून्य हो जाने का नाम सत्य हो जाना है।

मेरे पास लोग आते हैं कुछ होने के लिए और मेरी मुसीबत है कि मैं उन्हें मिटाना चाहता हूं ताकि वे वही बच रहें जो हैं। वह अस्तित्व का दान है। और जो हम बना लेते हैं वे रेत पर बनाये हुए घरौंदे हैं : हवा का जरा-सा झोंका और घर गिर जाते हैं। पानी पर खींची गई लकीरें हैं : तुम बना भी नहीं पाते और मिट जाती हैं। मगर तुम बनाये चले जाते हो। तुम लौटकर भी नहीं देखते कि तुम्हारा बनाया सब मिट जाता है, सब खो जाता है।

और एक बार नहीं हजार बार, और एक जन्म में नहीं हजारों जन्मों में तुमने यही किया है। कब तक यही करोगे ? भूल कोई एक बार करे, क्षम्य है; दुबारा, अक्षम्य हो जाती है। मगर हम तो हजारों बार कर चुके हैं। अब तो हम भूल ही करना जानते हैं। अब तो हम भूल के ही चक्र में घूमना जानते हैं। और इतनी भूलें और ऐसी भीड़ भूलों की कि उसमें जो खो जाता है वह तुम्हारा असली अस्तित्व था।

जिस दिन से मैंने अपने को पहचाना है, उस दिन से कोई परिवर्तन नहीं पाया है। सब बदल गया है, रोज बदलता जायेगा, लेकिन भीतर कोई चुपचाप खड़ा--स्वास्थ्य में और बीमारी में, सफलता में और असफलता में--बिल्कुल वही है।

अमरीका की जेलों में मुझे बहुत सारे अनुभव हुए जो शायद जेल के बाहर नहीं भी होते, क्योंकि करीब-करीब पांच जेलों में मुझे रखा गया--बिना कारण, बिना किसी जुर्म के। लेकिन शायद मैं गलत हूं, मैं जिसे जुर्म नहीं समझता हूं वे उसे जुर्म समझते हैं। सोचना जुर्म है, शान्त होना जुर्म है, मौन जुर्म है, ध्यान जुर्म है। सत्य शायद इस दुनिया में सबसे बड़ा पाप है। वे उसकी ही मुझे सजा दे रहे थे। लेकिन उनकी तकलीफ यह थी जो कि हर जेलर ने मुझे अपनी जेल से छोड़ते वक्त कही कि हजारों कैदी हमारी जेल से गुजरे हैं लेकिन एक बात जिसने हमें सोने नहीं दिया वह यह कि हम तुम्हें सता रहे हैं और तुम मजा ले रहे हो। मैंने उनसे कहा कि तुम्हारी समझ के बाहर है क्योंकि तुम जिसे सता रहे हो

वह मैं नहीं हूं और जो मजा ले रहा है वह मैं हूं। मैं देख रहा हूं नाटक को जो मेरे चारों तरफ चल रहा है। और जब जेल के बाहर पत्रकार मुझसे पूछते कि आप कैसे हैं तो मैं उनसे कहता कि ठीक वैसा जैसा हमेशा से था, तो अमरीकी पत्रकार की समझ के बाहर था। वह कहता कि जेल में और जेल के बाहर आपको कोई फर्क समझ में नहीं आता? मैं उनसे कहता जेल में और जेल के बाहर तो बहुत फर्क है मगर तुमने कुछ और पूछा था। तुमने मेरे बाबत पूछा था, जेल की बाबत नहीं पूछा था। जेल के भीतर और जेल के बाहर मैं वही हूं। जेल में फर्क है और जेल के बाहर फर्क है। हथकड़ियों में बंधा हुआ भी मैं वही हूं और हथकड़ियों से छूट जाऊंगा तो भी वही हूं। हथकड़ियां मुझे कैसे बदल सकती हैं? और जेल की दीवारें मुझे कैसे बदल सकती हैं?

आखिरी जेल से निकलते वक्त उस जेल के प्रधान ने मुझसे कहा कि यह मेरे जीवन का अनूठा अनुभव है। मैंने जेल में लोगों को प्रसन्न तो आते देखा है, प्रसन्न जाते नहीं देखा। तुम जैसे आये थे वैसे ही जा रहे हो। राज क्या है?

मैंने कहा: वही तो मेरा जुर्म है कि मैं लोगों को वही राज समझा रहा था। तुम्हारी सरकार और दुनिया की कोई सरकार नहीं चाहती कि वह राज लोग समझ जायें। क्योंकि उस राज के समझते ही सरकारों की सारी ताकतें तुम्हारे ऊपर से समाप्त हो जाती हैं। जेल बेकार हो जाती है, बन्दूकें बेमानी हो जाती हैं, बिना चले हुए कारतूस चले हुए कारतूस हो जाते हैं। आग फिर तुम्हें जलाती नहीं और तलवार फिर तुम्हें काटती नहीं। इसलिये जो लोग तलवार और आग के ऊपर तुम्हारी छाती पर सवार हैं वे नहीं चाहते कि तुम पहचान सको कि तुम कौन हो। उनकी सारी ताकत नष्ट हो जाती है। तुम्हारी पहचान उनकी मौत है। और यह आश्चर्यजनक नहीं है कि सदियों में जब भी कभी किसी आदमी ने तुम्हें तुम्हारी याद दिलाने की कोशिश की है तो सरकार आड़े आ गई है, न्यस्त स्वार्थ आड़े आ गये हैं।

सुकरात को जहर देते वक्त जो जुर्म उसके ऊपर आरोपित किये गये थे, वे जुर्म थे कि वह लोगों को अनैतिक होना सिखा रहा है। वह केवल लोगों को यही सिखा रहा था कि तुम कौन हो। लेकिन नीति के ठेकेदारों का लगता था कि अगर लोग जान लें कि वे कौन हैं तो फिर उनकी ठेकेदरी का क्या होगा।

तो मत किसी से पूछना कभी कि तुम कैसे हो। यही पूछना कि पहचान पाये अभी तक उसको या नहीं जो कभी नहीं बदलता। और ऐसे लोगों की संख्या बढ़ानी है दुनिया में जो कभी नहीं बदलते। वे ही नमक हैं इस जमीन के। वे ही सारभूत हैं। उनका होना ही सार्थक

है। उन्होंने ही अस्तित्व के ऋण को चुका दिया है जिन्होंने अस्तित्व को पहचान लिया है।

कोई भी प्रश्न हों...हूं...हूं... सभी प्रश्न नासमझी के होते हैं इसलिए झिझक न करना। समझदारी का तो कोई प्रश्न होता ही नहीं। लेकिन नासमझी के प्रश्न पूछते-पूछते आदमी समझदार हो जाता है।

प्रश्न : भगवान श्री, मुझे मार्गदर्शन दीजिए... (हंसी की लहरें...)

भद्रा, थोड़ी तो नासमझी दिखा! हूं... हूं... हूं... हूं... हूं...?

प्रश्न : आप कहते हैं हम नासमझ हैं, हम बेहोश हैं। आप हमें ऐसा कहिए कि तुम बेहोश हो, तुम नासमझ हो। अभी मौका आया है भगवान कि आप हमें भी तुम कह कर बुला सकते हो।

मैं समझा... मैं जानकर ही कहता हूं कि हम नासमझ हैं क्योंकि जैसे ही मैं अपने को तुमसे अलग करता हूं, तुम्हारा दुश्मन हो जाता हूं। और अभी जहर पीने की जल्दी नहीं है। और पागलों के बीच बेहतर है कि अपने को भी पागल समझो। मेरा धन्धा थोड़ा कठिन धन्धा है। यह अन्धों की दुनिया में चश्मे बेचने का धन्धा है। और अन्धों से यह कहना कि मेरे पास आंखें हैं और तुम अन्धे हो, खतरनाक है। अन्धों की भीड़ है--अन्धाधुन्ध भीड़ है! और कोई अन्धा आदमी यह पसन्द नहीं करता कि कोई अपने को आंख वाला कहे और उसको अन्धा कहे, और जबकि उसका बहुमत है।

वैसा हुआ। साउथ अमरीका के एक छोटे से पहाड़ी इलाके में तीन सौ लोगों का एक कबीला था इसी सदी के प्रारंभ में। यह ऐतिहासिक घटना है। वे तीन सौ ही आदमी अन्धे थे। यह बहुत आश्चर्यजनक बात है। बच्चे आंख वाले पैदा होते थे लेकिन चार महीने के भीतर, छह महीने के भीतर अन्धे हो जाते थे। उस इलाके में एक मक्खी है जिसके काटने से बच्चे अन्धे हो जाते हैं। अगर छह महीने तक वह मक्खी बच्चों को न काटे तो उनकी आंखें बच सकती हैं, फिर वे मजबूत हो जाते हैं। छह महीने तक वे इतने कमजोर होते हैं कि मक्खी उनकी आंखों को नष्ट कर देती है। मगर वह मक्खी इतनी बड़ी तादाद में है उस घाटी में कि कोई बच्चा बच नहीं सकता।

एक वैज्ञानिक ने जब यह खबर सुनी तो वह खोज में गया कि बात क्या है, क्योंकि तीन सौ आदमी पूरे के पूरे अन्धे हों यह अचम्भा है। और उसने अध्ययन किया और देखा कि हर बच्चा आंख वाला पैदा होता है लेकिन जब तक वह आंख वाला होता है तब तक बोल नहीं सकता। और छह महीने लम्बा समय है और मक्खी बहुतायत से

है--आम, घर-घर में। तो छह महीने के भीतर वह उसे अन्धा कर देती है। जब तक वह बोलने योग्य हो पाता है तब तक अन्धा होता है। जब तक आंख होती है तब तक बोल नहीं सकता। इसलिए उस कबीले को पता ही नहीं है कि आंख जैसी कोई चीज होती है।

इस वैज्ञानिक युवक को भी मक्खी काटती थी लेकिन यह तो छह महीने से बहुत आगे जा चुका था। इस पर मक्खी के जहर का कोई असर नहीं होता था। और इसने निर्णय किया कि किसी भी तरह इस मक्खी को नष्ट करना है। और वह चकित हुआ देखकर कि ये तीन सौ अन्धे लोग बिना आंखों के भी काम चला लेते हैं। छोटी-मोटी खेती-बाड़ी भी कर लेते हैं। अपने भोजन के लायक इन्तजाम भी कर लेते हैं। कठिनाई से और मुश्किल से। मगर अगर यही जिन्दगी है तो किया भी क्या जा सकता है? हम सब भी यह कर रहे हैं। कितनी ही मुश्किल हो, कितनी ही परेशानी हो, कितनी ही झंझट हो, करें भी तो क्या करें? यही जिन्दगी है। और चारों तरफ सभी लोग इसी जिन्दगी में जी रहे हैं।

उस मक्खी का अध्ययन करते-करते उस युवक का मन एक अन्धी युवती पर आ गया। सुन्दर थी, सिर्फ आंखें न थीं। उसने कबीले के प्रमुख से उस युवती से शादी करने की प्रार्थना की। और तुम जानते हो, कबीले के प्रमुख ने क्या कहा? कबीले के प्रमुख ने कहा पहले तुम यह भ्रम छोड़ दो कि तुम आंखवाले हो। क्योंकि यह बात न कभी देखी न कभी सुनी। ये झूठी बातें छोड़ दो। विवाह की आज्ञा मिल सकती है लेकिन एक ही शर्त पर कि हम जिन्हें तुम आंखें कहते हो उन्हें फोड़ देंगे। तुम अंधे होने को राजी हो, विवाह हो सकता है। तब तुम हमारी जाति के हो गये। तुम सोच लो। और अगर तुम आंखेंवाले ही रहना चाहते हो तो हमें माफ करो। तुम किसी और दुनिया के आदमी हो, हमारी जाति के नहीं। कल सुबह अपना निर्णय बता देना।

रात भर वह सोचता रहा कि क्या करे। क्या आंखें गंवा दे? मगर इन्हीं आंखों के कारण तो उस स्त्री के सौन्दर्य में वह दीवाना हुआ है। यह इन्हीं आंखों की देन तो है कि उसने सौन्दर्य को देखा है। इन्हीं आंखों को गंवा दे तो वह स्त्री सुन्दर है या कुरूप, क्या फर्क पड़ता है। और सुबह होने के पहले निर्णय करना है। ठीक सूरज ऊगने के पहले वह वहां से भाग खड़ा हुआ, जितनी तेजी से भाग सकता था। कबीला उसका पीछा कर रहा था कि पकड़ो उसे, वह भाग न जाये, क्योंकि वह बाहर जाकर लोगों को यह झूठी खबर देगा कि मैं आंखवाला हूं और दूसरे लोग अंधे हैं।

यह उस वैज्ञानिक ने ही दुनिया को खबर दी। दूसरे वैज्ञानिक गये और धीरे-धीरे

मक्खी को समाप्त किया। अब बच्चे वहां भी आंखवाले हैं। वे तीन सौ लोग जो इस सदी के पहले चरण में अंधे थे, मर चुके, बूढ़े हो चुके, समाप्त हो चुके। अब वह कबीला विलीन हो गया। अब सब आंखवाले हैं।

लेकिन अंधों के बीच यह कहना कि मैं ही अकेला आंखवाला हूं और तुम सब अंधे हो, अशोभनीय है, अशिष्ट है।

तुम्हारी बात मैंने समझी। लेकिन तुम भी मेरी बात समझो। मैं तुम्हारे साथ हूं। तुम सोये हो तब भी साथ हूं, भला मैं जागा हुआ हूं। आखिर सोये हुए आदमी के साथ जागा हुआ आदमी भी तो बैठा हुआ हो सकता है। और सोये हुए आदमी में और जागे हुए आदमी में फर्क ही क्या होता है? बड़ा जरा-सा फर्क होता है कि सोये हुए आदमी की आंख खुल जाये तो वह भी जाग जाये। लेकिन सोये हुए लोगों के बीच रहकर यह बेहतर है कि तुम कम से कम यह ढोंग ही करते रहो कि तुम भी सोये हुए हो। नाहक उन्हें नाराज न करो। उनकी भीड़ है। उनका समाज है। उनकी दुनिया है। तुम अकेले हो। और सवाल इसका नहीं है। सवाल इसका है कि उन्हें जगाना है। इसलिए दुश्मनी पैदा नहीं करनी है, दोस्ती पैदा करनी है। इसलिए नहीं कहता कि तुम अन्धे हो। इसलिए कहता हूं कि हम अन्धे हैं।

मगर वही कह सकता है कि हम अन्धे हैं जिसके पास आंखें हों। अन्धा आदमी तो यह भी नहीं कह सकता कि मैं अन्धा हूं। तुमने कभी शायद इस पर सोचा भी न हो; या सोचा भी होगा तो गलत सोचा होगा। लोग समझते हैं कि अन्धे आदमी को अन्धेरा ही अन्धेरा दिखाई देता होगा। तुम गलती में हो। अन्धे आदमी को अन्धेरा भी दिखाई नहीं देता। अन्धेरा देखने के लिए भी आंखें चाहिए। तुम आंख बन्द करते हो तो तुम्हें अन्धेरा भी दिखाई देता है क्योंकि तुम्हारे पास आंख है। रोशनी तुमने देखी है इसलिए अन्धेरा भी दिखाई देता है। अन्धे आदमी को कुछ भी दिखाई नहीं देता। उसके पास आंख ही नहीं है। न अन्धेरा, न रोशनी। वह सहानुभूति का पात्र है। वह करुणा और प्रेम का पात्र है। उसे आहिस्ता आहिस्ता जगाना है। उसकी आंखों पर ठंडे पानी के छींटे बहुत आहिस्ता-आहिस्ता फेंकने हैं। उसे नाराज नहीं कर देना है। और फर्क कुछ बड़ा नहीं है। सोया हुआ भी वह वही है जो तुम जागे हुए हो। सिर्फ आंख खुल गई और दुनिया बदल जाती है।

गौतम बुद्ध के जीवन में उन्होंने अपने पुराने जन्मों की बहुत-सी कहानियां कही हैं। उनमें एक कहानी बहुत ही प्रीतिकर है। तब तक वे स्वयं जागे नहीं थे, बुद्ध नहीं हुए थे।

लेकिन कोई बुद्ध हो गया था और उन्हें खबर मिली। वे उसके दर्शन को गये। उन्होंने झुककर उसके चरण छुए, जो कि पूरब की अद्भुत देन है! पूरब ने बहुत कुछ दुनिया को दिया है जिसकी कोई कीमत नहीं करता। उस तरह के आदमी को यूनान में जहर दिया जाता है, जूदिया में फांसी पर लटकाया जाता है, अरब में टुकड़े-टुकड़े करके काट दिया जाता है। हिन्दुस्तान ने बहुत कुछ दुनिया को दिया है जो अद्भुत है। यहां अन्धे आदमी को भी इतनी सहनशीलता दी है कि वह आंखवाले के पैर छूने को राजी है और इसमें अपमान अनुभव नहीं करता बल्कि गौरव अनुभव करता है। अनुभव करता है कि मैं महा महिमामंडित हूं कि एक आंखवाले आदमी के पैर छूने का मुझे अवसर मिला। नहीं सही मेरी आंखें मगर कोई आंखवाला था जिसके मैंने पैर तो छुए। यह भी क्या कम है?

बुद्ध ने पैर छुए और जैसे ही वे खड़े हुए तो हैरान हो गए। वह व्यक्ति, वह महापुरुष जो जाग चुका था वह झुका और उसने इस सोये हुए आदमी के पैर छुए। बुद्ध ने कहा, आप यह क्या करते हैं? यह कैसा पाप आप मेरे ऊपर थोप रहे हैं। आप जागृत हैं मैं आपके पैर छुऊं यह मेरा सौभाग्य है। लेकिन आप मेरे पैर छूकर मुझे किस नर्क में ढकेल रहे हैं।

उस बुद्ध पुरुष ने कहा था, नर्क में नहीं ढकेल रहा हूं। कल तक मैं भी तुम्हारी तरह सोया हुआ था। आज जाग गया हूं। आज तुम सोये हुए हो, कल तुम भी जाग जाओगे। मुझमें और तुममें बुनियादी रूप से कोई अन्तर नहीं है। जो अन्तर है बहुत ऊपरी है, बहुत मामूली है। वह अन्तर मामूली है यही बताने के लिये मैं तुम्हारे पैर छू रहा हूं। मैं तुम्हारे अन्धेपन के पैर नहीं छू रहा हूं; मैं तुम्हारे भविष्य के, जब तुम भी जाग जाओगे उस स्वर्ण दिन के, उस स्वर्ण प्रभात के पैर छू रहा हूं। और इसलिए भी ताकि तुम्हें याद रहे कि जाग कर भूल मत जाना कि सिर्फ अन्धे ही तुम्हारे पैर छू सकते हैं। तुम्हें भी उनके पैर छूने हैं। तुम भी उनकी ही जमात के हिस्से हो। इससे क्या फर्क पड़ता है कि कोई घड़ी भर पहले जाग गया और कोई घड़ी भर बाद जाग गया। इस अनन्त काल में घड़ियों में गिनती नहीं होती। इसलिए मैं 'हम' का ही उपयोग जारी रखूंगा।

प्रश्न : भगवान, आप कहते हैं कि समृद्धि से धर्म आता है। पश्चिम से समृद्ध लोग पूर्व में धर्म सीखने आ भी रहे हैं, उन्हें धर्म की प्यास भी है। फिर भी जब आप उन्हीं देशों में धर्म लेकर स्वयं गये तो उन्होंने आपका स्वागत क्यों नहीं किया? तिरस्कार क्यों हुआ आपका?

तुम्हारी वजह से। उन्होंने कम से कम छुरे फेंककर मुझे मार डालने की कोशिश नहीं की, तुमने की। और जब अपने ही न समझ सकें तो परायों से इतनी आशा रखनी उचित नहीं है।

फिर, पिछले दो हजार साल से तुम गुलाम हो। तुम्हारी गुलामी और तुम्हारी गरीबी ने पश्चिम को यह ख्याल दे दिया है कि तुम किसी कीमत के नहीं हो। तुम जिन्दा भी नहीं हो। तुम मुर्दों की एक जमात हो। और जो लोग मुझसे पहले पश्चिम गये-- विवेकानन्द, रामतीर्थ, योगानन्द और दूसरे हिन्दू संन्यासी-- उनमें से किसी का अपमान पश्चिम में नहीं हुआ। कोई दरवाजे उनके लिए बन्द नहीं हुए। क्योंकि उन्होंने झूठ का सहारा लिया। उन्होंने बुद्ध के साथ जीसस की तुलना की, उन्होंने उपनिषद के साथ गीता की तुलना की, गीता के साथ बाइबिल की तुलना की। पश्चिम के लोगों को और भी गौरवमंडित किया। गुलाम तुम थे, गरीब तुम थे। तुम्हारे संन्यासियों ने तुम्हें आध्यात्मिक रूप से भी दरिद्र साबित किया। क्योंकि उन्होंने तुम्हारी ऊंचाइयों को भी पश्चिम की साधारण निचाइयों तक खींच कर खड़ा कर दिया।

मेरी स्थिति एकदम अलग थी। मैंने पश्चिम से कहा कि भारत आज गरीब है, हमेशा गरीब नहीं था। एक दिन था कि सोने की चिड़िया था। और भारत ने जो ऊंचाइयां पायी हैं, उनके तुमने सपने भी नहीं देखे। और तुम जिसको धर्म कहते हो उसको भारत की ऊंचाइयों के समक्ष धर्म भी नहीं कहा जा सकता। जीसस मांसाहारी हैं, शराब पीते हैं। भारत का कोई धर्म यह स्वीकार नहीं कर सकता कि उसका परम श्रेष्ठ पुरुष मांसाहारी हो , शराब पीता हो; जिसमें इतनी भी करुणा न हो कि अपने खाने के लिए जीवन को बर्बाद करता हो; जो अपने भोजन के लिए इतना अनादर करता हो जीवन का और जो व्यक्ति शराब पीता हो उसे ध्यान की ऊंचाइयों को तो पाने का सवाल ही नहीं उठता। शराब तो दुखी लोग पीते हैं, परेशान लोग पीते हैं, तनाव से भरे लोग पीते हैं। क्योंकि शराब का गुण तुम जिस हालत में हो उसे भुला देने का है। अगर तुम परेशान हो, पीड़ित हो, शराब पीकर थोड़ी देर को तुम भूल जाते हो। दूसरे दिन फिर दुख वापिस खड़े हो जायेंगे। शराब दुखोंको मिटाती नहीं, सिर्फ भुलाती है। ध्यान दुखों को मिटाता है, भुलाता नहीं है। और ध्यान और शराब विरोधी हैं।

ईसाइयत में ध्यान के लिये कोई जगह नहीं है।

लेकिन तुम्हारे विवेकान्द और योगानन्द और रामतीर्थ सिर्फ प्रशंसा पाने के लिये पश्चिम को यह समझाने की कोशिश करते रहे कि जीसस उसी कोटि में आते हैं, जिसमें

बुद्ध आते हैं, जिसमें महावीर आते हैं। यह झूठ था। और चूंकि मैंने वही कहा जो सच था, स्वभावतः मेरे लिये द्वार पर द्वार बन्द होते चले गये। मैं नहीं स्वीकार करता हूं कि जीसस के कोई भी वचनों में वैसी ऊंचाई है जो उपनिषद में है या उनके जीवन में कोई ऐसी खूबी है जो बुद्ध के जीवन में है। उनकी खूबियां साधारण हैं। कोई आदमी पानी पर चल भी सके तो ज्यादा से ज्यादा जादूगर हो सकता है। और पहली तो बात यह है कि वे कभी पानी पर चले इसका कोई उल्लेख सिवाय ईसाइयों की खुद की किताब को छोड़कर किसी और किताब में नहीं है। अगर जीसस पानी पर चले तो इसमें कौनसा अध्यात्म है? पहली बात तो चले नहीं। अगर चले हो तो पोप को कम से कम किसी स्वीमिंग पूल पर ही चल कर बता देना चाहिए। स्वीमिंग पूल भी छोड़ो -- बाथ टब। उतना भी प्रमाण काफी होगा क्योंकि वे प्रतिनिधि हैं और इन्फालिबल--उनसे कोई भूल नहीं होती। और अगर कोई आदमी पानी पर चला भी हो तो इससे अध्यात्म का क्या सम्बन्ध है?

रामकृष्ण के पास एक आदमी पहुंचा। वह एक पुराना योगी था। रामकृष्ण से उम्र में ज्यादा था। रामकृष्ण गंगा के तट पर बैठे थे और उस आदमी ने आकर कहा कि मैंने सुना है तुम्हें लोग पूजते हैं। लेकिन अगर सच में तुम्हारे जीवन में अध्यात्म है तो आओ, मेरे साथ गंगा पर चलो।

रामकृष्ण ने कहा, थके-मांदे हो थोड़ा बैठ जाओ, फिर चल लेंगे। अभी कहीं जाने की भी कोई जरूरत नहीं है। और तब तक कुछ थोड़ा परिचय भी हो ले। परिचय भी नहीं है। पानी पर चलने में तुम्हें कितना समय लगा सीखने में?

उस आदमी ने कहा, अठारह वर्ष। रामकृष्ण हंसने लगे। उन्होंने कहा, मैं तो पानी पर नहीं चला। क्योंकि दो पैसे में गंगा पार कर जाता हूं। दो पैसे का काम अठारह वर्ष में समझना मैं मूर्खता समझता हूं, अध्यात्म नहीं। और इसमें कौन – सा अध्यात्म है कि तुम पानी पर चल लेते हो? इससे तुमने जीवन का कौन सा रहस्य पा लिया है?

एक घटना मुझे स्मरण आती है जो तुम्हें फर्क को समझाएगी। जीसस के संबंध में कहा जाता है कि उन्होंने एक मुर्दे आदमी को जिन्दा किया। जरा सोचने की बात है कि मुर्दे रोज मरते हैं। एक को ही जिन्दा किया! जो आदमी मुर्दों को जिन्दा कर सकता था, यह थोड़ा आश्चर्यजनक है कि उसने एक को ही जिन्दा किया और वह भी उसका अपना मित्र था-- लजारस। मामला बिलकुल बनाया हुआ है। लजारस एक गुफा में लेटा हुआ है और जीसस बाहर आकर आवाज देते हैं: लजारस, उठो, मृत्यु से बाहर जीवन में आओ! और लजारस तत्काल गुफा के बाहर आ जाते हैं। अब बहुत-सी बातें

विचारणीय हैं। पहली तो बात, यह आदमी जीसस का बचपन का मित्र था। दूसरी बात, जो आदमी मर जाने के बाद वापिस लौटा हो उसके जीवन में कोई क्रान्ति घटनी चाहिए। लजारस के जीवन में कोई क्रान्ति नहीं घटी। इस घटना के अलावा लजारस की बाबत कहीं कोई उल्लेख नहीं है। क्या तुम सोचते हो एक आदमी मर जाये, मृत्यु के पार के जगत को देखकर वापिस लौटे और वैसा का वैसा ही बना रहे? और जब एक आदमी को जीसस जिन्दा कर सकते थे तो फिर किसी को भी मरने की जूदिया में जरूरत क्या थी?

इस घटना को मैं इसलिए ले रहा हूं कि ठीक ऐसी ही घटना बुद्ध के जीवन में घटी। वे एक गांव में आए हैं, वहां एक स्त्री का इकलौता बेटा--उसका पति मर चुका है, उसके अन्य बच्चे मर चुके हैं--एक बेटा जिसके सहारे वह जी रही है वह भी मर गया। तुम सोच सकते हो उसकी स्थिति। वह बिल्कुल पागल हो उठी। गांव के लोगों ने कहा कि पागल होने से कुछ भी न होगा। बुद्ध का आगमन हुआ है। ले चलो अपने बेटे को। रख दो बुद्ध के चरणों में और कहो उनसे कि तुम तो परम ज्ञानी हो, जिला दो इसे। मेरा सब कुछ छिन गया। इसी एक बेटे के सहारे मैं जी रही थी, अब यह भी छिन गया। अब तो मेरे जीवन में कुछ भी न बचा।

बुद्ध ने उस स्त्री से कहा, निश्चित ही तुम्हारे बेटे को सांझ तक जिला दूंगा लेकिन उससे पहले तुम्हें एक शर्त पूरी करनी पड़ेगी। तुम अपने गांव में जाओ और किसी घर से थोड़े-से तिल के बीज ले आओ--ऐसे घर से जहां कोई मरा न हो। बस वे बीज तुम ले आओ, मैं तुम्हारे बेटे को जिला दूंगा।

वह पागल औरत स्वभावतः पागल होने की स्थिति में थी, भागी। इस घर में गई, उस घर में गई। लोगोंने कहा तुम कहती हो एक मुट्ठी बीज, हम बैलगाड़ियां भर कर तिल के ढेर लगा सकते हैं मगर हमारे बीज काम न आएंगे। हमारे घर में तो न जाने कितने लोगों की मृत्यु हो चुकी हैं। सांझ होते-होते सारे गांव ने उसे एक ही जवाब दिया कि हमारा बीज तुम जितना चाहो उतना ले लो, लेकिन ये बीज काम न आएंगे। बुद्ध ने बड़ी उलटी शर्त लगा दी। ऐसा कौन-सा घर है जिसमें कोई मरा न हो?

दिन भर का अनुभव उस स्त्री के जीवन में क्रान्ति बन गया। वह वापिस आयी, उसने बुद्ध के चरणों को छुआ और कहा कि भूलें, छोड़ें इस बात को कि लड़का मर गया। यहां जो भी आया है उसको मरना पड़ेगा। तुमने मुझे ठीक शिक्षा दी। अब मैं तुमसे यह चाहती हूं कि इसके पहले मैं मरूं, मैं जानना चाहती हूं वह कौन है मेरे भीतर जो जीवन

है। मुझे दीक्षा दो।

जो लड़के की जिन्दगी मांगने आयी थी वह अपने जीवन से परिचित होने की प्रार्थना लेकर खड़ी हो गयी। वह संन्यासिनी हो गयी और बुद्ध के जो शिष्य परम अवस्था को उपलब्ध हुए उनमें अग्रणी थी। इसको मैं क्रान्ति कहता हूं। बुद्ध अगर उस लड़के को जिन्दा कर देते तो भी क्या था? एक दिन तो वह मरता ही। लजारस भी एक दिन मरा होगा। लेकिन बुद्ध ने उस स्थिति का एक आध्यात्मिक रुख, एक नया आयाम ले लिया।

हम हर चीज को ऊपरी और बाहरी तल से देखने के आदी हैं। मैं मानता हूं बुद्ध ने जो किया वह महान है और जो जीसस ने किया वह साधारण है, उसका कोई मूल्य नहीं है। मेरी इन बातों ने पश्चिम को घबड़ा दिया। घबड़ा देने का कारण यह था कि पश्चिम आदी हो गया है एक बात का कि पूरब गरीब है, भेजो ईसाई मिशनरी और गरीबों को ईसाई बना लो। और करोड़ों लोग ईसाई बन रहे हैं। लेकिन जो लोग ईसाई बन रहे हैं पूरब में वे सब गरीब हैं, भिखारी हैं, अनाथ हैं, आदिवासी हैं, भूखे हैं, नंगे हैं। उन्हें धर्म से कोई संबंध नहीं है! उन्हें स्कूल चाहिए, अस्पताल चाहिए, दवाइयां चाहिए, उनके बच्चों के लिए शिक्षा चाहिए, कपड़े चाहिए, भोजन चाहिए। ईसाइयत कपड़े और रोटी से उनका धर्म खरीद रही है।

मुझे दुश्मन की तरह देखने का कारण यह था कि मैंने कोई पश्चिम के गरीब को या अनाथ को या भिखमंगे को....और वहां कोई भिखमंगों की कमी नहीं है, सिर्फ अमरीका में तीस मिलियन भिखारी हैं! जो दुनिया के दूसरे भिखारियों को ईसाई बनाने में लगे हैं वे अपने भिखारियों के लिए कुछ भी नहीं कर रहे हैं क्योंकि वे ईसाई हैं ही। मैंने जिन लोगों को प्रभावित किया उनमें प्रोफेसर्स थे, लेखक थे, कवि थे, चित्रकार थे, मूर्तिकार थे, वैज्ञानिक थे, आर्किटेक्ट थे, प्रतिभा-सम्पन्न लोग थे। और यह बात घबराहट की थी कि अगर देश के प्रतिभा-सम्पन्न लोग मुझसे प्रभावित हो रहे हैं तो यह बड़े खतरे की सूचना है। क्योंकि यही लोग हैं जो रास्ता तय करते हैं दूसरे लोगों के लिए। इनको देखकर दूसरे लोग उन रास्तों पर चलते हैं। इनके पदचिन्ह दूसरों को भी इन्हीं रास्तों पर ले जाएंगे।

और मैंने किसी को भी नहीं कहा कि तुम अपना धर्म छोड़ दो। मैंने किसी को भी नहीं कहा कि तुम कोई नया धर्म स्वीकार कर लो। मैंने तो सिर्फ इतना ही कहा कि तुम समझने की कोशिश करो क्या धर्म है और क्या अधर्म है। फिर तुम्हारी मर्जी। तुम बुद्धिमान हो और विचारशील हो।

मेरा एक ही जुर्म है और एक ही अपराध है कि मैंने उन देशों में पहली बार यह जिज्ञासा पैदा की कि जिस पूरब के लोगों को हम ईसाई बनाने के लिए हजारों मिशनरियों को भेज रहे हैं उस पूरब ने आकाश की बहुत ऊंचाइयां छुई हैं। हम अभी जमीन पर घसीटने के योग्य नहीं हैं। उन ऊंचाइयों के सामने उनकी बाइबिल, उनके प्रोफेट, उनके मसीहा, बहुत बचकाने, बहुत अदना, अप्रौढ़, अपरिपक्व सिद्ध होते हैं। इससे एक घबराहट और एक बेचैनी पैदा हो गई।

मेरी एक भी बात का जवाब पश्चिम में नहीं है। मैं तैयार था प्रेसिडेंट रोनाल्ड रीगन से व्हाइट हाऊस में डिस्कस करने को, खुले मंच पर, क्योंकि वह फंडामेंटलिस्ट ईसाई हैं। वह मानते हैं कि ईसाई धर्म ही एकमात्र धर्म है, बाकी सब धर्म थोथे हैं। पोप को मैंने कई बार निमंत्रण दिया कि मैं वेटिकन आने को तैयार हूं, तुम्हारे लोगों के बीच तुम्हारे धर्म के संबंध में चर्चा करना चाहता हूं और तुम्हें चेतावनी देना चाहता हूं कि जिसे तुम धर्म कह रहे हो वह धर्म नहीं है और जो धर्म है तुम्हें उसका पता भी नहीं है। स्वभावतः मैं उन्हें दुश्मन जैसा लगा।

एक अकेला आदमी कभी भी सारी दुनिया में इस बुरी तरह दुश्मन पैदा करने में समर्थ नहीं हुआ है।

हर देश की पार्लियामेन्ट ने निश्चित किया हुआ है कि मैं उनके देश में प्रवेश न कर सकूं, क्योंकि मैं खतरनाक आदमी हूं। मैं उनकी नैतिकता को नष्ट कर दूंगा। उनके धर्म को नष्ट कर दूंगा।

दो सप्ताह के लिए एक टूरिस्ट तुम्हारे धर्म को नष्ट कर सकता है दो हजार साल की तुम्हारी मेहनत को, तो वह मेहनत बचाने योग्य नहीं है। उसे नष्ट हो जाने दो।

प्रश्न : भगवान, इस देश में बहुत से झूठे धर्म पैदा हो रहे हैं, जिनसे अधर्म फैल रहा है। इस संबंध में हमारा क्या कर्तव्य है? कृपया मार्गदर्शन दें।

जिनके पास भी सोचने की थोड़ी भी समझ है, जिनके पास भी देखने की जरा-सी आंख है उनको मुझे बताना नहीं पड़ेगा कि उनका कर्तव्य क्या है। उनका कर्तव्य है इस देश में फैलते हुए झूठे धर्म को रोकना--एक; दो--इस देश के वास्तविक धर्म को पुनः फूल की तरह खिला देना। यह सच है कि जिस तरह मेरे दुश्मनों की संख्या बढ़ी है उसी तरह मेरे दोस्तों की संख्या भी बढ़ी है। प्रकृति में एक सन्तुलन है। और दुश्मन नासमझी

के कारण दुश्मन हैं, इसलिए उनसे डरने की कोई जरूरत नहीं है। दोस्त समझदारी के कारण दोस्त है। इसलिए दस दुश्मन के मुकाबले एक दोस्त ज्यादा कीमती है। उन दुश्मनों को हम जीत लेंगे क्योंकि उन दुश्मनों के पास कुछ भी नहीं है। उनके भीतर एकदम खालीपन है, अर्थहीनता है। न कोई शान्ति है न कोई आनन्द है।

तुम्हारा कर्तव्य यही है कि इस देश ने जो हजारों वर्षों में अर्जित किया है उसे कहीं तुम्हीं न भूल जाओ। अन्यथा तुम कैसे दुनिया को याद दिलाओगे ? और तुम भूल रहे हो। तुम्हारे पंडितों, तुम्हारे पुजारियों, तुम्हारे स्वामियों को कोई चिन्ता नहीं है। उनको फिक्र है सिर्फ उनके पेशे और उनके धन्धे के चलने की। उन्हें इस विराट संसार और पृथ्वी पर जो आन्दोलन हो रहे हैं उनका कोई बोध नहीं। वह इस देश में भी अपने धर्म को बचाने में समर्थ नहीं हैं।

ईसाइयत इस देश में आज तीसरा बड़ा धर्म हो गया है। आज नहीं कल ईसाइयत अलग मुल्क की मांग पैदा करेगा। और अगर मुसलमान अलग मांग कर सकते हैं तो ईसाइयत को भी हक है। वे नम्बर तीन हैं। और उनकी संख्या रोज बढ़ रही है। और उनकी संख्या के बढ़ने के ढंग ऐसे हैं कि तुम समझ भी नहीं पा रहे हो। वे आकर लोगों को समझा रहे हैं कि बर्थ-कंट्रोल धर्म के खिलाफ है। और तुम्हें पता नहीं कि बर्थ-कंट्रोल अगर धर्म के खिलाफ है तो तुम गरीब से गरीब होते जाओगे। और जितनी गरीबी बढ़ेगी उतनी ईसाइयत बढ़ेगी। जितने अनाथ होंगे उतनी ज्यादा मदर टेरेसा होंगीं।

तुम्हें सोचने की जरूरत है कि धर्म की आड़ में ईसाइयत को फैलाने का जो बड़ा जाल चल रहा है, उसे रोकना तुम्हारे हाथ में है। तुम्हारे बच्चे ईसाई होंगे क्योंकि भूखे मरते बच्चों को सिवाय ईसाई होने के और कोई रास्ता न रह जाएगा। लेकिन अगर तुमसे कहा जाए कि संतति-नियमन करो तो तत्क्षण तुम्हारे पंडित और तुम्हारे शंकराचार्य भी इसका विरोध करते हैं बिना सोचे-समझे कि वे जो कर रहे हैं वे ईसाइयों के हाथ में खेल खेल रहे हैं--अनजाने, अंधे आदमियों की तरह।

पश्चिम के मुल्कों में--फ्रांस या स्वीडन--उनकी संख्याएं स्थिर हो गई हैं। वहां नये बच्चे और पैदा नहीं हो रहे। या उतने ही पैदा हो रहे हैं जितने पुराने लोग मर रहे हैं। तो उनकी आर्थिक स्थिति रोज ऊंची होती चली जाती है और तुम्हारी आर्थिक स्थिति रोज नीची गिरती चली जाती है।

मुसलमानों ने दुनिया को बन्दूक और तलवार की नोक पर मुसलमान बनाया था। ईसाइयत ज्यादा होशियार है। वह न तो तलवार लाती है और न बन्दूक लाती है। वह एक

हाथ में रोटी लाती है और एक हाथ में बाइबिल लाती है। और भूखा यह नहीं देखता कि रोटी के साथ बाइबिल भी जुड़ी है।

अगर इस देश को अधर्म से बचाना है तो पहला काम है कि इस देश की संख्या की बढ़ती हुई स्थिति को रोकने की हर चेष्टा की जाए। न तो सुनो तुम्हारे पंडितों को न तुम्हारे शंकराचार्यों को। न सुनो पोप को और न मदर टेरेसा को। लेकिन बड़ा आश्चर्य है उनको नोबल प्राइज दी जाएगी, डॉक्टरेट दी जाएगी, पदमश्री की उपाधियां दी जाएंगी, भारत-रत्न बनाया जाएगा। और उनका सारा जहर एक ही बात पर निर्भर है कि वे तुम्हें समझाएं कि बच्चे पैदा करना...। उन्हें स्वीडन जाकर समझाना चाहिए जहां बच्चे पैदा करना बन्द हो गये; जहां की सरकार हर नये बच्चे के लिए सहूलियतें देने को तैयार है क्योंकि उन्हें डर है कि उनकी संख्या गिर रही है। कहीं ऐसा न हो कि उनकी संख्या बहुत ज्यादा गिर जाये और वे कमजोर हो जाएं। आश्चर्य की बात है मदर टेरेसा कलकत्ता में बैठी हैं, इनको स्वीडन जाना चाहिए। नहीं, लेकिन स्वीडन जाने से क्या फायदा। वहां सब ईसाई हैं। कलकत्ता में रहने की जरूरत है क्योंकि वहां अनाथ बच्चे हैं जिनको कि ईसाई बनाना है, और और अनाथ पैदा हो सकें इसके लिए तुम्हें समझाना है।

तो पहला काम है कि इस देश की संख्या रोकी जाए। दूसरा काम है कि इस देश ने अपनी ऊंचाइयों के दिनों में जो महान उड़ानें भरी थीं--उनका कोई संबंध हिन्दू से नहीं है, न जैन से है, न बौद्ध से है, उनका संबंध मनुष्य के स्वत्व से है, उसके सत्य से है--उन ऊंचाइयों को फिर से मौका दिया जाये। तुम्हारे स्कूलों में ध्यान की कोई व्यवस्था नहीं है जो कि अविश्वसनीय है। सारे ईसाई स्कूलों में ईसाई धर्म की शिक्षा की व्यवस्था है। तुम्हारे स्कूलों में धर्म की या योग की कोई व्यवस्था नहीं है। तुम अब भी उसी तरह की फैक्टरियां चला रहे हो युनिवर्सिटी के नाम से जो ब्रिटेन ने स्थापित की थीं--जिन फैक्टरियों से केवल क्लर्क पैदा होते हैं और कुछ भी नहीं। तुम्हें वे लोग पैदा करने पड़ेंगे जिनकी ज्योति से दुनिया को यह अनुभव हो सके कि अध्यात्म के अतिरिक्त जीवन की कोई उपलब्धि उपलब्धि नहीं है। और तुम्हें हिम्मत करके लड़ना भी सीखना पड़ेगा। लड़ने का मतलब कोई बन्दूकें लेकर लड़ना नहीं है।

जब मैं अमरीका की जेल में था तो सारी दुनिया से विरोध के पत्र, तार, टेलीग्राम, टेलीफोन, टैलेक्स हजारों की संख्या में पहुंचे, सिर्फ भारत से नहीं। दुनिया के अनेक महत्वपूर्ण लोगों ने--उनमें संगीतज्ञ हैं, कवि हैं, नृत्यकार हैं, अभिनेता हैं, डायरेक्टर हैं--अमरीका की गवर्नमेंट पर दबाव डाला कि मेरे साथ जो किया जा रहा है वह अन्याय

है। लेकिन भारत की सरकार बिल्कुल चुप रही। भारत का अम्बेसेडर अमरीका के प्रेसीडेन्ट से जाकर नहीं मिला कि एक भारतीय के ऊपर अन्याय नहीं होना चाहिए। और तुमने कोई फिक्र न की कि तुम दिल्ली की सरकार पर जोर डालते। यह पार्लियामेंट है या नपुंसकों की जमात है। इन हिजड़ों को बाहर करो। उलटा जिस दिन मैं जेल से छूट गया, उस दिन भारतीय अम्बेसेडर का आदमी मेरे पास पहुंचा कि हम आपकी क्या सहायता कर सकते हैं। मैंने कहा: तुम और मेरी सहायता करोगे? अब मैं जब जेल से छूट गया हूं! बारह दिन तक तुम कहां थे? तुम्हारा अम्बेसेडर कहां था? तुम्हारी गवर्नमेंट कहां थी? मुझे तुम्हारी किसी सहायता की कोई जरूरत नहीं है। तुम्हें और तुम्हारी सरकार को मेरी कोई सहायता की जरूरत हो तो मुझको खबर करो। और जब मैं भारत आया तो अमरीकी अम्बेसेडर ने भारत की सरकार पर जोर डाला कि मैं भारत में रह सकता हूं--दो शर्तों पर। एक कि मेरा पासपोर्ट छीन लिया जाए ताकि मैं भारत के बाहर न जा सकूं। दूसरा कि किसी गैर-भारतीय को, विशेषकर पत्रकारों को मेरे पास न पहुंचने दिया जाए। और भारत की सरकार ने दोनों शर्तें मंजूर कर लीं। इन शर्तों की मंजूरी के कारण मुझे तत्काल भारत वापिस छोड़ देना पड़ा क्योंकि इन शर्तों के रहते अमरीका का जेल हुआ या भारत का जेल हुआ बराबर हो गया।

तुम्हें सजग होना पड़ेगा।

मैं बार-बार दुनिया के चक्कर पर जाऊंगा और बार-बार हर मुल्क की जेल मुझे देखनी है। और तुम्हें दिखाना है कि सत्य को बोलना इस दुनिया में सबसे बड़ा पाप है। और धर्म की बात करना इस दुनिया में सबसे बड़ी खतरनाक स्थिति में प्रवेश करना है। तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम अपनी सरकार को हिजड़ों की सरकार न रहने दो। इस सरकार पर दबाव होना चाहिए। लेकिन इस सरकार पर उलटे दबाव हैं। उस पर दबाव अमरीका का है।

मैं अभी भारत वापिस आया हूं। मेरे पास कोई लगेज नहीं। फिर भी मुझे तीन घण्टे एयरपोर्ट पर बिठा रखा गया। मैंने उस आफिसर को कहा भी कि तुम यहां लिखे हुए हो एयरपोर्ट पर ''वैल्कम टू इंडिया''। मैं भारत का हूं। मुझे किसलिए तीन घण्टे यहां बिठा रखा गया है? क्या कारण है? मेरे पास कोई लगेज नहीं है। जिनके पास लगेज है उनको मैं पीछे छोड़ रहा हूं।

लेकिन उन्होंने कहा: माफ करिए, हम क्या करें? ऊपर से जैसी आज्ञा है हम वैसा कर रहे हैं।

इन ऊपर की आज्ञाओं को तोड़ना होगा। ये कौन हैं जो ऊपर हैं? ये तुम्हारे नौकर हैं। ये भिखमंगे हैं जिन्होंने तुमसे वोट मांगी और आज तुम्हारे ऊपर हैं। और अकारण उन आफिसरों ने तीन घण्टे के बाद मुझसे क्षमा मांगी। मैंने कहा, तुम्हारी क्षमा का सवाल नहीं है। तुम्हारी सरकार को क्षमा मांगनी चाहिए। मेरे तीन घण्टे तुम्हें खराब करने का क्या हक है? अगर कोई कारण होता तो ठीक था। लेकिन कोई भी कारण नहीं है और तुम मुझे तीन घण्टे व्यर्थ यहां बिठाए रखे हो।

मैं भारत वापिस आया हूं सिर्फ इसलिए ताकि मैं भारत की जनता को यह आगाह कर सकूं कि अब दुबारा जब मैं वापिस दुनिया के दौरे पर जाता हूं और जगह-जगह मेरे लिए मुश्किल होगी तो तुम कम से कम भारत की सरकार पर दबाव डालना कि अगर तुम एक भारतीय की भी, जो कि बिल्कुल ही निर्दोष है...। अभी दो दिन पहले अमरीका के अटर्नी जनरल ने, सबसे बड़े कानूनविद ने, पत्रकारों को जवाब देते हुए उत्तर में कहा कि हम भगवान को जेल में बन्द नहीं कर सके क्योंकि उनके ऊपर कोई जुर्म नहीं है। लेकिन फिर भी उन्होंने साठ लाख रुपया मेरे ऊपर फाइन किया है। भारत की सरकार को पूछना चाहिए कि अगर मेरे ऊपर कोई जुर्म नहीं है तो साठ लाख रुपया किस तरह मुझ पर फाइन किया गया है, किस बात के लिए फाइन किया गया है? मुझे पांच साल के लिए अमरीका में प्रवेश बन्द किया है वह किस आधार पर किया है? और दस साल तक अगर अमरीका में मैं कोई छोटा-मोटा जुर्म भी करूं तो उसकी सजा दस साल कैद होगी और अदालत में मैं कोई मुकदमा नहीं लड़ सकूंगा। और अमरीका का सबसे बड़ा कानूनविद, प्रेसिडैंट का अटर्नी जनरल, अपने उत्तर में कहता है कि वे मुझे जेल में नहीं रख सके क्योंकि उनके पास मेरे खिलाफ कोई भी सबूत नहीं है और मैंने कोई जुर्म नहीं किया है।

दूसरी बात उन्होंने कही कि हम भगवान ने जो कम्यून अमरीका में स्थापित किया था उसे नष्ट करना चाहते थे। और वह भगवान की मौजूदगी में रहते नष्ट नहीं हो सकता था, इसलिए भगवान को हटाना पड़ा। उस कम्यून का क्या जुर्म था। उस कम्यून का जुर्म यह था कि हमने एक ''डेजर्ट'' को, जो वर्षों से ''डेजर्ट'' है एक हरे भरे उद्यान में परिवर्तित कर दिया था। पांच हजार संन्यासियों ने अपने मकान खुद बनाये थे। अपने रास्ते खुद बनाये थे और यह सिद्ध कर दिया था कि ''डेजर्ट'' में भी स्वर्ग को निर्मित किया जा सकता है। यह बात अमरीका के राजनीतिज्ञों को बहुत अखर रही थी। क्योंकि लोग उनसे पूछ रहे थे कि ये बाहर से आये हुए लोग मरुस्थल को स्वर्ग बना सकते हैं, तो तुम अब तक क्या करते रहे हो? इसलिए कम्यून को नष्ट करना जरूरी था। और मेरे रहते वहां

कम्यून को नष्ट करना मुश्किल था क्योंकि पांच हजार संन्यासी यह तय किये हुए बैठे थे कि उनको बिना मारे मुझे अरेस्ट नहीं किया जा सकता।

और तीसरी बात अटर्नी जनरल ने कही है कि हम भगवान को इसलिए जेल में नहीं रख सके कि हम नहीं चाहते कि दुनिया में वे एक पैगम्बर बन जाएं, क्योंकि उन्हें जेल होगी तो उनका रुतबा एक शहीद का होगा। उनके संन्यासियों के मन में वही जोश और खरोश पैदा होगा जो कि जीसस के सूली पर चढ़ जाने के बाद पैदा हुआ था। लेकिन उनकी दिली इच्छा यही थी कि वे मुझे मार डालते। मार नहीं सके क्योंकि सारी दुनिया में विरोध था, सिर्फ भारत को छोड़कर। भारत में छोटा-मोटा विरोध हुआ। उस छोटे-मोटे विरोध को कोई मूल्य नहीं है। और भारत के विरोध में भारत की सरकार का कोई हाथ नहीं था। क्योंकि भारत की सरकार को फिक्र इस बात की ज्यादा है कि अमरीका से न्युक्लियर बम बनाने की तरकीबें और सामान कैसे पाया जाये; इस बात की फिक्र नहीं है कि अमरीका आध्यात्मिक रूप से रूपान्तरित कैसे किया जाये।

तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम उन लोगों को आने वाले चुनाव में चुनना जो दुनिया को आध्यात्मिक रूप से परिवर्तित करने की चेष्टा करें। तुम्हारी ताकत बड़ी है क्योंकि मैं अनुभव करता हूं अगर मैं अकेला आदमी सारी दुनिया की सरकारों के खिलाफ लड़ सकता हूं, तुम भी लड़ सकते हो। सरकारों की ताकत बड़े नीचे तल की ताकत है।

मैं तुम्हें एक उदाहरण देता हूं। उरुग्वे में, उरुग्वे के प्रेसिडेंट ने जो कि मेरी किताबों को पढ़ते रहे हैं और मुझमें उत्सुक हैं, मुझे निमंत्रित किया, मैं उरुग्वे स्थिर रूप से निवास करने के लिये तैयार था। तत्क्षण अमरीका के प्रेसिडेंट ने उरुग्वे के प्रेसिडेंट को धमकी दी कि अगर छत्तीस घण्टे के भीतर भगवान उरुग्वे नहीं छोड़ते हैं तो जितना ऋण तुमने अतीत में हमसे लिया है वह सब वापिस करना होगा। वह तो 'बिलियन्स आफ डॉलर्स' वह उरुग्वे जैसे गरीब देश को लौटाना असंभव है। और अगर तुम नहीं लौटा सकते तो तुम पर जो रेट आफ इन्टरेस्ट है, ब्याज की जो दर है, वह दुगुनी हो जायेगी। दूसरा छत्तीस घण्टे के भीतर अगर उन्हें बाहर नहीं किया जाता है तो भविष्य के लिये जो हमने तुम्हें 'बिलियन्स आफ डालर्स' देने का वचन दिया है वह रद्द हो जायेगा। प्रेसिडेंट के सेक्रेटरी ने मुझे आकर कहा कि मैंने पहली दफे उरुग्वे के प्रेसिडेंट की आंखों में आंसू देखे। और ये शब्द प्रेसिडेंट ने कहे कि भगवान के आने से कम से कम एक बात तो हुई कि हमारा यह भ्रम टूट गया कि हम स्वतंत्र हैं।

पुराने किस्म का साम्राज्य समाप्त हो गया है। एक नये किस्म का साम्राज्य व्याप्त हो

गया है। हर देश को अमरीका धन दे रहा है जिसको कोई देश लौटा नहीं सकता। वायदे कर रहा है ज्यादा धन देने के जिनको कोई देश इन्कार नहीं कर सकता। यह ज्यादा आसान गुलामी है। दिखती भी नहीं। झंडा भी तुम्हारा तिरंगा फहरता है और भीतर-भीतर तुम्हारी आत्मा पर अमरीकी झंडा गड़ा हुआ है। इस झंडे को उखाड़ फेंकना है। यह बेहतर है कि हम गरीब हों। यह बेहतर है कि हम मर जायें और इस दुनिया से भारत का नामोनिशान मिट जाये। मगर यह बेहतर नहीं है कि पैसा हमें खरीद ले और हमारी आत्माओं को खरीद ले। इस देश को अपनी आत्मा को बेचने से बचाना तुम्हारा कर्तव्य है।

धन्यवाद।
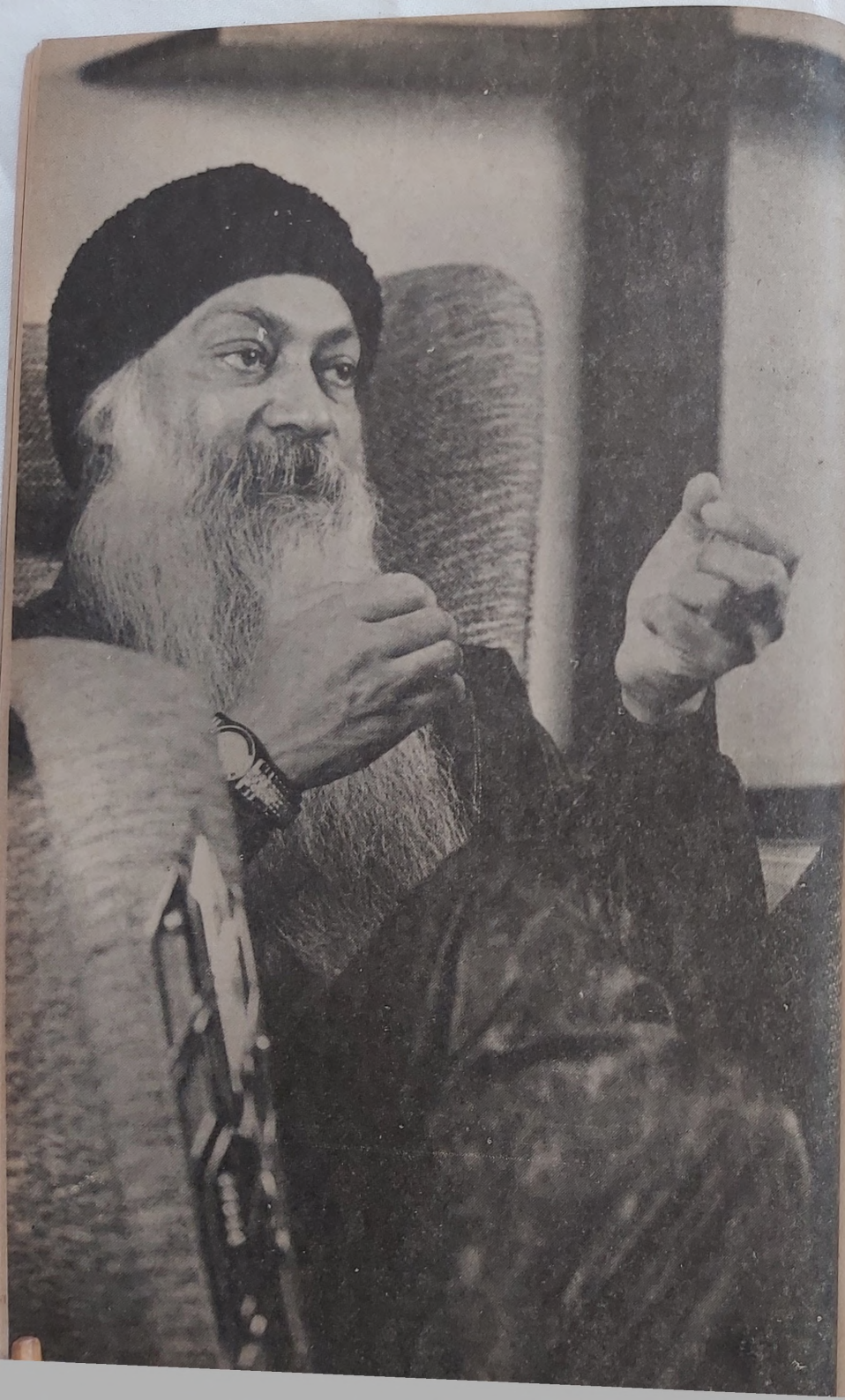
आत्मिक विकास एकमात्र विकास

दूसरा प्रवचन : १ अगस्त, १९८६, ४.०० अपराह्न, सुमिला, जुहू, बम्बई

प्रश्न : भगवान श्री, आपको समझने में आज की सरकारें और चर्च तो क्या बुद्धिजीवी भी जिस जड़ता का परिचय दे रहे हैं वह घबराने वाली है। ऐसा क्यों हुआ कि मनुष्य-जाति अपने श्रेष्ठतम फूल के साथ यह दुर्व्यवहार करे? क्या उसकी आत्मा मरी हुई है? आपके साथ पिछले दस महीनों से जो दुर्व्यवहार हुआ है, वह क्या एक किस्म का अन्तर्राष्ट्रीय तल का एपारथाइड नहीं है जो साउथ अफ्रीका के एपारथाइड से भी बदतर है? क्या इस पर कुछ कहने की अनुकम्पा करेंगे?

मैं एक बात इन दस महीनों में गहराई से अनुभव किया हूं और वह है, हर आदमी के चेहरे पर चढ़ा हुआ झूठा चेहरा। मैं सोचता था कुछ लोग हैं जो नाटक मंडलियों में हैं, लेकिन जो देखा है तो प्रतीत हुआ कि हर आदमी एक झूठे चेहरे के भीतर छिपा है। ये महीने कीमती थे और आदमी को देखने के लिए जरूरी थे; यह समझने को भी कि जिस आदमी के लिए मैं जीवन भर लड़ता रहा हूं, वह आदमी लड़ने के योग्य नहीं है। एक सड़ी-गली लाश है, एक अस्थिपंजर है। मुखौटे सुन्दर हैं, आत्माएं बड़ी कुरूप हैं।

सारी दुनिया के विभिन्न देशों ने जिस भांति मेरा स्वागत किया है उससे बहुत से निष्कर्ष साफ हो जाते हैं। एक तो कि पश्चिम के समृद्धिशाली देश जिनके पास सब कुछ है: धन है और दौलत है, विज्ञान है, तकनीकी विकास है, आदमी की मृत्यु का पूरा सामान

है, लेकिन जीवन की कोई एक भी किरण नहीं। और इस सारे भौतिक विकास ने स्वभावतः उन्हें एक गलत निष्कर्ष दे दिया है कि वे न केवल सारी दुनिया के मालिक हैं बल्कि सारी दुनिया की आत्मा के भी मालिक हैं। और पूरब के देशों से जो लोग पश्चिम जाते रहे--विवेकानन्द, रामतीर्थ, योगानन्द, कृष्णमूर्ति--इन सबने एक धोखा किया और वह धोखा दोहरा था। पश्चिम को भुलावा दिया कि तुम्हारे मसीहा, तुम्हारे पैगम्बर, तुम्हारी बाइबिलें, तुम्हारे कुरान वही सारभूत सन्देश लिए हैं जो पूरब के उपनिषदों में है, लाओत्सु के वचनों में है, बुद्ध के चरणों में है। ऐसे उन्होंने पश्चिम के लोगों को एक झूठी बात कही। इस झूठी बात से उन्हें फायदा हुआ। उनका कोई विरोध न हुआ बल्कि उनका सम्मान हुआ। और पूरब के लोग भी खुश हुए कि विवेकानन्द का पश्चिम में सम्मान हो रहा है वह हमारा सम्मान है। वह तुम्हारा सम्मान नहीं था, विवेकानन्द के झूठ का सम्मान था। एक झूठ ने दुधारी तलवार का काम किया।

मेरा अपराध था कि मैंने उनको ठीक-ठीक वही कहा जो असलियत है। मैंने उनको कहा कि पश्चिम के पास कोई धर्म नहीं है, न कभी था। और पश्चिम के मसीहा और पैगम्बर दो कौड़ी के भी नहीं हैं, बुद्ध के चरणों की धूल भी नहीं हैं। उपनिषद की ऊंचाइयों का एक छोटा-सा अंश भी पश्चिम के धर्मग्रन्थों में नहीं है। इसलिए मैं असमर्थ हूं कि ईसा को या मूसा को, मोहम्मद या इज़ाकील या औरों को बुद्ध और लाओत्सु, बोधिधर्म, बोकूजु, च्वांगत्जु, नागार्जुन, इनकी कोटि में बिठा सकूं। यह मेरी असमर्थता है। क्योंकि फासला इतना बड़ा है कि उन्हें एक ही कोटि में रखना जगत का सबसे बड़ा झूठ होगा।

पश्चिम की ईसाइयत का भ्रम, कि वह सारी दुनिया को ईसाई बनाकर अध्यात्म के रास्ते पर ले जा रही है, न केवल झूठ है बल्कि इतना भ्रान्त है कि जिस मात्रा में ईसाइयत फैलती जाएगी उस मात्रा में दुनिया में अंधेरा बढ़ता चला जाएगा। मेरे विरोध का कारण था; क्योंकि मैं ईसाइयत को कोई सम्मान न दे सका। सम्मान देने योग्य कुछ था भी नहीं।

तो एक तरफ पश्चिम के मुल्क, जो कि सारे के सारे ईसाई हैं और ईसाइयत के भारी दबाव में हैं--चाहे वे लोकतंत्र हों और चाहे वे अधिनायकतंत्र हों; उनका राजनीतिज्ञ भला भीतर से मेरी बात को ठीक समझे, लेकिन सत्ता में बने रहने को वह जो ईसाई पादरी कह रहा है उसे ही सत्य स्वीकार करना होगा। उसके हाथ में मत हैं, उसके हाथ में लोगों की भीड़ है। इस भांति पश्चिम में स्वभावतः मैंने दुश्मन खड़े कर लिये।

और आश्चर्य तो--बड़ा आश्चर्य यह है कि भारत दो हजार साल से गुलाम था, यह पश्चिम की तरफ देखता है। जो चीज पश्चिम में स्वीकृत है वह सही है या गलत है, पूरब

में भी स्वीकृत हो जाती है। और जो चीज पश्चिम में स्वीकृत नहीं है वह निखालिस सोना हो तो भी मिट्टी हो जाता है।

तो चूंकि पश्चिम के सारे देश, समृद्धिशाली देश मेरे विरोध में थे, भारत के राजनीतिज्ञ, भारत के टुटपूंजिया पत्रकार, जो दो कौड़ी पर जीते हैं और जो दो कौड़ी पर अपनी आत्मा को बेचने के लिए तैयार हैं उन्होंने भी मेरे विरोध में लिखना शुरू कर दिया। उनको भी मुझसे मतलब नहीं है, उनको मतलब है पश्चिम की छत्रछाया बनी रहे। गुलामी ऊपर से टूट गई है मगर भीतर से आकांक्षा गुलाम रहने की मिटी नहीं। मैं बारह दिन अमरीका की जेल में अकारण बन्द था; बिना किसी गिरफ्तारी के वारंट के, बिना किसी कारण के, लेकिन भारत की नपुंसक सरकार की यह हैसियत न हो सकी कि वह अमरीका को पूछ सकती कि एक भारतीय नागरिक को बिना किसी जुर्म के, बिना किसी गिरफ्तारी के वॉरंट के बारह संगीनों के दबाव में जबरदस्ती जेल में बन्द रखना और यह मौका भी न देना--जो कि उनका ही विधान है--कि मैं अपने वकीलों से मिल सकूं या अपने वकीलों को खबर कर सकूं। भारत की सरकार चुप रही। भारत का राजदूत चुप रहा। वे बारह दिन मेरे लिए इतने शर्म के दिन थे--इस बात की शर्म के कि मैं भारत में पैदा क्यों हुआ। जिस देश के पास कोई गौरव नहीं है, और जिस देश के पास कोई गरिमा नहीं है और जिस देश के पास अपने नागरिकों को सुरक्षा देने का कोई साधन नहीं है। और कम से कम जिज्ञासा तो की जा सकती थी, पूछा तो जा सकता था। आखिर भारत का राजदूत अमरीका में बैठकर क्या कर रहा है? उन बारह दिनों में एक ही बात जो मेरे मन में कांटे की तरह चुभती रही वह यह थी कि क्या भारत ने अपनी आत्मा बिल्कुल खो दी है?

और जिस दिन मुझे अदालत से छोड़ा गया--क्योंकि कोई कारण न था मुझे बन्द रखने का--उस दिन भारतीय राजदूतावास का आदमी मुझसे मिलने आया कि भारत के प्रधानमंत्री ने पुछवाया है कि हम आपकी क्या सेवा कर सकते हैं? मैंने कहा, बारह दिनों तक शायद भारत के मंत्री, भारत के प्रधानमंत्री अफीम के नशे में थे। भारत का राजदूत शराब पिये हुए पड़ा था। आज जबकि जेल से छूट गया हूं तुम पूछने आये हो कि हम क्या सेवा कर सकते हैं! मुझे तुम्हारी सेवा की कोई जरूरत नहीं है। हां, कभी तुम्हारे प्रधानमंत्री को मेरी सेवा की जरूरत हो तो मुझसे पूछ लेना। और ज्यादा देर नहीं लगेगी तुम्हारे प्रधानमंत्री को मेरी सेवा की जरूरत पड़ेगी। क्योंकि जिन दो कौड़ी के लोगों को तुमने प्रधानमंत्री बना कर बिठा दिया है उनके प्रधानमंत्री होने की हैसियत क्या है? क्या

तुम्हारी मां को गोली मार कर हत्या दे दी जाये तो तुम प्रधानमंत्री बनने के योग्य हो जाते हो? प्रधानमंत्री होना तो दूर, किसी दफ्तर में क्लर्क होने के भी योग्य नहीं होते। तुम्हारी मां और बाप दोनों भी अगर गोली से मार दिये जाएं तो भी किसी दफ्तर में चपरासी होने के लिए तुम्हें योग्यता की जरूरत पड़ेगी। यह कोई योग्यता नहीं है। लेकिन छिपाने के लिए, कि हमने फिक्र की है...और फिक्र तब की जबकि मैं जेल के बाहर हो गया।

भारत दो हजार साल से गुलाम था। इस गुलामी ने भारत को गरीब ही बनाया होता तो कुछ बड़ी बात न थी। इस गुलामी ने भारत को इस बात का स्मरण भी भुला दिया कि एक भीतरी समृद्धि भी होती है। एक आत्मा का भी गौरव है, जो धन से नहीं तौला जाता और न धन से खरीदा जाता है। जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है उसे धन से खरीदने का कोई उपाय नहीं है। और तीन सौ वर्षों की अंग्रेजों की गुलामी ने भारत को जो शिक्षा दी वह शिक्षा कम थी, जहर ज्यादा था। उसने भारत की ही प्रतिभा को भारत के विपरीत जहर से भर दिया। आज तुम्हें पता भी नहीं है कि तुमने उपनिषद के दिनों में किन ऊंचाइयों पर उड़ानें लीं। आज तुम्हें पता भी नहीं है कि तुम्हारे रहस्यवादियों ने--कबीर ने और नानक ने और दादू ने और फरीद ने आकाश के किन तारों को छू लिया है। आज तुम्हें पता भी नहीं है कि बुद्ध ने, महावीर ने मनुष्य-जाति के भीतर जो छिपी हुई चेतना है उसके अन्तिम शिखर को, उसके गौरीशंकर को उपलब्ध कर लिया है। हम उस सबके वसीयतदार हैं। और वसीयतदार होना कोई छोटी-मोटी जिम्मेवारी नहीं है। हमें उस वसीयत को सारी दुनिया तक पहुंचाना है क्योंकि दुनिया में आदमी के पास कुछ भी नहीं है। आदमी खोखला है।

ईसाइयत या इस्लाम या यहूदी धर्म--तीन धर्म जो भारत के बाहर पैदा हुए हैं, धर्म कहने के योग्य भी नहीं हैं। क्योंकि जहां ध्यान का ही कोई स्थान न हो वहां धर्म की कोई संभावना नहीं हो सकती। और इन तीनों धर्मों में ध्यान का कोई स्थान नहीं है। इस देश ने ध्यान के विज्ञान को हजारों साल तक धार दी है, तलवार बनाया है। हमारे पास कुछ है जो किसी के पास नहीं है।

मेरा विरोध मेरा विरोध नहीं है। मैं एक साधारण आदमी, तुम जैसा आदमी–मेरे विरोध से क्या होगा? यूरोप की पार्लियामेंट ने तय किया है कि मैं किसी यूरोप के अड्डे पर अपने हवाई जहाज को उतार नहीं सकता। इंग्लैंड में एक रात बारह बजे मैं पहुंचा और सिर्फ छह घण्टे हवाई जहाज पर रुकना चाहता था, उसकी भी आज्ञा नहीं थी। और दूसरे दिन इंग्लैंड की पार्लियामेंट में इस पर प्रश्न था तो इंग्लैंड के प्रधानमंत्री मारग्रेट थैचर ने कहा कि यह आदमी खतरनाक है। न मेरे हाथ में कोई न्युक्लियर शस्त्र हैं... और अपने

हवाई जहाज पर, एयरपोर्ट पर छह घण्टे सोया रहता तो इंग्लैंड को क्या खतरा हो सकता था? यह पूछा गया कि क्या खतरा था? तो खतरे के नाम पर बताया गया कि यह आदमी युवकों की नैतिकता को नष्ट कर सकता है, देश के धर्म को नष्ट कर सकता है, हमारी जाति की परम्पराओं को, हमारे अतीत को नष्ट कर सकता है। और उस पूरी पार्लियामेंट में एक भी कम्बख्त ऐसा न था जो कम से कम इतना तो पूछ लेता कि छह घण्टे में अगर यह सारा काम हवाई जहाज पर रहकर एयरपोर्ट पर हो सकता है तो तुम दो हजार साल से क्या कर रहे हो? जिस नैतिकता का पाठ और जिस धर्म का पाठ चर्चों, स्कूलों, कालेजों, युनिवर्सिटियों में दिया जा रहा है, अगर वह छह घण्टे में नष्ट की जा सकती है तो नष्ट कर देने योग्य है। जरूर कोई झूठ का ही लक्षण है। सिर्फ झूठ ही क्षण में नष्ट किया जा सकता है। अगर तुम्हें यह भ्रांति है कि दो और दो मिल कर पांच होते हैं तो कोई भी आदमी एक क्षण में इसको नष्ट कर सकता है। सिर्फ जरा-सी समझाने की बात है कि दो और दो पांच कैसे हो सकते हैं? दो और दो बराबर हैं इसलिए चार से ज्यादा नहीं हो सकते। तो जरूर झूठ फैलाए गए हैं। और उन झूठों के आधारों पर नैतिकताएं खड़ी हैं। और इस दुनिया में सबसे बड़ा दुख आदमी को तब होता है जब उसके झूठ उससे छीने जाते हैं--जिनको वह सत्य समझता था और जिनके सहारे वह सोचता था कि उसके पास कुछ है।

मेरा कसूर एक ही था कि मैंने वही कहा, जो है, जैसा है।

खबरें हैं--और एक स्रोत से नहीं, अनेक स्रोतों से--कि अमरीकी प्रेसिडैंट आधा करोड़ रुपया देने को तैयार हैं अगर कोई मेरी हत्या करने को तैयार हो। यह कीमत थोड़ी ज्यादा है। आदमी के शरीर की कीमत ही क्या है? जानवरों के शरीर की भी कीमत होती है। चमड़ी के जूते बन सकते हैं, हड्डियों के खिलौने बन सकते हैं, ग्रंथियों से दवाएं बन सकती हैं। आदमी के पास इस दुनिया में सबसे ज्यादा मूल्यरहित शरीर है, जिसकी कोई कीमत नहीं है। उल्टे उसे जलाने के लिए कुछ और खर्च करना पड़ता है। उसे घर में रख भी नहीं सकते।

आधा करोड़ रुपया अगर कोई देश मेरी हत्या पर खर्च करने को राजी है तो यूं ही नहीं, डर भारी है। क्योंकि मैंने प्रेसिडैंट रोनाल्ड रीगन को चुनौती दी थी कि मैं व्हाइट हाउस आने के लिए तैयार हूं। वह खुद एक फैनेटिक क्रिश्चियन है। उनकी मान्यता है कि ईसाइयत के सिवाय कोई धर्म धर्म नहीं है। और मैंने कहा, मैं इसे चुनौती देता हूं और तुम्हारे लोगों के बीच, तुम्हारे घर में मैं विवाद करने को आ जाने के लिए राजी हूं। अगर

तुम मुझे समझा लो तो मैं ईसाई हो जाऊंगा और अगर मैं तुम्हें समझा लूं तो संन्यासी होना है। जानते हैं रोनाल्ड रीगन के जिन आधारों पर वे अपनी ईसाइयत को धर्म कहते हैं वे निहायत बेवकूफी की बातें हैं।

जीसस पानी पर चले हों, चले भी हों तो भी धर्म का कोई इससे संबंध नहीं है। एक तो वह कभी चले नहीं; अगर चले हों तो उनके पादरियों को, कम से कम पोप को किसी स्वीमिंग पूल पर ही चल कर बता देना चाहिए। प्रतिनिधि को कम से कम थोड़ा तो प्रतिनिधित्व करना चाहिए। स्वीमिंग पूल बड़ा दिखाई देता हो तो एक बाथ टब भी काफी है। दो कदम ही सिद्ध कर देंगे कि पानी पर चलना प्रकृति के कानून के खिलाफ है। और धर्म प्रकृति के कानून के खिलाफ नहीं है, धर्म प्रकृति के कानून का विकास है। धर्म प्रकृति के कानून का सहारा है। धर्म का अर्थ ही यही होता है कि जो प्रकृति में छिपा हुआ है उसे हम प्रकट करें।

लेकिन बेहूदा बातों पर--कि जीसस मुर्दा को जिन्दा कर देते हैं... मुर्दा को जिन्दा भी कर दोगे तो क्या होगा? आखिर जिस लजारस को ईसा ने जिन्दा किया था वह फिर मर तो गया। और जब मरना ही है तो आज मरे कि कल मरे क्या फर्क पड़ता है? इससे अध्यात्म का क्या मूल्य है? और जो आदमी एक आदमी को जिन्दा कर सकता था उसके देश में सिर्फ एक ही आदमी मरा हो उसके समय में, ऐसा तो नहीं है। आदमी रोज मरते हैं। लेकिन लजारस बचपन का दोस्त था और यह सीधी मदारीगिरी है। इस आदमी को गुफा में छिपाया गया है और जीसस बाहर आकर आवाज देते हैं, 'लजारस, अपनी मौत से बाहर आ जाओ।' और लजारस तत्काल बाहर आ जाते हैं। लेकिन अगर सचमुच लजारस मर गया था, और मृत्यु के पार जो अमृत का लोक है उसके दर्शन करके लौटा था तो उसके जीवन में कोई प्रतिभा प्रकट होनी थी, उसकी आंखों में कोई रोशनी होनी थी, उसके हाथों में कोई जादू होना था, उसके शब्दों में कोई अधिकार होना था। बस इस घटना के बाद लजारस का कोई पता नहीं चलता। इसकी भी कोई खबर नहीं कि वह कब मरा।

इन सड़ी-गली बातों पर, इन सड़ी-गली कहानियों पर, झूठी ईजादों पर धर्म खड़े नहीं होते। धर्म को खड़ा करने के लिए चेतना का विज्ञान चाहिए। जीसस को खुद भी चेतना के विज्ञान का कोई पता नहीं है। इसलिए सूली पर वह रास्ता देख रहे हैं कि आसमान से देवता उतरते ही होंगे अपने-अपने बैंड-बाजे लेकर। फूलों की वर्षा बस होने को है--अब हुई, अब हुई। लेकिन न फूल बरसे, न बाजे बजे, न संगीत उठा। आकाश जैसा

खाली था वैसा खाली रहा। और जीसस का चूंकि सारा आधार विश्वास था, कोई अनुभव न था, इसलिए आखिर-आखिर में टूट गया। खींचा बहुत, दिलाया अपने को भरोसा बहुत कि परीक्षा का क्षण है, लेकिन आखिर में चिल्ला कर कहा आकाश की तरफ कि हे परमात्मा! क्या तू मुझे भूल गया है? न तो परमात्मा का कोई अनुभव है न कोई आत्मा का अनुभव है।

चूंकि मैंने ईसाइयत को उघाड़कर सामने रखने की कोशिश की, और परिणामस्वरूप एक अनूठी क्रांति घटित हुई कि पश्चिम का युवक वर्ग, सुशिक्षित वर्ग, प्रतिभाशाली लोग, चित्रकार, मूर्तिकार, वैज्ञानिक, डाक्टर, प्रोफेसर्स, कवि, अभिनेता, नर्तक--विश्वख्याति के लोग जब मुझसे प्रभावित होकर कम्यून में सम्मिलित होने लगे तो सारी ईसाइयत के भीतर एक घबराहट फैल गई। क्योंकि अब तक उन्होंने पूरब में लोगों को हिन्दू से ईसाई बनाया था, मुसलमान से ईसाई बनाया था; लेकिन जिन लोगों को बनाया था वे या तो भिखमंगे थे या अनाथ बच्चे थे या आदिवासी थे जिनको अभी कपड़े भी पहनना नहीं आते थे, अशिक्षित थे, जिनको धर्म से कोई वास्ता न था, जिन्हें रोटी चाहिए थी। रोटी के साथ-साथ उन्हें धर्म भी पिला दिया। लेकिन पूरब में उन्होंने एक भी सुसंस्कृत व्यक्ति को, एक भी व्यक्ति को जो उपनिषदों को समझता हो, एक भी व्यक्ति को जो बुद्ध के चरणों पर चला हो, ईसाई बनाने में सफलता हासिल नहीं की। मेरी सफलता उनके लिए प्राणघाती मालूम हुई। वे हमारे भिखमंगों को ईसाई बना रहे थे। मैं उनकी प्रतिभाओं को ईसाइयत की कैद के बाहर ला रहा था। यह सफलता नहीं सही जा सकती थी। यह सफलता मेरा जुर्म थी।

और तुम ठीक पूछते हो कि बुद्धिजीवियों को क्या हुआ? सिर्फ भारत के संबंध में ठीक है, पश्चिम के बुद्धिजीवियों के संबंध में ठीक नहीं है। सिर्फ इटली में पैंसठ श्रेष्ठतम बुद्धिजीवियों में जिनमें अनेक नोबेल प्राइज विनर हैं, विश्वविख्यात कलाकार हैं, कवि हैं उन्होंने इटली की सरकार को दरख्वास्त की है कि मुझे इटली आने से रोकना लोकतंत्र की हत्या है। मेरी बातों पर तुम विश्वास करो या न करो लेकिन मुझे उन्हें हकपूर्वक प्रकट करने से नहीं रोका जा सकता। और अगर मुझे रोका जा रहा है तो तुम अपने हाथ से अपना गला घोंट रहे हो। छह महीने से मैं कोशिश कर रहा हूं इटली में प्रवेश की, लेकिन पोप इटली सरकार को रोकने पर लगा हुआ है।

पोप हिन्दुस्तान आये तो मैंने स्वागत किया। और मैंने उन लोगों का विरोध किया जो पोप को पत्थर मारकर और झंडियां दिखाकर और गालियां देकर वापिस लौट जाने के

लिए कह रहे थे। यह भारतीयता नहीं है, यह संस्कृति नहीं है। यह कोई विरोध का ढंग नहीं है। यह कोई आदमियत का ढंग नहीं है। अगर पोप भारत आये तो उन्हें जगह-जगह से निमंत्रण मिलना चाहिए थे कि हम संवाद चाहते हैं, हम सुनना चाहते हैं कि आपके धर्म की बुनियादें क्या हैं और आपके समक्ष हम अपने धर्म की बुनियादों को रखना चाहते हैं ताकि हमारे लोग तुलना कर सकें, विचार कर सकें। हो सकता है कि आप सही हों। और हम सत्य के साथ हैं। यह कोई सवाल नहीं है कि सत्य कौन के मुंह से निकलता है।

इटली की सरकार रोज बहाना कर रही है कि वह आज निर्णय करती है, कल निर्णय करती है। लेकिन पोप का अड़ंगा भारी है कि मुझे इटली में प्रवेश न होने दिया जाए। और अड़ंगे का सबसे बड़ा कारण है कि पैंसठ इटली के अत्यधिक प्रतिष्ठित लोगों द्वारा निमंत्रण; और यह मेरी उनके लिए चुनौती कि मैं वेटिकन आकर सवाद करना चाहता हूं। कोई लड़ने और झगड़ने की बात नहीं है। लड़ते-झगड़ते वे हैं जो कमजोर हैं और झूठ हैं। अगर तुम्हारे पास सत्य है तो बात ही काफी है, तलवारें नहीं उठानी पड़तीं।

जर्मनी के बुद्धिजीवियों ने विरोध किया है। हालैण्ड के बुद्धिजीवी अदालत में सरकार को ले गये हैं। स्पेन के बुद्धिजीवी स्पेन में लड़ रहे हैं कि मुझे स्पेन में प्रवेश मिलना चाहिए। मुझे रोकने का किसी को कोई भी हक नहीं है। अगर मेरी बात नहीं माननी है तो कोई जबरदस्ती नहीं है। सिर्फ भारत एक ऐसा देश है जिसके बुद्धिजीवियों ने कोई विरोध नहीं किया; जिसके बुद्धिजीवियों ने भारत की सरकार को नहीं कहा कि तुम हमारे प्रतिनिधि हो या हमारे दुश्मन? भारत के बुद्धिजीवी चुप रहे क्योंकि भारत में सचमुच में कोई बुद्धिजीवी नहीं है। भारत में जिनको तुम बुद्धिजीवी कहते हो, दो कौड़ी पर बिकने को राजी हैं। इनके पास कोई आत्मगौरव नहीं है। इनके पास इनका अपना धर्म नहीं है, अपनी कोई पहचान नहीं है। ये खुद अपने हस्ताक्षर भूल गए हैं। और तीन सौ साल में ब्रिटेन ने इन्हें इस तरह भुलाया है कि ये क्लर्क बन गए हैं, स्कूल मास्टर बन गए हैं, स्टेशन मास्टर बन गए हैं, अखबारनवीज़ बन गए हैं। मगर बुद्धिजीवी होना कुछ बात और है। जहर पीने की हिम्मत होनी चाहिए। सत्य को पाने के लिए मूल्य चुकाना जरूरी है, सुकरात होने की जरूरत है। ये बुद्धिजीवी नहीं हैं।

फिर मुझसे तो और भी तकलीफ थी। मुझसे तकलीफ थी कि हिन्दुस्तान का बुद्धिजीवी बंटा हुआ है। या तो वह हिन्दू है, या मुसलमान है, या ईसाई है या जैन है। मैं तो कोई भी नहीं, सिर्फ आदमी हूं। आदमी के पक्ष में खड़े होने को कौन राजी है? हिन्दू को कोई प्रयोजन नहीं। हिन्दू शंकराचार्य खुश होंगे अगर मेरी हत्या कर दी जाती है। शायद

जलसे मनाएंगे। जैनाचार्य प्रसन्न होंगे कि एक झंझट टली। मुस्लिम इमाम आनंदित होंगे। कितने आदमी हैं इस देश में!

मुझे याद पड़ता है, एक आदमी ने नौकरी के लिए दरख्वास्त की। उसके मालिक ने पूछा, पिछली जगह तुमने कितने दिन काम किया? उसने कहा, मैंने दो साल काम किया। मालिक ने फोन उठाया और उस कम्पनी को फोन किया जहां वह कह रहा था उसने दो साल काम किया। और पूछा कि इस-इस नाम का आदमी आपके यहां कितने दिन काम किया। मालिक ने कहा, दो सप्ताह। वह हैरान हुआ। उसने कहा, लेकिन उसका तो कहना है उसने दो साल काम किया। दूसरा आदमी हंसा। उसने कहा, उसने दो साल नौकरी पायी, काम दो सप्ताह ही किया।

यहां कितने बुद्धिजीवी हैं जिन्होंने जगत को कोई बौद्धिक दान दिया हो? और मुझसे तो उनकी अड़चन है क्योंकि वे सब बंधे हैं अपने-अपने कारागृह से। उनकी जंजीरें हैं। और मैं उनकी जंजीरों के उतने ही खिलाफ हूं जितने ईसाइयों की जंजीरों के खिलाफ हूं। मैं दुनिया में आदमी चाहता हूं। मैं दुनिया में ईसाई नहीं चाहता और हिन्दू नहीं चाहता और मुसलमान नहीं चाहता। क्योंकि इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। तुम जंजीरें बदल लेते हो लेकिन तुम्हारी कैदी की स्थिति वही की वही बनी रहती है। तुम एक कारागृह से निकलते हो और दूसरे में प्रवेश कर जाते हो। तुम्हें खुला आकाश भाता ही नहीं है। और मैं तुम्हें खुले आकाश में लाना चाहता हूं।

तो कठिनाई है। इस मुल्क के बुद्धिजीवियों में से कोई विरोध नहीं हुआ। और आश्चर्य तो यह है कि मेरे अपने लोग, मेरे संन्यासी--उनकी हिम्मतें भी अन्ततः भारत की टूटी हुई हिम्मत के ही हिस्से हैं।

आज मैं तीन दिन से यहां हूं, विनोद खन्ना का कोई पता नहीं है। क्योंकि विनोद खन्ना की पत्नी का आदेश है कि अगर वह यहां आता है तो पत्नी के दरवाजे बन्द। मुझे छोड़ा जा सकता है, मगर पत्नी की बात मानना तो पति का धर्म है! सो बेचारा तड़पता होगा--विनोद की चाची यहां मौजूद होंगी, वह उसे खबर पहुंचा देंगी--कि तुमसे ऐसी आशा न थी कि तुम इतने बेजान निकलोगे।

और धर्म के नाम पर जिनके बड़े नाम हैं, उन सबसे मेरा विरोध हैं क्योंकि जिस कारण उनके बड़े नाम हैं वे बातें इतनी बेवकूफी की भी हैं कि मैं उनको समर्थन नहीं दे सकता। जैन मुनि स्नान नहीं करता। मैं समर्थन नहीं कर सकता। यह निपट नासमझी है। और खासकर बम्बई में जहां कि जैन मुनियों का अड्डा बना हुआ है, जहां पसीने से

तरबतर हैं, स्नान नहीं कर सकते। क्योंकि स्नान करना शरीर का प्रसाधन है। पागल हो गए हो तुम! दतौन नहीं कर सकते क्योंकि दतौन करना शरीर का प्रसाधन है। जैन मुनियों से बात करनी हो तो दूर बैठना पड़ता है क्योंकि उनके मुंह से बास आती है, उनके शरीर से बास आती है। वे गन्दगी के घर हैं। लेकिन सीधे-सीधे उनसे बात करनी... इतनी प्रतिभा भी हमारे पास नहीं रही कि हम सोच सकें, विचार कर सकें।

मैंने सुना है, एक रात एक बिस्तर पर एक औरत और एक आदमी, दोनों प्रेम में संलग्न हैं। और तत्काल उस औरत ने कहा, उठो, उठो। कार की आवाज सुनाई पड़ी, यह मेरे पति की कार है। तुम जल्दी से पास की अलमारी में छिप जाओ। वह आदमी उठा और पास की अलमारी में छिप गया। और कार पति की ही थी। पति भीतर आया। वह आदमी अलमारी में जब खड़ा था तब उसने धीरे-से एक आवाज सुनी। एक छोटा-सा लड़का भी यहां अलमारी में बैठा हुआ है। और वह लड़का कह रहा है कि बहुत अंधेरा है। उसने कहा, भैया, तू जरा धीरे बोल। अंधेरा कितना ही हो, मैं यहां मौजूद हूं। ये पांच रुपये रख और शान्त रह। उसने कहा, लेकिन अंधेरा ज्यादा है। दस रुपये ले मगर चुप तो रह। लड़का बोला, इससे काम नहीं चलेगा, अंधेरा बहुत-बहुत है। और मेरे मन में ऐसी घबराहट हो रही है कि जोर से चीख मार दूं। उस आदमी के पास पचास रुपये थे, उसने पूरे निकाल कर दे दिये कि बस अब ये आखिरी हैं। अब तू चीख मार या जो तुझे करना हो कर। अब मेरे पास कुछ भी नहीं है। उसने कहा, कोई फिक्र नहीं, शान्ति से खड़े रहो। मेरे पिताजी ज्यादा देर नहीं रुकते। उनकी रात की ड्यूटी है, वह जाने ही वाले हैं। और यह मेरा काम है।

दूसरे दिन इस लड़के ने अपनी दादी मां से कहा कि मुझे एक साइकिल खरीदनी है। उसकी दादी मां ने कहा कि साइकिल पचास से कम में न मिलेगी। तीन पहिये की साइकिल चाहिए थी। लड़के ने कहा तुम फिक्र न करो, रुपये का मैंने इन्तजाम किया हुआ है। उसने कहा कि तूने रुपये पाये कहां से? यह वह न बता सका कि रुपये उसने पाये कहां से। दादी ने कहा जब तक तू यह न बताये--वह बड़ी धार्मिक, हर रविवार को चर्च जाने वाली--जब तक तू यह न बताये, और रविवार का दिन था। उसने कहा कि तू चल मेरे साथ चर्च और पहले कन्फेशन कर पादरी से कि तूने रुपये कहां से पाए। मुझे नहीं बताता, मत बता लेकिन पादरी को तो बता। फिर मैं तुझे साइकिल की दुकान पर ले चलती हूं। वह उस कोठरी में गया जहां कन्फेशन करने वाले को खड़ा होना पड़ता है। और जरा-सी खिड़की से दूसरी तरफ चर्च का पादरी खड़ा होता है। जैसे ही पादरी आया,

उसने कहा कि नमस्कार,बहुत अंधेरा है। उसने कहा, कम्बख्त! तूने फिर शुरू कर दिया? और मेरे पास धेला नहीं है।

ये पादरी एक तरफ ब्रह्मचर्य का प्रचार करते रहेंगे और दूसरी तरफ इनकी जिन्दगी ठीक उससे उलटी चलती रहेगी। तुम्हारे संन्यासी तुम्हें समझाते रहे कि भोजन को स्वाद लेकर लेना पाप है। अस्वाद धर्म है। और जितनी बड़ी तोंदें तुम्हारे संन्यासियों की हैं उतनी बड़ी तोंदें तुम्हारी नहीं हैं। तुमने नित्यानन्द की तोंद देखी? अगर तुम नित्यानन्द का लेटा हुआ फोटो देख लो तो तुम हैरान हो जाओ कि यह ऐवरेस्ट है या आदमी की तोंद! जब मैं पहली दफा यह फोटो देखी तो मैंने कहा, अब क्या कहना! यह तोंद नित्यानन्द की है या नित्यानन्द तोंद के हैं? और यह समझा रहे हैं कि अस्वाद धर्म है। और अंधे सुन रहे हैं और मान रहे हैं कि अस्वाद धर्म है और इनकी तोंद साफ दिखाई पड़ रही है।

मेरी मुसीबत--मुझे जैसा दिखाई पड़ता है मैं ठीक वैसा ही कह देना चाहता हूं। उससे किसी को दुख पहुंच सकता है लेकिन दुख पहुंचाने की मेरी इच्छा न थी। इच्छा थी कि उस आदमी को समझ आए, सोच आए, विचार जगे। मैं घूमता रहूंगा दुनिया के कोने-कोने में। सिर्फ कैथलिक धर्म के पास एक लाख मिशनरी हैं। प्रोटेस्टैंट धर्म के पास अपने मिशनरी हैं। जैनियों के पास अपने संन्यासी हैं। बौद्धों के पास लाखों संन्यासी हैं। मैं अकेला हूं। लेकिन फिर भी हैरानी की बात है कि अगर तुमने एक बात का निर्णय कर लिया है कि तुम सत्य के साथ हो तो इस दुनिया में सबसे बड़ी ताकत तुम्हारे साथ है। तुम अकेले नहीं हो। इस दुनिया का आधार तुम्हारे साथ है, अस्तित्व तुम्हारे साथ है।

तो न मुझे बुद्धिजीवियों की चिन्ता है, न धर्मगुरुओं की चिन्ता है। मुझे चिन्ता है तो सिर्फ एक बात की कि कभी भूलकर भी मैं अपनी आत्मा को न बेचूं। कभी भूलकर भी मैं सत्य को भी न बेचूं। मौत को स्वीकार कर लूं लेकिन इस सत्य से मेरा साथ न छूटे। और मैं चाहता हूं कि तुम सब आशीर्वाद दो मुझे कि मौत वरणीय है लेकिन सत्य नहीं छोड़ा जा सकता। मैं अकेला काफी हूं। तुम्हारा आशीर्वाद पर्याप्त है।

प्रश्न : भगवान श्री, प्रसिद्ध चिन्तक एल्डुअस हक्सले ने मरने के कुछ दिन पहले कहा था कि यह कहना कठिन है कि गुफावासी मनुष्य और गगनचुंबी अट्टालिका में रहने वाले मनुष्य में कौन ज्यादा बर्बर है। आपने कहा हाल ही कि मनुष्य अभी बन्दर से ऊपर नहीं उठा है। इस पर कुछ कहने की कृपा करें।

मनुष्य के कृत्यों को देखो। तीन हजार वर्षों में पांच हजार युद्ध आदमी ने लड़े हैं। उसकी पूरी कहानी हत्याओं की कहानी है, लोगों को जिन्दा जला देने की कहानी है--और एक को नहीं, हजारों को। और यह कहानी खत्म नहीं हो गई है।

अभी मैं यूनान में था सिर्फ चार सप्ताह के लिए। और यूनान का चर्च और यूनान के चर्च का प्रमुख अधिकारी आर्च बिशप जहर उगलने लगा। तार पर तार प्रेसिडेंट, प्राइम मिनिस्टर, अखबारों को कि अगर मुझे यूनान से बाहर नहीं किया जाता तो हम जिन्दा इस खतरनाक आदमी को इस मकान के साथ जला देंगे जिसमें यह रह रहा है। मैं मकान के बाहर भी नहीं गया। जो मुझसे मिलने आये थे उनमें से कोई भी यूनानी न थे। मुझसे मिलने आये थे यूरोप के अलग-अलग देशों के संन्यासी। और वे मुझसे घर में आकर मिल रहे थे। मुझसे क्या खतरा था? और मुझे जिन्दा जला देने की धमकी--क्या तुम सोचते हो आदमी बन्दर से विकसित हो गया है? किसी बन्दर ने अब तक किसी दूसरे बन्दर को जिन्दा तो नहीं जलाया। कोई बन्दर न तो हिन्दू है, न मुसलमान है, न ईसाई है; बन्दर सिर्फ बन्दर है।

और अगर यही विकास है तो ऐसे विकास का कोई मतलब नहीं। सच तो यह है कि आदमी विकसित नहीं हुआ है, केवल वृक्षों से नीचे गिर गया है। अब तुम बन्दर के साथ भी मुकाबला नहीं कर सकते हो। अब तुममें वह बल भी नहीं है कि तुम एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर छलांग लगा जाओ। अब वह जान भी न रही, वह यौवन भी न रहा, वह ऊर्जा भी न रही। और तुम्हारे कृत्यों की पूरी कहानी इस बात का सबूत है कि तुम आदमी नहीं बने, राक्षस बन गए। हां राक्षस, लेकिन अच्छे-अच्छे नामों की आड़ में। हिन्दू की आड़ में तुम मुसलमान की छाती में छुरा भोंक सकते हो--बिना किसी परेशानी के। मुसलमान की आड़ में तुम हिन्दू के मन्दिर को जला सकते हो जिसने तुम्हारा कुछ भी नहीं बिगाड़ा--बिना किसी चिन्ता के।

दूसरे महायुद्ध में अकेले हिटलर ने छह करोड़ लोगों की हत्या की--एक आदमी ने। इसको तुम विकास कहोगे? दूसरा महायुद्ध खत्म होने को है, जर्मनी ने हथियार डाल दिये हैं और अमरीका के प्रेसीडैंट ने जापान के ऊपर, हिरोशिमा और नागासाकी पर एटम बम गिरवाये। खुद अमरीकी सेनापतियों का कहना है यह बिल्कुल बेकार बात थी क्योंकि जर्मनी के हार जाने के बाद जापान का हार जाना ज्यादा से ज्यादा दो सप्ताह की बात थी। पांच साल की लड़ाई अगर दो सप्ताह और चल जाती तो कुछ बिगड़ न जाता। लेकिन हिरोशिमा और नागासाकी जैसे बड़े नगरों पर जिनके निवासियों का युद्धों से कोई संबंध नहीं; छोटे बच्चे और बूढ़े और स्त्रियां--दस मिनट के भीतर दो लाख व्यक्ति राख हो गये। और अमरीका के जिस प्रेसिडैंट ने यह आज्ञा दी उसका नाम भी हमने अभी तक नहीं बदला। उस प्रेसिडैंट का नाम था, ट्रूमैन; सच्चा आदमी। अब तो कम से कम उसे अनट्रू मैन कहना शुरू कर दो। और दूसरे दिन सुबह जब अखबारों ने, अखबारों के प्रतिनिधियों ने प्रेसिडैंट से पूछा, क्या आप रात आराम से सो तो सके तो ट्रूमैन ने कहा मैं इतने आराम से कभी नहीं सोया जितना कल रात सोया, जब मुझे खबर मिली कि एटम बम सफल हो गया है। एटम बम की सफलता महत्वपूर्ण है। दो लाख निहत्थे, निर्दोष आदमियों की हत्या कोई चिन्ता पैदा नहीं करती। इसको तुम आदमी कहते हो?

नहीं, आदमी का कोई विकास नहीं हुआ। आदमी का सिर्फ एक ही विकास है और वह है कि वह अपनी अन्तरात्मा को पहचान ले। उसके सिवाय आदमी का कभी कोई विकास नहीं हो सकता। जिस दिन मैं अपनी अन्तरात्मा को पहचान लेता हूं उस दिन मैंने तुम्हारी अन्तरात्मा को भी पहचान लिया। जिस दिन मैंने अपने को जान लिया उस दिन मैंने इस जगत में जो भी जानने योग्य है, वह सब जान लिया। और उसके बाद मेरे जीवन में जो सुगन्ध होगी वही केवल मात्र विकास है; जो रोशनी होगी वही केवल एकमात्र विकास है। जिसको हम अभी तक विकास कहते रहे हैं वह कोई विकास नहीं है। हमारे पास बन्दरों से सामान ज्यादा है लेकिन हमारे पास बन्दरों से ज्यादा आत्मा नहीं है।

आत्मिक विकास ही एकमात्र विकास है।

यह भी हो सकता है कि आदमी अन्धा हो और अपने को जानता हो तो वह आंख वाले से बेहतर है। आखिर तुम्हारी आंख क्या देखेगी? उसने अन्धा होकर भी अपने को देख लिया है। और अपने को देखते ही उसने उस केन्द्र को देख लिया है जो सारे अस्तित्व का केन्द्र है। वह अनुभूति अमृत की अनुभूति है, शाश्वत नित्यता की अनुभूति है। केवल थोड़े से लोग मनुष्य-जाति के इतिहास में आदमी बने हैं। वे ही थोड़े से लोग जिन्होंने अपनी आत्मा को अनुभव किया है। शेष सब नाममात्र के आदमी हैं। उनके ऊपर लेबल आदमी का है, खोखा आदमी का है। भीतर कुछ भी नहीं है। और जो कुछ भी है वह हर तरह के जहर से भरा है, ईर्ष्या से भरा है, घृणा से भरा है, विध्वंस से भरा है, हिंसा से भरा है।

अन्तिम रूप में मैं तुमसे यही कहना चाहता हूं कि अगर तुम्हारे जीवन में जरा-सी भी बुद्धि है तो इस चुनौती को स्वीकार कर लेना कि बिना अपने को जाने अर्थी को उठने नहीं दोगे। हां, अपने को जान कर कल की उठने वाली अर्थी आज उठ जाये तो भी कोई हर्ज

नहीं। क्योंकि जिसने अपने को जान लिया उसकी फिर कोई मृत्यु नहीं है।

अमृत का अनुभव एकमात्र विकास है।

धन्यवाद।
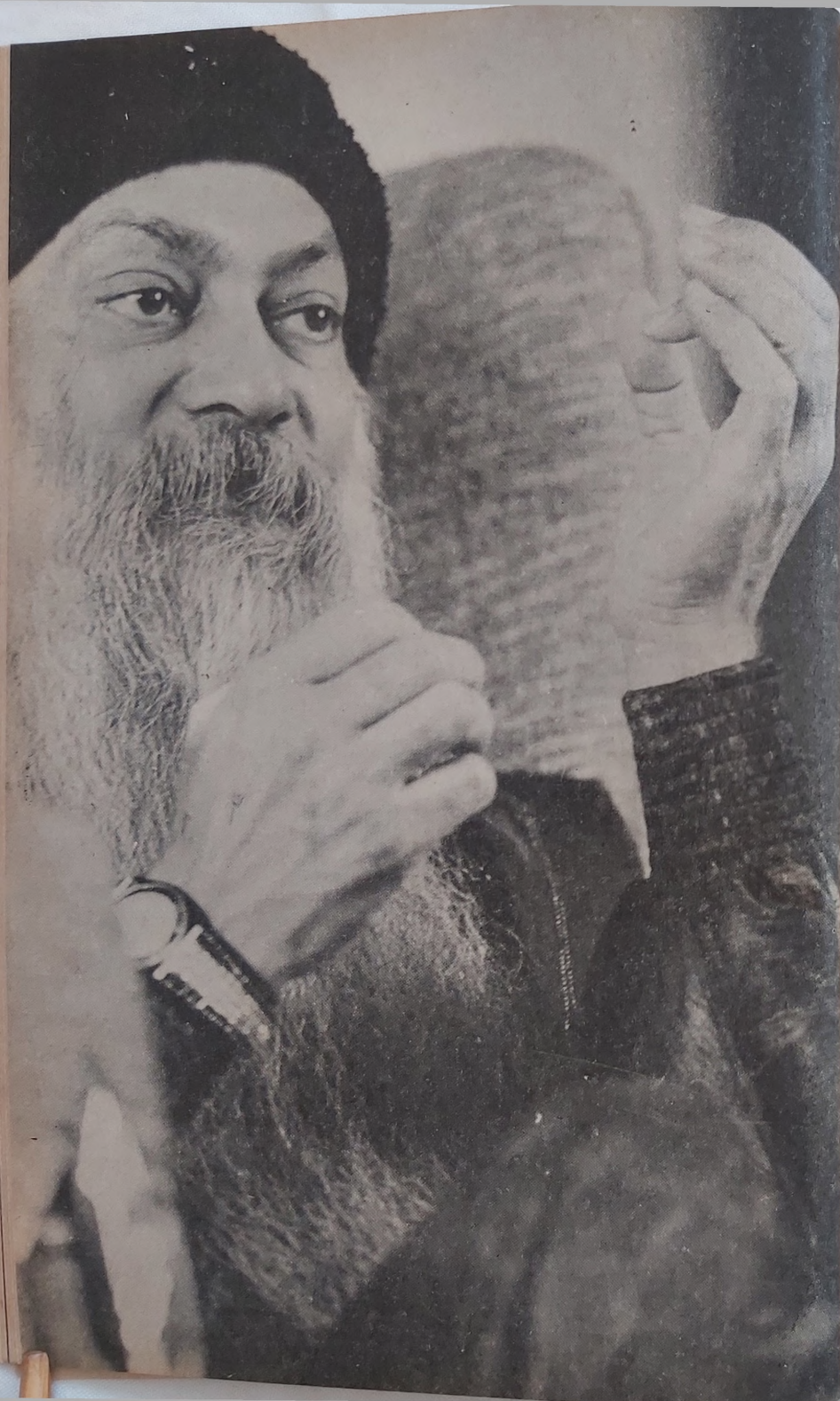
शून्य शिखर पर सुख की सेज

तीसरा प्रवचन : २ अगस्त, १९८६, ३.३० अपराह्न, सुमिला, जुहू, बम्बई

प्रश्न : भगवान, वह कौन-सी ऐसी अज्ञात शक्ति है, जो हमें आपकी तरफ खींच रही है?

जीवन में सभी कुछ अज्ञात है -- वह सब भी, जो हम सोचते हैं कि ज्ञात है।

सुकरात का वचन है कि जब मैं युवा था तो सोचता था, बहुत कुछ जानता हूं। जैसे-जैसे उम्र बढ़ी, जानना भी बढ़ा। लेकिन एक अनूठी घटना भी साथ-साथ, कदम-से-कदम मिलाते हुए चली। जितना ज्यादा जानने लगा, उतना ही अनुभव होने लगा कि कितना कम जानता हूं। और अंततः जीवन की वह घड़ी भी आयी, जब मेरे पास कहने को केवल एक शब्द था कि मैं सिर्फ इतना ही जानता हूं कि कुछ भी नहीं जानता। यह सुकरात के अंतिम वचनों में से है। जीवन भर की यात्रा, ज्ञान की खोज, और परिणाम एक बच्चे का भोलापन: जिसे कुछ भी पता नहीं है।

यूनान में डेल्फी का मंदिर है। उन दिनों बहुत प्रसिद्ध था, अब तो सिर्फ उसके खंडहर बाकी हैं। डेल्फी के मंदिर की जो पुजारिन थी, वह रामकृष्ण जैसी रही होगी। कभी कभी गीत गाते-गाते, नाचते-नाचते बेहोश होकर गिर पड़ती थी। और उस बेहोशी में जो कहती थी, वह होशवालों के होश गुम कर देते। जब सुकरात ने यह वचन कहा था, उसके थोड़े ही दिन बाद डेल्फी की पुजारिन ने घोषणा की कि सुकरात दुनिया का सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी है।

लोगों ने सुना, हैरानी में पड़े। सुकरात कहता है, मैं कुछ भी नहीं जानता, बस इतना ही जानता हूं। और डेल्फी की पुजारिन की बात कभी झूठ नहीं गई थी। और वह कहती है, सुकरात जगत का सबसे बड़ा महाज्ञानी है। वे लोग सुकरात के पास आये। सुकरात से निवेदन किया कि देवी की आविष्ट अवस्था में यह उद्घोष हुआ है। सुकरात ने कहा, देवी बेहोश थी, मैं होश में हूं। मैं फिर कहता हूं कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं। देवी गलत हो सकती है, सुकरात गलत नहीं हो सकता। देवी मुझे बाहर से जानती है, मैं स्वयं को भीतर से जानता हूं। लौट जाओ और देवी को कहना कि तुम्हारी एक भविष्यवाणी गलत हो गई। कम-से-कम एक तो निश्चित ही गलत हो गई। लोग वापिस लौटकर देवी से कहे और देवी हंसी। उसने कहा, कहना सुकरात से कि मैंने तुम्हें महाज्ञानी इसीलिए तो कहा था कि तुमने जान लिया है कि जगत में सभी कुछ अज्ञात है और रहस्यमय है। मेरे वक्तव्य में और तुम्हारे वक्तव्य में कोई विरोध नहीं है।

हम जन्मते हैं, पता नहीं क्यों! कौन-सी अज्ञात शक्ति हमें जीवन में लाती है। हम जीते भी हैं, पता नहीं क्यों! हम एक दिन मर भी जाते हैं और शायद यह चक्र अनंत बार घूम चुका है और हमें कोई भी पता नहीं कि क्यों?

यह प्रश्न भद्रा का है। चूंकि रोज मैं उसकी चोटी खींच रहा था कि भद्रा पूछ, भद्रा पूछ, बामुश्किल किसी तरह प्रश्न बनाकर ले आयी है।

जगत एक रहस्य है, एक ऐसा शास्त्र जो पढ़ा नहीं जा सकता। और जो दावा करते हैं जानने का, उनसे बड़े अज्ञानी इस दुनिया में दूसरे नहीं हैं। और जिनकी समझ में यह आ जाता है कि हम एक अज्ञात, अपरिसीम, अव्याख्य शक्ति की तरंगें हैं-- न ज़िनके प्रारंभ का कोई पता है, न जिनके अंत की कोई खबर है, वे ही थोड़े-से लोग अपने भीतर अचानक पाते हैं, जैसे चुंबक बन गये हों।

भद्रा पूछ रही है, वह कौन-सी अज्ञात शक्ति है, जो हमें आपकी ओर खींचती है? वह वही अज्ञात शक्ति है, जो तुम्हारे भीतर है और मेरे भीतर है। न मैं उसका नाम जानता हूं, न तुम उसका नाम जानती हो। लेकिन मैं इतना जानता हूं कि वह अज्ञात है और बेनाम है। और तुम्हें अभी भी यह भ्रम है कि शायद किसी दिन तुम उसे पहचान लोगी, उसके नाम को जान लोगी। जिस दिन यह भ्रम टूट जायेगा, उस दिन तुम भी एक अपूर्व आकर्षण और चुंबक का केन्द्र बन जाओगे। तुम्हारे भीतर भी वह कशिश होगी। तुम्हारे शब्दों में भी वही अधिकार होगा, क्योंकि तब तुम नहीं बोलते, तब तुम्हारा गीत तुम्हारा गीत नहीं है। तब तो तुम सिर्फ बांस की पोली पोंगरी हो। ओंठ किसी और के हैं और गीत

किसी और का है। तुम्हारा धन्यभाग इतना कि तुम उस गीत को अपने भीतर से प्रवाहित होने देते हो। और यह प्रवाह इस जगत का सबसे बड़ा आनंद है। ज्ञान की खोज मत करो, आनंद की खोज करो। आनंद है जो तुम्हें खींचता है मेरी ओर। मेरा मिट जाना है जो खींचता है तुम्हें मेरी ओर। और मिट कर ही तुम आनंद को पा सकते हो।

हम सब नामों से चिपके हैं -- झूठे नाम। पैदा हुए थे तो साथ में न कोई आइडेंटिटी कार्ड था, न कोई नाम की छोटी-सी स्लिप थी। अज्ञात तुम आये थे। नाम तो हमने चिपका दिये हैं। लेबल हैं जो हम पर लगा दिये हैं। और जिस दिन तुम जाओगे, उस दिन उन लेबलों को हम अलग कर लेंगे। क्योंकि फिर तुम अज्ञात में प्रवेश कर रहे हो। लेकिन इन दो अज्ञातों के बीच में भी जो था, वह भी अज्ञात था। नाम, प्रतिष्ठा, सम्मान, उपाधियां, वे सब चिपकायी हुई बातें थीं, जो सब उखड़ जायेंगी।

मैं यह कहना चाहता हूं कि जगत को तीन हिस्सों में बांटा जा सकता है। ज्ञात, द नोन; अज्ञात, द अननोन; और अज्ञेय, द अननोएबल। जो आज ज्ञात है, कल अज्ञात था। जो आज अज्ञात है, शायद कल ज्ञात हो जाये। विज्ञान केवल दो कोटियां मानता है: ज्ञात की और अज्ञात की। विज्ञान सोचता है एक दिन आयेगा, एक घड़ी आयेगी-- उनके हिसाब से शुभ की घड़ी, मेरे हिसाब से दुर्भाग्य का क्षण--जिस दिन सब अज्ञात ज्ञात में बदल जायेगा। उस दिन जीवन अर्थहीन होगा। उस दिन जीवन के पास न कोई नयी चुनौती होगी, न खोज के लिए कोई नया आयाम होगा। नहीं, यह घटना कभी नहीं घटेगी। क्योंकि एक और कोटि है अज्ञेय की: जो सदा अज्ञेय है। जो पहले भी अज्ञेय था, अब भी अज्ञेय है और कल भी अज्ञेय रहेगा। तुम वही हो: अननोएबल। और अपने को इस भांति पहचान लेना कि मेरे भीतर अज्ञेय का वास है, स्वयं को मन्दिर में बदल लेना है। क्योंकि अज्ञेय ईश्वर का दूसरा नाम है। हम उसका रस तो पी सकते हैं। उपनिषद कहते हैं--रसो वै सः। हम उसका स्वाद तो ले सकते हैं, लेकिन उसकी व्याख्या, उसकी परिभाषा, उसे नाम नहीं दे सकते।

मैंने उस रस को चखा है। और तुम्हारे भीतर भी उस रस को चखने की जन्मों-जन्मों से प्यास है। वही प्यास तुम्हें खींच लाती है 'तुम्हारे बावजूद', क्योंकि खतरा है अज्ञेय में प्रवेश का। ज्ञात से तो आदमी संतुष्ट होता है: जानता है, पहचानता है। अज्ञात से भी इतना डर नहीं लगता, आज नहीं कल जान लेंगे। लेकिन अज्ञेय? वहां तो सिर्फ खो जाना है। इस अज्ञेय को हमने नाम देकर बड़ी भूलें कीं। किसी ने ईश्वर कहा, किसी ने खुदा और किसी ने परमात्मा और किसी ने यहोवा। और हजार-हजार नाम हमने दिये, जो सब

झूठे नाम हैं। हम उसे जानते ही नहीं, जान सकते भी नहीं; लेकिन जी सकते हैं, जी रहे हैं। वह हमारी सांस-सांस में है, हमारी आंखों की झलक-झलक में है।

तो जानने की यात्रा के लिए मेरा आमंत्रण नहीं है। मेरा आमंत्रण है होने की यात्रा के लिए। वही तुम्हें खींच लाता है। वही तुम्हारे लिए आकर्षण है। मैं तुम्हें ज्ञानी नहीं बनाना चाहता हूं। मैं चाहता हूं कि तुम उतने ही निर्दोष हो जाओ, जितने निर्दोष जन्म के पहले क्षण में थे। आंखें खुली थीं, सब दिखाई पड़ता था; लेकिन कोई नाम न था, कोई शब्द न था।

ईसाइयों की बाइबिल में एक अनूठी बात है, जिसका मैं विरोध करता रहा हूं। बाइबिल कहती है, सबसे पहले शब्द था, शब्द के साथ ईश्वर था और शब्द ही ईश्वर था। मैंने बड़े से बड़े ईसाई पंडितों से पूछा है कि शब्द में और ध्वनि में क्या अंतर है? पहाड़ से जलप्रपात गिरता है उसे तुम शब्द नहीं कहते, उसे तुम ध्वनि कहते हो। घने जंगलों में से हवाएं सरसराती हुई गुजरती हैं, उसे तुम शब्द नहीं कहते, उसे तुम ध्वनि कहते हो। क्योंकि शब्द का अर्थ होता है ऐसी ध्वनि, जिसको अर्थ दे दिया गया। तो प्रथमतः शब्द तो हो ही नहीं सकता, क्योंकि उसके पहले किसी की जरूरत पड़ेगी, जो उसे अर्थ दे। शब्द से बेहतर होगा कि कहें पहले ध्वनि थी। भूल थोड़ी कम हो जाती है लेकिन मिट नहीं जाती। क्योंकि ध्वनि को सुनने के लिए भी कोई कान चाहिए। जब कोई भी सुनने वाला नहीं है तो ध्वनि का भी कोई अस्तित्व नहीं होता। शायद तुम सोचते होओगे कि जंगलों में गिरते हुए जलप्रपातों का वह स्वर-संगीत तुम्हारे चले जाने पर भी वैसा ही बना रहता है-- तुम गलती में हो। तुम गये कि वह भी गया। वह दो के बीच था। तुम्हारे कान जरूरी थे।

ध्वनि भी नहीं हो सकती। तो कौन था जो सबसे पहले था? उपनिषद बहुत ईमानदार हैं। उपनिषदों से ज्यादा ईमानदार किताबें इस जमीन पर दूसरी नहीं हैं। उपनिषद कहते हैं, वह कौन था जो पहले था, किसी को भी कोई पता नहीं है। कैसे हो सकता है पता? वह कौन था जो था? उसका कोई भी तो साक्षी नहीं है। और कौन है जो अंत में रह जायेगा? उसका भी कोई साक्षी नहीं है। और अगर प्रारंभ में अज्ञेय है और अंत में अज्ञेय है तो बीच में भी अज्ञेय ही है। तुम्हारे सब नाम-धाम झूठे हैं। तुम्हारी जाति, तुम्हारे धर्म, तुम्हारी दीवारें झूठी हैं। तुम्हारे राष्ट्र और तुम्हारे सारे भेद झूठे हैं।

ध्यान एकमात्र प्रक्रिया है उस अज्ञेय में उतर जाने की, जहां तुम अचानक मौन हो जाते हो। क्योंकि जो तुम देखते हो उसको कोई भी शब्द नहीं दिया जा सकता। और उस

अज्ञेय से ही आकर्षण पैदा होता है।

हजारों लोग बुद्ध के पास मधुमक्खियों की तरह चले आये। न कोई विज्ञापन था, न कोई खबर थी, लेकिन जब फूल खिलते हैं तब मधुमक्खियों को पता चल ही जाता है। इतना मैं तुमसे कह सकता हूं कि मैंने अपने भीतर झांका है और उस शून्य को अनुभव किया है, जिसका कोई नाम नहीं है, कोई धर्म नहीं है। वही है तुम्हारा आकर्षण। और ईश्वर करे कि तुम भी उसको भीतर अपने जान लो। जितने ज्यादा लोग जान लें, जितने ज्यादा फूल खिलें, उतनी करोड़ों मधुमक्खियों के जीवन में बहार आ जाये।

दूसरा प्रश्नः प्यारे भगवान, बीस साल से आपके साथ रहते-रहते मेरा आमूल परिवर्तन हो गया है, मैं जो पहले थी वह अब नहीं हूं। शांति और सुख से भर गई हूं। आपकी अनुकंपा अपार है, अब मुझे क्या करना चाहिए?

अब दोनों हाथ उलीचो। सुख और शांति जब तुम्हारे भीतर अनुभव हो तो कंजूसी मत करना। पुरानी आदतें हैं कि जो भी मूल्यवान है, उसे हम तिजोड़ियों में बंद कर देते हैं और सुख और शांति से ज्यादा मूल्यवान तो तुमने कुछ जाना नहीं है। यह तुम्हारा सौभाग्य है कि तुम्हारे जीवन में सुख है और शांति है। चूक न जाना। क्योंकि जितनी ऊंचाई से आदमी गिरता है, उतनी ही निचाई में गिर जाता है। बांटो, उलीचो।

कबीर ने कहा हैः दोनों हाथ उलीचिये यही सज्जन को काम। और यह बड़े मजे की बात है। क्योंकि जितना तुम उलीचते हो उतना ही तुम पाते हो कि तुम्हारे भीतर नए स्रोत, नए झरने, नित नए अनुभव प्रगट होते चले जाते हैं।

सुख और शांति के भी ऊपर कुछ है। सुख और शांति मंजिल नहीं हैं। सुख और शांति के ऊपर ही शून्य है। और जब तक तुम सुख और शांति को उलीचने में समर्थ न हो जाओगे, तुम उस शून्यता को अनुभव न कर सकोगे, जिस शून्यता में इस जीवन के सारे रहस्य उतर आते हैं--अपने-आप, बिन बुलाये।

पुरानी कहावत है, हम मेहमान को अतिथि कहते थे। और अतिथि को ईश्वर का दर्जा देते थे। लेकिन शायद तुमने न सोचा हो कि अतिथि शब्द का अर्थ क्या होता है। तिथि का अर्थ तो तारीख होता है। अतिथि का अर्थ होता है जो बिना तारीख बताए, अचानक, न मालूम किस घड़ी तुम्हारे भीतर मौजूद हो जाये। और जो अतिथि की तरह तुम्हारे भीतर मौजूद हो जाये, वही जीवन का सार-तत्व है, वही ब्रह्मानुभव है, वही

समाधि है।

सुख और शांति तो पहरेदार हैं। अभी मन्दिर के भीतर प्रवेश करना है। अभी मन्दिर के देवता से मिलना है। तो यहीं सीढ़ियों पर बैठ कर मत रह जाना। सुख और शांति बड़े लुभावने हैं, क्योंकि हम इतने तनाव में जीये हैं जन्मों-जन्मों से, इतनी अशांति झेली है, इतने नर्कों से गुजरे हैं कि जब सुख और शांति मिलती है तो लगता है, आ गयी मंजिल। नहीं, केवल सीढ़ियां आयी हैं। दो-चार कदम और। बस दो-चार कदम और। थोड़ी-सी हिम्मत और। जब तक तुम्हें शून्यता का अनुभव न हो--यह मैं तुम्हें कसौटी देता हूं--तब तक रुकना मत। क्योंकि उसी शून्यता में अतिथि का आगमन होता है। जब तक तुम अपने से भरे हो, परमात्मा से नहीं भर सकते हो। जब तुम अपने से खाली हो जाते हो, शून्य हो जाते हो तो अनंत दिशाओं से जीवन का सारा सौंदर्य और जीवन का सारा रस तुम्हारी तरफ बहने लगता है।

ध्यान का लक्ष्य है समाधि, शून्यता--ताकि तुम मिट जाओ और वही रह जाये जो कभी नहीं मिटता है।

तीसरा प्रश्न : भगवान, आज जीवन्त फूल की महक, सुन्दरता, निजीपन, फिर से जिन्दगी खिल गयी। प्लास्टिक के फूल कैसे भी हों लेकिन सुवास नहीं। यह मोह नहीं है भगवान, यह सौंदर्यबोध है। आपकी कृपा। आपका अनुग्रह।

यह सच है कि प्लास्टिक के फूलों में सुवास नहीं होती। और यह भी सच है कि प्लास्टिक के फूल मरते नहीं। जीये ही चले जाते हैं। रोज धो दो और रोज नए हो जाते हैं। असली फूल सुबह सूरज की किरणों के साथ खिलते हैं, अपनी सुवास को बिखेर देते हैं और सांझ होते-होते उनकी पंखुड़ियां धूल में मिल जाती हैं। फिर दुबारा उसी फूल से मिलना न हो सकेगा। और फूल आते रहेंगे। और फूल जाते रहेंगे।

इतना ही अगर सच होता कि असली फूलों में सुगंध होती है और प्लास्टिक के फूलों में सुगंध नहीं, तो भेद करना बहुत आसान था। बड़ी मुश्किल तो यह है कि नकली फूल बहुत जिंदा रहते हैं, बहुत देर तक टिकते हैं और असली फूल बहुत जल्दी मुरझा जाते हैं। जितना असली फूल होगा, उतने जल्दी मुरझा जाता है। क्योंकि जितना असली फूल होता है, उतना ही पूर्णता से जीता है और अपने को लुटा देता है।

तो शुभ है कि तुम्हें अनुभव होता है कि तुम्हारे जीवन में असली फूल खिल रहे हैं।

अब जरा ख्याल रखना कि इन असली फूलों को, जब ये बिखरने लगें तो बिखरने से मत रोकना। क्योंकि आने वाले फूलों के लिए ये जगह बना रहे हैं। और आने वाला हर फूल इनसे बेहतर होगा। इन फूलों में सुगंध है और इन फूलों में रंग हैं और इन फूलों में एक ताजगी है। मगर अगर तुमने मुट्ठी बंद करके इन फूलों को बचाने की कोशिश की तो तुम सब नष्ट कर दोगे।

और हम पूरे जीवन यही करते हैं। तुमने किसी से प्रेम किया, एक असली फूल उगा और जल्दी ही तुम द्वार-दरवाजे बंद करने लगते हो। जल्दी ही तुम पहरेदार खड़े करने लगते हो। भय खड़ा हो जाता है कि जो प्रेम आज है, पता नहीं कल होगा या नहीं होगा। कल की चिंता तुम्हारे आज को मार देती है। और जिसका आज मुर्दा है उसका कल तो और भी मुर्दा होगा। जब जीवन में प्रेम की लहर आयेतो सारे द्वार-दरवाजे और खिड़कियां खोल देना। हिम्मत की जरूरत पड़ेगी, क्योंकि हवा के एक झोंके की तरह प्रेम आता है और हवा के एक झोंके की तरह प्रेम चला जाता है। पर घबराने की जरूरत नहीं है। हम एक अनंत अस्तित्व के हिस्सेदार हैं और भी झोंके आते होंगे। खिड़कियां भर खुली रहें। दिमाग पक्षपातों से न भरे। जो हमें मिला है उसको पकड़ रखने की, उसको जबरदस्ती रोक रखने की कोशिश न हो तो तुम रोज-रोज नए फूल पाओगे। और एक दिन आता है जब फूल नहीं आते, तुम खुद फूल बन जाते हो।

बुद्ध ने इस स्थिति को--जब तुम खुद फूल बन जाते हो--निर्वाण कहा है। अपनी सारी सुगंध बिखेर देते हो। कस्तूरी-मृग की ही नाभि में कस्तूरी की सुगंध नहीं होती, तुम्हारी नाभि में भी सुगंध है जो हजार कस्तूरी-मृगों की सुगंध से ज्यादा गहरी है और ज्यादा कीमती है। तुमने उसे मौका नहीं दिया। तुम खिलौनों से खेलते रहे। जिस दिन तुम्हारी कस्तूरी अपनी सुगंध को आकाश को दे देगी, उस दिन तुम भी बिखर जाओगे जैसे फूल बिखर जाता है। फिर तुम नहीं लौटोगे जगत में दुबारा। फिर तुम नहीं पाओगे शरीर। क्योंकि शरीर सिवाय एक कारागृह के और कुछ भी नहीं है। एक अस्थि-पंजर जो चमड़ी के पीछे छिपाया हुआ है। तब तुम इस अनंत आकाश के और इस अनंत अस्तित्व के हिस्सेदार हो जाओगे।

पहले फूल आते हैं। तुम उनके साथ क्या व्यवहार करते हो इस पर सब निर्भर करता है। उनसे आसक्ति मत करना। वे आयें तो स्वागत, वे जायें तो स्वागत। वे आयें तो भी गीत गाकर उन्हें अपनी छाती से लगा लेना और वे जायें तो भी गीत गाकर उन्हें विदा दे देना। इससे आयेगी प्रौढ़ता, वह बल जो एक दिन तुम्हारे फूल को खिलने की क्षमता

देगा। और तुम्हारा फूल खिल जाये तो यह तुम्हारा आखिरी जीवन है या आखिरी मौत है। इसके बाद महाजीवन है। बुद्ध ने उसके लिए परिनिर्वाण कहा।

जब फूल आते हैं और जाते हैं तो निर्वाण। और जब तुम खुद ही फूल बन जाते हो तो परिनिर्वाण। और जब तुम्हारे लौटने की कोई संभावना नहीं रह जाती तो महापरिनिर्वाण।

और वही हमारी चेष्टा हजारों वर्षों से इस देश में रही है कि कितने लोग मूल स्रोत को उपलब्ध हो जायें, उस असीम, अनंत, शाश्वत के हिस्से हो जायें। अव्याख्य है; नहीं बताया जा सकता शब्दों में। अनिर्वचनीय है।

गौतम बुद्ध के जीवन में यह घटना है। मौलुंकपुत्त, एक बहुत बड़ा दार्शनिक उन दिनों का, जिसके खुद हजारों शिष्य थे, अपने पांच सौ प्रतिष्ठित शिष्यों को लेकर गौतम बुद्ध से विवाद करने गया। उसने न मालूम कितने पंडितों को और कितने बड़े आचार्यों को पराजित किया था। उसने बुद्ध से निवेदन किया संवाद का। बुद्ध ने कहा, संवाद जरूर होगा लेकिन ठीक समय पर। संवाद तो तुम जीवन भर करते रहे। तुमने पाया क्या है? क्योंकि तुम गैर-स्थान पर, गैर-समय में संवाद का आमंत्रण करते हो। तुम्हें कोई अंदाज नहीं है जीवन की गहरी प्रक्रियाओं का। मैं राजी हूं। लेकिन शर्त है। दो साल मेरे चरणों में चुपचाप बैठे रहो। और जो होता है, देखते रहो। हजारों लोग आयेंगे और जायेंगे; दीक्षित होंगे, संन्यासी होंगे, रूपांतरित होंगे। एक शब्द भी तुम्हारे मुंह से मैं सुनना नहीं चाहता हूं। और यह भी चाहता हूं कि तुम भी उनके संबंध में कोई निर्णय न लेना। तुम सिर्फ चुपचाप मेरे पास बैठे रहना। और दो साल बाद ठीक समय पर मैं तुमसे पूछूंगा कि अब विवाद का समय आ गया है, अब तुम पूछ सकते हो।

यह जब बात हो रही थी तो बुद्ध का एक पुराना शिष्य महाकाश्यप वृक्ष के नीचे बैठा हुआ हंसने लगा। महाकाश्यप के संबंध में कोई ज्यादा उल्लेख नहीं है। बौद्ध-ग्रंथों में यह पहला उल्लेख है महाकाश्यप का, कि वह हंसने लगा। मौलुंकपुत्त ने कहा मैं समझ नहीं पाता कि आपका यह शिष्य हंस क्यों रहा है। मौलुंकपुत्त ने कहा, कि इसके पहले कि मैं चुप हो जाऊं कम से कम इतनी तो आज्ञा दें कि मैं जान लूं, अन्यथा दो साल तक कीड़े की तरह यह मेरे मस्तिष्क को खाता रहेगा कि क्यों यह आदमी हंस रहा था! और जब भी मैं देखूंगा--और यह यहीं बैठा रहता है। और यह भी हो सकता है, हमेशा जब यह मुझे देखे, मुस्कुराने लगे।

बुद्ध ने महाकाश्यप को आज्ञा दी कि तुम अपने हंसने का कारण कह दो, ताकि वह निश्चिंत हो जाये। महाकाश्यप ने कहा, मौलुंकपुत्त, अगर पूछना हो तो अभी पूछ लो।

ऐसे ही एक दिन मैं भी आया था और दो साल इन चरणों में बैठकर खो गया। और दो साल बाद जब मुझसे बुद्ध ने कहा कि महाकाश्यप, कुछ पूछना है? तो मेरे भीतर कुछ, कोई प्रश्न, कोई शब्द, कोई जिज्ञासा, कुछ भी न था। यह आदमी बड़ा धोखेबाज है। यह मेरा गुरु है, लेकिन सच बात सच है। तुम्हें पूछना हो तो पूछ लो और न पूछना हो तो दो साल बैठे रहो।

और वही हुआ दो साल बाद। दो साल लंबा अरसा है। मौलुंकपुत्त तो भूल ही गया कि कब दिन आये और कब रातें आयीं। कब चांद उगे और कब चांद ढले। वर्ष आये और बीत गये, और एक दिन अचानक बुद्ध ने उसे हिलाकर कहा कि दो साल पूरे हो गये। यही दिन था कि तुम आये थे। अब खड़े हो जाओ और पूछो। मौलुंकपुत्त उनके चरणों में गिर पड़ा और उसने कहा कि महाकाश्यप ने ठीक कहा था। मेरे भीतर पूछने को कुछ भी नहीं बचा। मैं इतना शून्य हो गया हूं और उस शून्यता की सत्ता ने इतना भर दिया है कि अब न कोई प्रश्न है, अब न कोई उत्तर है। अब एक सतत अमृत की वर्षा है। मत छेड़ो, मुझे मत सताओ। मुझे बस चुपचाप यहां चरणों में बैठा रहने दो।

सद्गुरु के चरणों में बैठने के लिए हमने एक शब्द का उपयोग किया है: उपनिषद। उपनिषद का अर्थ होता है गुरु के चरणों में बैठना। न तो पूछना, न जिज्ञासा करना। लेकिन बैठे-बैठे पिघलते जाना, शून्य होते जाना।

फूल आ रहे हैं--शुभ लक्षण है। प्लास्टिक के नहीं हैं, सौभाग्यशाली हो। लेकिन फूलों पर नहीं रुकना है, अपने फूल को खिलने देना है। इन फूलों को पकड़ना मत; आने देना, जाने देना। एक दिन ये विदा हो जायेंगे और तुम्हारे भीतर की पंखुड़ियां खुल जायेंगी। वह जो कमल खिलता है, फिर इस जगत में कुछ और पाने को शेष नहीं रह जाता। तुमने सब पा लिया। तुमने सब जीत लिया। संन्यास का अर्थ ही यही विजययात्रा है।

चौथा प्रश्न: भगवान, अपने आपको कैसे समझूं? कुछ समझ नहीं आता और मृत्यु का तो बहुत भय लगता है।

मृत्यु का भय किसको नहीं लगता? हर आदमी यही सोचता है कि मौत हमेशा किसी और की होती है। और उसके तर्क में कुछ बात तो है, क्योंकि अपने को तो कभी मरते नहीं देखता। हमेशा औरों को मरते देखता है। दूसरों की अर्थियों को मरघट तक पहुंचा आता

है। नदी में स्नान करके प्रसन्न अपने घर लौट आता है हैरान होता हुआ कि मैं क्या अपवाद हूं।

मरघट गांव के बाहर बनाये जाते हैं। बनाना चाहिए गांव के ठीक बीच में; ताकि हर आदमी रोज देखे कि कोई मर रहा है। और जो लाइन क्यू की उसने बना रखी थी, वह छोटी होती जा रही है। उसका नंबर भी अब करीब है। लेकिन हम गांव के बाहर बनाते हैं कि एक आदमी मर गया, बात भूलो, छोड़ो। कोई मरता है तो हम बच्चों को घर के भीतर खींच लेते हैं कि बच्चों को मृत्यु का पता न चले। लेकिन यूं धोखाधड़ी से काम तो न चलेगा। जो जन्मा है उसे मरना पड़ेगा। जिस चीज का एक छोर है, उसका दूसरा छोर भी होगा।

अगर मृत्यु का भय लगता है तो जीवन को जानने की कोशिश करो। और कोई उपाय नहीं है। मृत्यु का भय इस बात का सबूत है कि तुम्हें अब तक जीवन का कोई अनुभव नहीं हुआ। मैंने तो सुना है कि बहुत लोग मरने के बाद ही जान पाते हैं कि हे राम ! मैं इतने दिन जिंदा था। जिंदगी यूं ही गुजर जाती है फिजूल कामों में। कम से कम घड़ी भर अपने के लिए, अपने जीवन की खोज के लिए दो। एक घंटे भर के लिए कम से कम शांत बैठ जाओ, मौन बैठ जाओ। भूल जाओ कि तुम हिन्दू हो कि मुसलमान, जैन कि ईसाई। भूल जाओ कि आदमी हो कि औरत। भूल जाओ कि बच्चे कि जवान। भूल जाओ इस सारे जगत को। तो धीरे-धीरे तुम्हारे भीतर से एक शाश्वत जीवन का अनुभव उभरने लगता है। हिन्दू मरता है, मरना पड़ेगा उसे। आदमी मरता है, औरत मरती है, बच्चा मरता है, जवान मरता है, मुसलमान मरता है।

जो जो चीजें मरती हैं उनसे अपने को अलग कर लो एक घंटे के लिए रोज। और कोशिश करो अपने भीतर खोजने की कि क्या कुछ और भी है इन सब चीजों के अलावा? और हजारों लोगों ने अनुभव किया है निरपवाद रूप से, कि तुम्हारे भीतर शाश्वत जीवन का झरना है। जिस दिन तुम्हें उसकी एक बूंद भी पीने को मिल जायेगी, उसी दिन मौत का भय मिट जायेगा।

यह मौत का भय अच्छा है। यह तुम्हें जगाये रखता है। अगर तुम्हारे भीतर मौत का भय न होता तो शायद दुनिया में बुद्ध, महावीर, जैसे व्यक्तियों के पैदा होने की कोई संभावना न थी। यह मौत की अनुकम्पा है तुम्हारे ऊपर कि वह तुम्हें चैन से नहीं बैठने देती। कभी न कभी ख्याल दिला देती है कि मरना होगा। यह बुढ़ापा आने लगा। अब दूसरी घड़ी में मौत के सिवाय और क्या है? इसके पहले कि मौत आये, तुम अमृत को

पहचानने की थोड़ी-सी कोशिश करो।

और एक घंटा चौबीस घंटे में से अपने लिए निकाल लेना कोई महंगा सौदा नहीं है। बेवकूफियों के लिए तुम कितना समय निकालते हो! मैंने लोगों को देखा है ताश खेल रहे हैं। पूछो, क्या कर रहे हो? कहते हैं, समय काट रहे हैं। नालायको! अपने को काट रहे हो कि समय काट रहे हो? समय को कौन काट सका है? सिनेमा की तरफ भागे जा रहे हैं, भीड़ें लगी हैं। टिकट की खिड़कियों पर झगड़े हो रहे हैं। पूछो, क्या? समय काटना है। तीन घंटे सुख से कट जायेंगे। और किन छोटी-छोटी बातों में तुम अपने समय को काटते फिर रहे हो! मित्रों से झूठी गपशप में समय काट रहे हो। बिना यह जाने कि यही समय तुम्हें अमृत का अनुभव भी दे सकता है। और मैं तुमसे नहीं कहता कि हिमालय चले जाओ, सब छोड़-छाड़ दो। उससे कुछ न होगा। हिमालय पर बैठकर भी तुम शतरंज की चालें ही सोचोगे। यहीं रहो। एक घंटा खींच लो। तेईस घंटे संसार को दे रहे हो, एक घंटा ईश्वर को दे देने की क्या इतनी कंजूसी! सोने के पहले बिस्तर पर बैठकर एक घंटा दे दो। और ज्यादा देर नहीं लगेगी कि तुम उस संपर्क में आ जाओगे अपने भीतर, जहां अंतःसलिला की भांति अब भी गंगा जीवन की बह रही है। इसके पहले कि वह सूख जाये, उससे परिचय बना लेना जरूरी है। मृत्यु का भय मिट जायेगा। क्योंकि तब तुम जानोगे, मृत्यु होती ही नहीं।

मृत्यु इस दुनिया में सबसे बड़ा झूठ है। केवल शरीर बदलते हैं, घर बदलते हैं, वस्त्र बदलते हैं। लेकिन तुम्हारा जो सत्व है, वह सदा से वही का वही है। लेकिन उससे पहचान होनी चाहिए। उससे पहचान के अतिरिक्त धर्म का और कोई अर्थ नहीं है। न तो मस्जिद जाने से यह होगा और न गुरुद्वारा जाने से और न मन्दिर जाने से। क्योंकि वहां भी तुम वही कम्बख्तियां करोगे। आखिर तुम्ही तो हो न। अब मंदिर में एक सुंदर स्त्री दिख गई तो बिना धक्का दिये कैसे रह सकते हो? और मन्दिर जैसे पवित्र स्थान में ऐसा अपवित्र कार्य करना एकदम शोभनीय है!

नहीं, इस संसार में ही जहां सारा उपद्रव चल रहा है, असली मौका है, कसौटी है, अग्निपरीक्षा है। यहीं घंटे भर के लिए कभी भी... । और यूं भी नहीं है कि वह समय निश्चित हो। क्योंकि लोग बहाने खोजते हैं एक से एक, कि समय निश्चित करना मुश्किल है। मैं तुमसे नहीं कहता समय निश्चित करो। जब बन सके, लेकिन एक बात याद रखो, चौबीस घंटे में एक घंटा तुम्हारा है। और उस एक घंटे में ही जीवन के सारे सत्यों का अवबोधन, अनुभव, तुम्हें मृत्यु के भय से छुड़ा देगा। जीवन को जान लो, फिर

कोई मृत्यु नहीं है।

अलहिल्लाज मन्सूर एक प्रसिद्ध सूफी हुआ, जिसका अंग-अंग काट दिया मुसलमानों ने, क्योंकि वह ऐसी बातें कह रहा था जो कुरान के खिलाफ पड़ती थीं। धर्म के खिलाफ नहीं। मगर किताबें बड़ी छोटी हैं, उनमें धर्म समाता नहीं। अलहिल्लाज मन्सूर की एक ही आवाज थी--अनलहक, अहम् ब्रह्मास्मि! और यह मुसलमानों के लिए बरदाश्त के बाहर था कि कोई अपने को ईश्वर कहे। उन्होंने उसे जिस तरह सताकर मारा है, उस तरह दुनिया में कोई आदमी कभी नहीं मारा गया। उस दिन दो घटनाएं घटीं।

मन्सूर का गुरु जुन्नैद, सिर्फ गुरु ही रहा होगा। गुरु जो कि दर्जनों में खरीदे जा सकते हैं, हर जगह मौजूद हैं, गांव-गांव में मौजूद हैं। कुछ भी तुम्हारे कान में फूंक देते हैं और गुरु बन जाते हैं। जुन्नैद उसको कह रहा था कि देख, भला तेरा अनुभव सच हो कि तू ईश्वर है, मगर कह मत। अलहिल्लाज कहता कि यह मेरे बस के बाहर है। क्योंकि जब मैं मस्ती में छाता हूं और जब मौज की घटाएं मुझे घेर लेती हैं, तब न तुम मुझे याद रहते हो न मुसलमान याद रहते हैं, न दुनिया याद रहती हैं, न जीवन न मौत। तब मैं अनलहक का उद्घोष करता हूं, ऐसा नहीं है। उद्घोष हो जाता है। मेरी सांस-सांस में वह अनुभव व्याप्त है।

अंततः वह पकड़ा गया। जिस दिन वह पकड़ा गया, वह अपनी ही परिक्रमा कर रहा था। लोगों ने पूछा, यह तुम क्या कर रहे हो? ये दिन तो काबा जाने के दिन हैं। और जाकर काबा के पवित्र पत्थर के चक्कर लगाने के दिन हैं। तुम खड़े होकर खुद ही अपने चक्कर दे रहे हो? मन्सूर ने कहा, कोई पत्थर अहं ब्रह्मास्मि का अनुभव नहीं कर सकता, जो मैं अनुभव करता हूं। अपना चक्कर दे लिया, हज हो गई। बिना कहीं गये, घर बैठे अपने ही आंगन में ईश्वर को बुला लिया। ऐसी सच्ची बातें कहने वाले आदमी को हमेशा मुसीबत में पड़ जाना पड़ता है।

उसे सूली पर लटकाया गया, पत्थर फेंके गये, वह हंसता रहा। जुन्नैद भी भीड़ में खड़ा था। जुन्नैद डर रहा था कि अगर उसने कुछ भी न फेंका तो भीड़ समझेगी कि वह मन्सूर के खिलाफ नहीं है। तो वह एक फूल छिपा लाया था। पत्थर तो वह मार नहीं सकता था। वह जानता था कि मन्सूर जो भी कह रहा है, उसकी अंतर-अनुभूति है। हम नहीं समझ पा रहे हैं; यह हमारी भूल है। तो उसने फूल फेंककर मारा।

उस भीड़ में जहां पत्थर पड़ रहे थे... जब तक पत्थर पड़ते रहे, मन्सूर हंसता रहा। और जैसे ही फूल उसे लगा, उसकी आंखों से आंसू टपकने लगे! किसी ने पूछा कि क्यों

पत्थर तुम्हें हंसाते हैं, फूल तुम्हें रुलाते हैं? मन्सूर ने कहा, पत्थर जिन्होंने मारे थे वे अनजान थे। फूल जिसने मारा है, उसे यह वहम है कि वह जानता है। उस पर मुझे दया आती है। मेरे पास उसके लिए देने को आंसुओं के सिवाय और कुछ भी नहीं है। और जब उसके पैर काटे गये और हाथ काटे गये, तब उसने आकाश की ओर देखा और जोर से खिलखिलाकर हंसा। लहूलुहान शरीर, लाखों की भीड़। लोगों ने पूछा, तुम क्यों हंस रहे हो? तो उसने कहा, मैं ईश्वर को कह रहा हूं कि क्या खेल दिखा रहे हो! जो नहीं मर सकता उसके मारने का इतना आयोजन...। नाहक इतने लोगों का समय खराब कर रहे हो। और इसलिए हंस रहा हूं कि तुम जिसे मार रहे हो, वह मैं नहीं हूं। और जो मैं हूं, उसे तुम छू भी नहीं सकते। तुम्हारी तलवारें उसे नहीं काट सकतीं और तुम्हारी आगें उसे नहीं जला सकतीं।

एक बार अपने जीवन की धारा से थोड़ा-सा परिचय हो जाये, मौत का भय मिट जाता है।

पांचवां प्रश्नः भगवान, आपको महसूस कर दिल पर एक मीठी चुभन-सी महसूस करती हूं। आप द्वारा बरसा प्रेम मुझे आपे से बाहर कर देता है। आंसू का झरना, शरीर में कंपन, भावोंको शब्दों में उतारने में असमर्थ सी हूं। मेरी स्थिति क्या है मेरे भगवन?

मत सोचो कि तुम्हारी स्थिति क्या है। क्योंकि सोचा कि स्थिति खो जायेगी। कुछ चीजें हैं जो सोचने से मिलती हैं और कुछ चीजें हैं जिनके लिए बिना सोचे छलांग लगानी पड़ती है।

कहावत है, छलांग लगाने के पहले सोच लेना चाहिए। किसी कायर ने और कमजोर ने यह कहावत रची होगी। मैं तुमसे कहता हूं, छलांग पहले लगा लो, सोचना कभी भी कर लेना। शाश्वत जीवन पड़ा है, जब दिल आये सोच लेना, मगर छलांग तो लगा लो।

जो हो रहा है, ठीक हो रहा है। आनंद से शरीर कंपने लगे, भीतर एक सिहरन दौड़ जाये, तुम्हारे जीवन की विद्युत-धारा सक्रिय हो उठे, ये जीवन के निकट आने के लक्षण हैं। जैसे फूल के पास कोई आये और सुगंध आने लगे। मगर सोचो मत। सोचने वाले इस दुनिया में बुरी तरह गंवाते हैं। क्योंकि ये बातें सोचने की नहीं हैं। जब तुम्हें किसी से प्रेम हो जाता है तो क्या तुम बैठकर सोचते हो कि क्या मुझे प्रेम हो गया है? क्या यही प्रेम है? जिंदगी भर दांव पर लगाने चला हूं। और दांव कोई छोटा नहीं है, सोच तो लूं।

जर्मनी का बहुत बड़ा विचारक हुआः इमैन्युअल कांट। एक स्त्री ने उससे निवेदन किया, बहुत दिन प्रतीक्षा की। स्त्रियां समझदार हैं, प्रतीक्षा करती हैं। जानती हैं कि आदमी ज्यादा देर प्रतीक्षा नहीं कर सकता। उसके भीतर बड़ी उथल-पुथल मच जाती है। मगर इमैन्युअल कांट कोई साधारण आदमी न था, बड़ा विचारक था। आखिर देखकर कि उम्र ही बीती जाती है, इमैन्युअल कांट तो कुछ कहता ही नहीं...। कभी एक फूल भी भेंट नहीं किया। कभी यह भी नहीं कहता कान में फुसफुसा कर कि तुम्हारे लिए मेरे हृदय में बड़ा प्रेम है। इमैन्युअल कांट तो एक-एक कदम फूंक-फूंक कर रखता था। जैसे गरम दूध का जला हुआ छांछ भी फूंक-फूंक कर पीता है। आखिर उस स्त्री ने इमैन्युअल कांट से खुद ही कहा कि मैं तुमसे प्रेम करती हूं। इमैन्युअल कांट ने कहा कि मुझे कम से कम सोचने का मौका तो दो। तुम करो प्रेम, मुझे कोई एतराज नहीं, मगर अभी मेरी तरफ से सहमति नहीं है। मैं सोचूंगा। सारे तर्क जो प्रेम के पक्ष में हैं और सारे तर्क जो प्रेम के विपक्ष में हैं। तीन साल लग गये उसको अनुसंधान कार्य करते हुए, उसने लायब्रेरी में बैठ-बैठ कर तीन साल...। लेकिन बड़ी मुसीबत यह थी कि दोनों पलड़ों पर बराबर वजन था। करो तो भी, न करो तो भी। लेकिन अंततः एक बात उसे मिल गई। और वह बात यह थी कि अगर प्रेम नहीं किया, विवाह नहीं किया तो तुम अनुभव से वंचित रह जाओगे। अनुभव बुरा होगा या भला यह दूसरी बात है, मगर एक तत्व कम से कम ज्यादा है। जाकर हड़बड़ाहट में उसने लड़की के द्वार को खटखटाया। उसका बाप बाहर आया। उसने पूछा, क्या चाहिए? उसने कहा कि मैं उस लड़की को पूछने आया हूं जिसने मुझसे प्रेम का निवेदन किया था। तीन साल जी-जान से सोच-समझ कर यह तय किया है कि प्रेम करूंगा, शादी करूंगा। उसके बाप ने कहा, जरा देर हो गई। अब तो लड़की के दो बच्चे भी हैं। कोई और बिना सोचे ही शादी कर बैठा। इमैन्युअल कांट जीवन भर अविवाहित रहा।

जिन्दगी में जब तुम पाओ कि कुछ आल्हादकारी है, तरंगमयी है, पुलक से भरा है, जीवन में जब तुम पाओ कि तुम्हारे खून में कविता का बहाव है और तुम्हारी सांसों में सुगंध है नयी, तो फिर सोचना मत। तुम ठीक रास्ते पर हो। ये सारे इंगित हैं कि तुम ठीक रास्ते पर हो। आगे बढ़े चलो।

इमैन्युअल कांट के लिए तो मैं कोई गलत नहीं कह सकता हूं। क्योंकि न तो कोई पुलक थी, न कोई आनंद था, न कोई जीवन में उगते हुए नए सितारे थे। किताबी कीड़ा था। और चारों तरफ फैली हुई जिंदगी थी जिसमें जिसको देखो, वहां एक मुसीबत है!

शास्त्रों में हर चीज का वर्णन है। पत्नीव्रत की सूक्ष्म व्याख्या है कि पत्नी को क्या करना, कितने उपवास करना, पति की कैसे सेवा करना। लेकिन शास्त्र भी बिल्कुल चुप हैं उस संबंध में जो दूसरा हिस्सा हैः पतिव्रत। क्योंकि जब वे शास्त्र लिख रहे होंगे, पत्नी पास में खड़ी होगी कि देखें बच्चू क्या लिखते हैं। एक भी शास्त्र नहीं है दुनिया में जिसमें पतिव्रत के संबंध में कुछ भी लिखा हो। और पतिव्रत बड़ा कठिन व्रत है। पत्नी कहे उठो तो उठो। पत्नी कहे बैठो तो बैठो। सतत अभ्यास करवाती है, व्यायाम करवाती है।

मैं एक आदमी को देखा जो ग्यारह वर्षों से खड़ा हुआ है। उनका नाम ही खड़ेसिरी बाबा हो गया है। मैंने पूछा, लेकिन इस आदमी पर क्या मुसीबत आ पड़ी? यह खड़ा क्यूं हो गया? मेरे ड्राइवर एक सरदारजी थे, बड़े ज्ञानी थे। गाड़ी कम चलाते थे, जपुजी ज्यादा पढ़ते थे। बोले कि कुछ नहीं हुआ, इसकी पत्नी ने इससे कहा खड़े रहो और खुद किसी दूसरे पति के साथ भाग गयी। तब से यह बेचारा खड़ा है। अब कोई इसको बिठाये तो बैठे। धर्म धर्म है, उसका पालन तो करना ही पड़ता है। पत्नी किसी और को अभ्यास करवा रही होगी धर्म का, अध्यात्म का। यह बेचारा यही अभ्यास कर रहा है। खड़ा हुआ है।

इमैन्युअल कांट के लिए मैं कोई आलोचना नहीं करता। लेकिन तुमसे मैं यह कहता हूं कि अगर तुम्हारे जीवन में कभी भी कोई प्रकाश की जरा-सी भी किरण दिखाई पड़े, सुगंध की कोई जरा सी झोंक, तो वही दिशा है, वही मार्ग है। फिर हिम्मत करना, फिर रुकना मत। सोचने का काम बाद में कर लेंगे। और यह मेरा अनुभव है कि जो इस रास्ते पर बढ़े हैं, उन्होंने फिर सोचने की कोई जरूरत नहीं समझी। क्योंकि हर अनुभव और गहरा होता गया। हर अनुभव नयी छलांग, नयी चुनौती और नये परिवर्तन और नयी-नयी क्रान्ति पर ले जाता रहा।

तो जो तुम्हें हो रहा है, बिल्कुल ठीक हो रहा है। सोचो मत। सोचने से रुक जायेगा। क्योंकि जीवन के सारे गहरे अनुभव हृदय से होते हैं, बुद्धि से नहीं होते। और सोचना बुद्धि से होता है। और बुद्धि और हृदय का कोई मेल नहीं बैठता तो बुद्धि तुम्हें पागल कहेगी कि यह क्या पागलपन है कि शरीर में झुरझुरी आ रही है। जाओ किसी डाक्टर को दिखाओ। यह क्या पागलपन है? कि अकेले बैठे-बैठे मुस्कुरा रहे हो। चलो, किसी मनोवैज्ञानिक को दिखा आओ। यह दुनिया बहुत अजीब है। यहां अगर तुम शांति से बैठकर कुछ भी नहीं कर रहे हो तो हर आदमी टोकेगा। क्यों जी, क्यों फिजूल बैठे हुए हो? शर्म नहीं आती? दुनिया मरी जा रही है और तुम बैठे हो। हजार काम करने को पड़े हैं और तुम बैठे

हो। कोई जाकर एडोल्फ हिटलर को नहीं कहता कि तुम क्या कर रहे हो ? छह करोड़ लोगों कि हत्या--लेकिन काम बड़ा कर रहा है। संख्या बड़ी है, सम्मान के योग्य है। अगर तुम बैठे-बैठे गुनगुना रहे हो तो लोग कहेंगे कि जिंदगी बरबाद कर रहे हो। जैसे कि उन्हें जिंदगी मिल गई। बीड़ी पीओ ! दम मारो दम ! बैठे-बैठे मुस्कुरा रहे हो। किसी ने देख लिया तो नाहक बदनामी होगी।

अंग्रेजी कहावत है, इट इज बैटर टू डू समथिंग दैन नथिंग। और मैं तुमसे यह कह रहा हूं, इट इज बैटर टू डू नथिंग। कोई चौबीस घंटे कुछ न करो, यह नहीं कह रहा हूं। रोटी तो कमानी होगी, कपड़े तो कमाने होंगे। लेकिन घंटा भर तो निकाल सकते हो, जब कि तुम मन को कह दो कि बस, अब तुम चुप हो जाओ। मगर मुझे घड़ी भर हृदय के साथ जी लेने दो। इतना मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं कि मन के पास तेईस घंटे और हृदय के पास एक घंटा--जीत हृदय की होने वाली है।
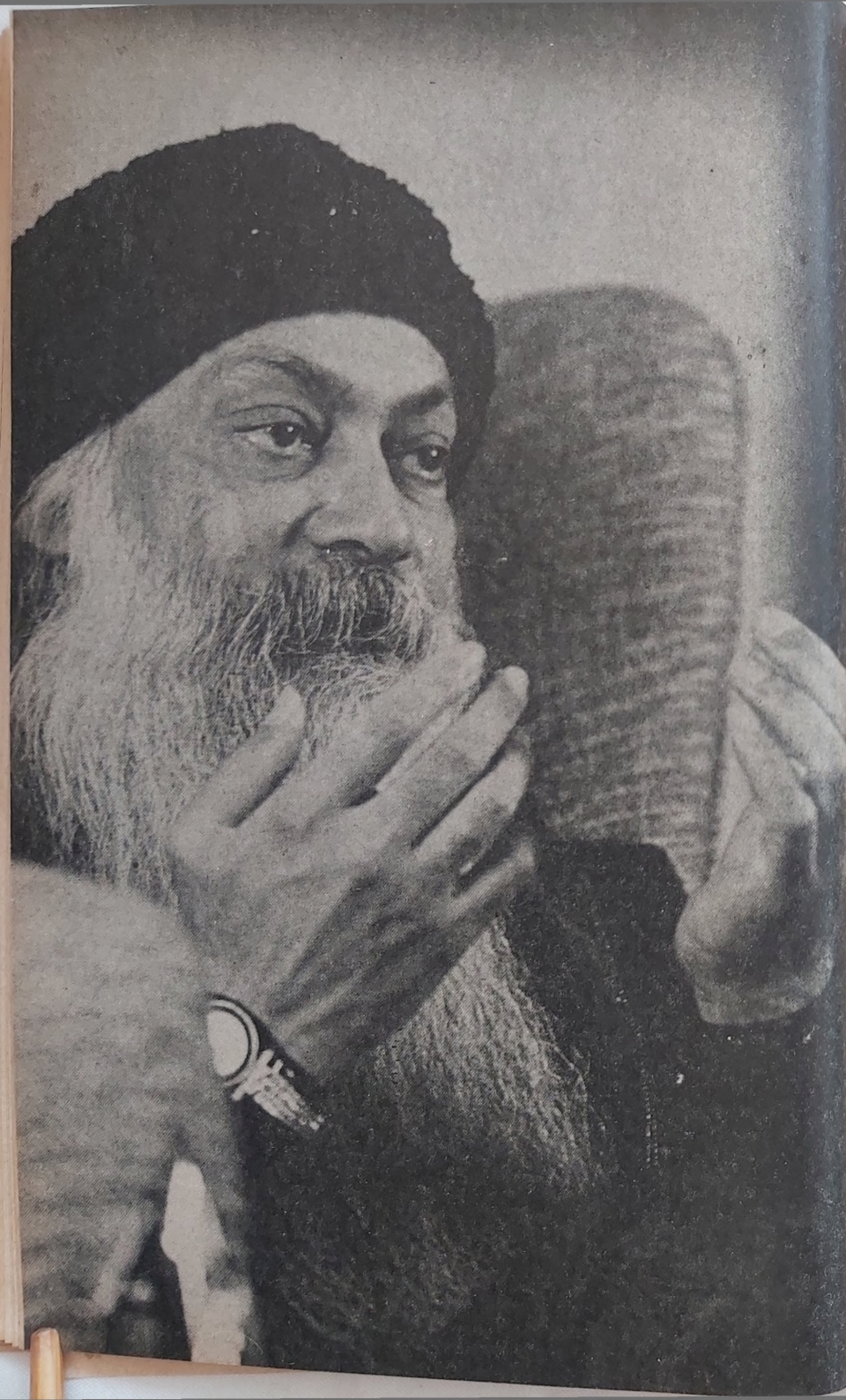
अपने ज्ञान को ध्यान में बदलो

चौथा प्रवचन : ३ अगस्त, १९८६, ९.३० प्रातः, सुमिला, जुहू, बम्बई

प्रश्न : परसों ही आपने कहा कि अपने को जाने बिना अर्थी नहीं उठने देना। यह चुनौती तीर की तरह हृदय में चुभ गयी। हम कैसे अपने को जानने की ओर जुट जायें? कहां से और कैसे शुरू करें?

मनुष्य के बहुत-से नाम हैं--अरबी में, उर्दू में, पर्शियन में। आदमी मनुष्य का पर्यायवाची है। होना नहीं चाहिए। क्योंकि मनुष्य का अर्थ होता है, जो मनन करे। और आदमी का अर्थ होता है, जो मिट्टी का बना है। अंग्रेजी में भी मनुष्य का पर्यायवाची है, ''ह्युमैन''। होना नहीं चाहिए। गलत है अनुवाद। ह्युमैन शब्द बनता है ह्युमस से -- गीली मिट्टी से। क्योंकि इसलाम और ईसाइयत दोनों ही आदमी को मिट्टी का बना हुआ पुतला मानते हैं, जिसमें ईश्वर ने सांस फूंक दी। सिर्फ इस देश में आदमी को मिट्टी का पुतला नहीं माना गया है। इस देश में आदमी के होने की पहचान है, उसके मनन की क्षमता। इसलिए हम उसे कहते हैं मनुष्य। मनन की अनेक दिशायें हो सकती हैं। चित्रकार भी सोचता है, मूर्तिकार भी सोचता है, दार्शनिक भी सोचता है, धर्मगुरु भी सोचता है, वैज्ञानिक भी सोचता है।

लेकिन ये सारी सोचने की प्रक्रियाएं बाहर की तरफ जाती हैं। ये किसी और विषय की तरफ इंगित करती हैं। जिसको हमने ज्ञानी कहा है वह अपने सारे सोचने की दिशाओं को

भीतर की तरफ मोड़ लेता है। वह सिर्फ अपने संबंध में ही सोचता है। उसके लिए जगत में कुछ और सोचने योग्य नहीं है, हो भी नहीं सकता। क्योंकि जिसे अपना ही पता नहीं है उसे किसी और चीज का क्या पता हो सकता है?

अलबर्ट आइंस्टीन इस सदी के सर्वाधिक बड़े विचारकों में एक थे। लेकिन मरते वक्त उन्होंने जो कहा, वह उनके जीवन भर की पीड़ा का निचोड़ था। किसी ने पूछा, आइंस्टीन जब सांस तोड़ रहे थे, कि अगर पूरब के लोग सच हों और पुनर्जन्म होता हो तो आप आगे भी वैज्ञानिक ही होना चाहेंगे या कुछ और? मनुष्य के आखिरी वचन बड़े महत्वपूर्ण होते हैं। वे उसके सारे जीवन का निचोड़ होते हैं क्योंकि उसके बाद फिर उनमें सुधार करने की भी कोई सुविधा न रहेगी। आइंस्टीन ने आंखें खोलीं और कहा कि फिजिसिस्ट होने की बजाय मैं एक प्लम्बर होना पसन्द करूंगा ताकि कुछ समय अपने संबंध में सोचने के लिए भी तो दे सकूं। मेरा सारा समय चांद-तारों के संबंध में सोचने में खो गया और मैं वैसा ही अज्ञानी मर रहा हूं जैसा अज्ञानी पैदा हुआ था और दुनिया मुझे ज्ञानी कहती है। अगर कोई आगे मेरा जन्म हो तो मैं वैसा ही नहीं मरना चाहता हूं जैसा पैदा हुआ। मैं जागकर, अपने को जीतकर, अपने को पहचानकर इस जगत से विदा होना चाहता हूं। यह जीवन तो गया। यह तो बह गया। अब इसमें तो कोई संभावना न बची।

जिस चिन्तन और मनन के लिए मैंने तुमसे कहा है उसमें पहली बात है कि सब तरफ से अपने विचारों को खींचकर अपने पर ही आमंत्रित कर लेना। और एक जादू घटित होता है जिसकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। तुम सोच सकते हो केवल उसी चीज के संबंध में जिसके संबंध में तुमने पढ़ा हो, सुना हो, किसी ने कुछ कहा हो। तुम अपने संबंध में क्या सोचोगे? तो जैसे ही व्यक्ति सारे बाह्य चिन्तन छोड़ देता है और उसकी आंखें सिर्फ अपने ही रूप पर टिक जाती हैं... इसलिए मैंने कहा, एक जादू घटित होता है: तुम अपने संबंध में सोच नहीं सकते। वहां सोचना शून्य हो जाता है। वहां सिर्फ देखना शेष रह जाता है।

इसलिए हमने इस देश में उस घड़ी को दर्शन की घड़ी कहा है, चिन्तन की नहीं। तुम देखते तो हो कि तुम कौन हो लेकिन सोचने को कुछ बाकी नहीं। तुम जो भी हो, पूरे के पूरे खुले हो और नग्न हो। और यही आत्म-पहचान तुम्हें जीवन के सारतत्व से परिचित करा देती है, उस अमृत से परिचित करा देती है जिसका कोई अन्त नहीं है। शरीर आये हैं और गये हैं। शरीर आयेंगे और जायेंगे। जब तक कि तुम अपने को न पहचान लो, नये-नये

रूपों में, नये-नये ढंगों में, तुम इसी संसार में भटकते रहोगे। और जिसने अपने को जान लिया उसकी फिर इस संसार में आने की कोई जरूरत न रही। संसार तो यूं है जैसे कोई पाठशाला हो। जब तक तुम असफल होते हो तब तक वापिस पाठशाला में लौट आना पड़ता है और जब सफल हो जाते हो तो पाठशाला से छुट्टी हो जाती है। संसार बुरा नहीं है, विद्यालय है। इसको घृणा मत करना। यह अस्तित्व की देन है। क्योंकि इसी के बीच इस बात की संभावना है कि तुम किसी दिन टकराते-टकराते, गिरते और उठते, संभलते और संभलते अपने को जान लोगे। और जिसने स्वयं को जान लिया उसके लिए जानने को कुछ भी शेष नहीं रह जाता।

यह ज्ञान की परमदशा हमने समाधि कही है। तुम एक शब्द से परिचित हो: व्याधि। व्याधि का अर्थ है बीमारी। यह दूसरा शब्द है समाधि। समाधि का अर्थ है, व्याधियों के ऊपर उठ जाना, सारी व्याधियों का सम हो जाना, शान्त हो जाना। इस देश ने अपने शब्द भी बहुत सोच-सोच कर गढ़े हैं। वे अन्धे, नासमझ व्यवहारिक लोगों के द्वारा नहीं गढ़े गये हैं। आंखवालों ने उन्हें तराशा है। अगर हम उन शब्दों को भी ठीक से समझ लें तो इशारे मिलने शुरू हो जायेंगे।

सारी दुनिया में 'स्वास्थ्य' जैसा कोई शब्द नहीं है। हालांकि हर भाषा में 'स्वास्थ्य' को अनुवादित करने के लिए शब्द हैं। ''हैल्थ'' है लेकिन हैल्थ का अर्थ है, घाव का भर जाना। वह बड़ी छोटी बात है। स्वास्थ्य का अर्थ होता है, स्वयं में स्थित हो जाना, स्वस्थ हो जाना। इसका किसी घाव के भरने से संबंध नहीं है। तुम हो, लेकिन अपने से भागे-भागे। तुम हो, लेकिन अपने से दूर-दूर। तुम हो, लेकिन तुम्हें पता नहीं है कि तुम कहां हो। जिस दिन तुम स्वस्थ हो जाते हो, स्थिर हो जाते हो, अपनी चेतना में ठहर जाते हो जैसी कोई दीये की ज्योति निष्कम्प ठहर जाये, कोई हवा का झोंका उसे हिलाये नहीं, वैसी ज्योति की भांति जब तुम अपने भीतर ठहर जाते हो तो जो प्रकाश का आविर्भाव होता है, जो किरणें विकीर्णित होती हैं, उसे ही मैंने मरने के पहले अपने को जानना कहा है।

और मरने के पहले पर जोर दिया है क्योंकि अगर तुम जीवन में भी जीवन को न जान सके तो मृत्यु में कैसे जान सकोगे? मृत्यु तो अंधेरी गुफा है। हां, यह सच है कि जिन्होंने अपने को जीवन में जान लिया है उनकी आंखों में इतनी रोशनी होती है, कि वे मौत की अंधेरी गुफा में भी अपने को भूलते नहीं। वे मौत की अंधेरी गुफा में भी अपने को जानते हैं।

बुद्ध के जीवन में घटना है उनके अन्तिम दिन की। सुबह हुई है, पक्षियों ने गीत गाये हैं, फूल खिले हैं और उन्होंने अपने सारे शिष्यों को इकट्ठा किया है, और उनसे कहा है कि मैं तुम्हें एक सुखद समाचार देता हूं। ध्यान करना, उन्होंने कहा, मैं तुम्हें एक 'सुखद समाचार' देता हूं। वे सब निश्चित बहुत आतुर हो उठे। क्योंकि बुद्ध ने चालीस वर्षों के शिक्षण में कभी भी यह न कहा था कि मैं तुम्हें एक सुखद समाचार देता हूं। हालांकि उनके हर शब्द में सिवाय सुखद समाचार के और कुछ भी न था। आज कौन-सी अनूठी बात घटनी थी? आज कौन-सा कोहिनूर उनके शब्दों में जगेगा? आज कौन-सा सूरज उगेगा? एक सन्नाटा छा गया। बुद्ध ने कहा, आज मैं शरीर छोड़ रहा हूं। जीवन को बहुत देख लिया। जीवन को बहुत जी लिया। आज मैं मौत के अंधेरे में प्रवेश कर रहा हूं। लेकिन वह अंधेरा दूसरों के लिए होगा। वह अंधेरा मेरे लिए नहीं है। मैं इतना ही ज्योतिर्मय, इतना ही प्रकाशोज्ज्वल उस अंधेरे से भी गुजर जाऊंगा जैसे जीवन से गुजरा हूं। इसलिए मैंने कहा कि तुम्हें एक सुखद समाचार देता हूं। मृत्यु का समाचार और सुखद! तुम्हें कुछ पूछना हो, तुम पूछ लो। दस हजार भिक्षुओं में किसकी हिम्मत थी और किसकी जुर्रत थी कि जिस आदमी ने चालीस वर्षों तक हर बात को समझाया हो, आज मरने की घड़ी में भी उसको चैन से न मरने दिया जाये। उनकी आंखों में आंसू थे लेकिन उनकी जुबानों पर कोई सवाल नहीं था। उन्होंने कहा, हमें कुछ पूछना नहीं है। आपने हमें इतना दिया है जितना हमने कभी सोचा भी न था। आपने हमारे वे उत्तर भी हमारे हाथों में थमा दिये हैं जिनके लिए हमारे पास प्रश्न भी नहीं हैं। हम आपसे क्या पूछें? तो बुद्ध ने कहा, मैं विदा ले सकता हूं? और उन्होंने आंखें बन्द कीं। और घटना बड़ी प्यारी है कि उन्होंने पहले चरण में शरीर को छोड़ दिया। दूसरे चरण में मन को छोड़ दिया। तीसरे चरण में हृदय को छोड़ दिया। और तभी एक गांव से, पास के गांव से एक आदमी भागा हुआ आया और उसने कहा कि ठहरो, चालीस साल से बुद्ध मेरे गांव से गुजरते रहे हैं लेकिन मैं अंधा आदमी हूं। हमेशा सोचता रहा कि अगली बार जब आयेंगे तब मिल लूंगा। यूं जल्दी भी क्या है? और कभी मेहमान घर में थे, कभी दुकान पर भीड़ थी और कभी पत्नी बीमार थी। और बहाने ही खोजने हों तो अन्तहीन बहाने उपलब्ध हैं। बुद्ध आते रहे, जाते रहे। अभी-अभी मैंने सुना कि वे जीवन छोड़ रहे हैं। और मुझे एक प्रश्न पूछना है। बुद्ध के प्रमुख शिष्य आनन्द ने कहा, अब देर हो गयी, अब बहुत देर हो गयी। वे तो जा भी चुके।

लेकिन बुद्ध ने आंखें खोल दीं और बुद्ध ने कहा, आनन्द, तू मेरे ऊपर दोषारोपण

करवा देगा। आने वाली सदियां कहेंगी कि मैं जिन्दा था और एक आदमी मेरे द्वार से प्यासा लौट गया। शरीर छूट जाये, मन छूट जाये, हृदय छूट जाये लेकिन मैं तो हूं; और मैं तो कभी छूटने वाला नहीं हूं। तुम मेरे शरीर को जाकर अर्थी पर चढ़ाकर जला देना। लेकिन अगर किसी ने हृदय से भरकर मुझसे प्रश्न पूछा तो उसे उत्तर मिला जायेगा। क्योंकि मैं तो हूं, मैं तो रहूंगा। मुझे जलाने का कोई उपाय नहीं है और मुझे मिटाने का कोई उपाय नहीं है। मैं अमृत हूं।

इस देश की प्रार्थना बड़ी अद्‌भुत है। दुनिया में बहुत मन्दिर हैं और बहुत मस्जिदें हैं और बहुत गिरजाघर हैं लेकिन उनकी प्रार्थनाएं बचकानी हैं। सिर्फ इस देश ने प्रार्थना की है कि हमें क्षणभंगुर से शाश्वत की ओर ले चलो। इसमें कोई भी बात क्षुद्र नहीं है। और यह प्रार्थना किसी और से नहीं की गयी है। क्योंकि कोई और तुम्हें ले जा नहीं सकता। केवल तुम ही, और 'केवल तुम ही' मृत्यु से अपने को अमृत की ओर ले जा सकते हो। अपने जानने की सारी क्षमता को स्वयं पर केन्द्रित कर लो। दूसरे शब्दों में मैं इसे ध्यान कहता हूं। ज्ञान दूसरे का होता है, ध्यान अपना होता है। ज्ञान पराये का होता है, ध्यान स्वयं का होता है। अपने ज्ञान को ध्यान में बदल लो। तो इसके पहले कि तुम्हारी अर्थी उठे, तुम उसे जान लोगे जिसकी कोई अर्थी नहीं उठती है और न कभी उठ सकती है।

प्रश्नः प्रिय भगवान, रजनीशपुरम कम्यून से लौटकर मैं बहुत अकेली, खोई-खोई-सी कन्फ्यूज्ड अनुभव कर रही हूं। जो भी मैं करती हूं वह गलत लगता है और दूसरों को चोट लगती है। मुझे कुछ रूपान्तरित होने में बहुत समय लगा रजनीशपुरम में और अब भारत आकर पुनः एडजस्ट करना पड़ रहा है। आप मुझे क्या सुझाव देना चाहते हैं? मैं भारत में एडजस्ट नहीं हो पा रही हूं। मैं कम्यून की और अमरीका में पीछे रह गये अपने मित्रों की कमी महसूस कर रही हूं। मैंने सुना है कि अमरीका में भी मेरे मित्र इसी स्थिति में हैं। मैं क्या करूं? कुछ सुझाव देने की कृपा करें।

संन्यास का अर्थ है, समझौता न करना। और सब तरह के समायोजन समझौते हैं। संन्यास का अर्थ है, अकेले होने को काफी समझना। दूसरे की जरूरत मालूम पड़ती हो तो तुम कम्यून में हो कि बाज़ार की भीड़ में हो, कोई फर्क नहीं। दूसरे की जरूरत न रह जाये, तुम अपने में काफी और पूरे हो जाओ। इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम दूसरों को छोड़ दो। और इसका यह भी अर्थ नहीं है कि तुम दूसरों के विरोधी हो जाओ। इसका

अर्थ है कि जो व्यक्ति दूसरों के ऊपर निर्भर नहीं रह जाता, जिसके जीवन में दूसरे की जरूरत नहीं रह जाती, जो अपने में भरा-पूरा है वही व्यक्ति दूसरे को कुछ दे सकता है। उसी भरे हुए घड़े से अमृत दूसरों पर भी छलक सकता है।

तुम्हारी तकलीफ यह है कि कम्यून में तुम कम्यून के लोगों के साथ समायोजित होना चाहती थीं। वह भूल थी। अपने साथ समायोजित होना है। एक भूल वहां की, अब उसी भूल को यहां दोहराना पड़ेगा। क्योंकि वहां कम्यून के लोगों से समायोजित हो गयी थीं। उनका रहन-सहन, उनका जीवन, उनका ढंग, उनका उठना, उनका बैठना, उनका सोचना, वह सब तुमने अपने ऊपर आरोपित कर लिया। लेकिन इसमें तुम्हारा अपना कुछ न था। कम्यून पीछे छूट गया, आदतें तुम्हारे साथ आ गयीं और अब इस बाजार की दुनिया में दूसरी तरह की आदतें चलती हैं। तो फिर अड़चन है। अब तुम लोगों के साथ अपने को मुश्किल में पाती हो। मगर भूल वही है जो तुमने कम्यून में की थी वही भूल अब है। तुम दो भूलें भी नहीं कर रहे हो– एक ही भूल कि दूसरों के साथ समायोजित होना है। और हर समायोजन गुलामी है। हर समायोजन अज्ञान है और हर समायोजन में तुम्हें अपनी आत्मा बेचनी पड़ती है। समझौता करने का मतलब ही यहीं होता है: कुछ लो, कुछ दो। संन्यासी समझौता नहीं करता। संन्यासी केवल अपने में समाधिस्थ होता है। और उसकी समाधि का इतना बल है कि उसके पास जो भी आयेगा, खाली हाथों वापिस न जायेगा। जो भी उसके पास आयेगा वह प्यासा वापिस न जायेगा।

तो तुम्हें कोई जरूरत नहीं है कि तुम किसी से समायोजित होओ। तुम्हें सिर्फ एक ही जरूरत है कि तुम समाधिस्थ बनो ताकि दूसरे तुम्हारी समाधि से खिले हुए फूलों की सुगन्ध से भर जायें। और तब तुम्हारे और दूसरों के बीच एक मेल होगा जो आदतों का नहीं है और जो बाजार के लेन-देन का नहीं है। जो न तो सौदा है और न व्यवसाय है। क्योंकि समाधिस्थ व्यक्ति ने केवल दिया है, लिया कुछ भी नहीं। लेकिन मजा यह है कि जिसे देने की कला आ गयी उसके पास की सम्पदा रोज बढ़ती ही चली जाती है। उसके भीतर का गौरव रोज निखरता ही चला जाता है। यूं ही समझो कि जैसे कोई कुआं हो, रोज तुम उसमें से पानी खींच लेते हो और नये झरने कुएं को पानी से भरते रहते हैं। वे झरने तुम्हें दिखाई नहीं देते। लेकिन कुआं दूर सागर से जुड़ा है। दूर-दूर तक उसकी पहुंच है। लेकिन तुम कुएं से पानी भरना बन्द कर दो इस डर से कि कहीं पानी कुएं से भरते गये तो कुआं खाली हो जायेगा तो एक दिन मुसीबत में पड़ोगे। कुएं में पानी न बचेगा। अगर तुम कुएं को बन्द करके ताला लगा दो तो कुएं में फिर नया पानी नहीं आयेगा। झरने कुएं में

नये-नये स्रोत जल के नहीं लायेंगे। और जो पुराना पानी है वह रोज सड़ेगा, रोज मरेगा और ऐसे कुएं का पानी मत पीना क्योंकि वह जहरीला हो जायेगा। लेकिन हम सारे लोग ऐसे ही कुएं हो गये हैं जिन्होंने अपनी-अपनी छातियों पर ताले जड़ रखे हैं कि कहीं भीतर का प्रेम निकल गया, कहीं भीतर की करुणा बह गयी तो हम खाली हो जायेंगे। लेकिन तुम्हें पता नहीं कि करुणा और प्रेम, मैत्री, सहजता, शान्ति और मौन, जितना तुम देते हो उतना बढ़ते हैं। यह कोई साधारण अर्थशास्त्र नहीं है। यह कोई तुम्हारी तिजोरी नहीं है। हां, तिजोरी में जो रुपया है वह तुम दोगे तो रोज खाली होगा।

मैंने सुना है कि एक आदमी भीख मांग रहा है--बहुत दयनीय दशा में है। एक कार उसके पास आकर रुकी और पूछा, कितने दिन से भोजन नहीं किया? उस आदमी ने कहा, आज पांच दिन हो गये, न भोजन है, न कुछ खाने को है। उस आदमी ने अपने खीसे से पांच रुपये का नोट निकाला और उस आदमी को दिया और कहा, जाओ, ठीक से भोजन करो, विश्राम करो। जाते-जाते उस भिखमंगे से उसने पूछा, लेकिन मैं यह पूछूं कि तुम्हारा चेहरा किसी भिखमंगे का चेहरा मालूम नहीं होता। तुम्हारे चेहरे पर शालीनता के निशान हैं। तुम्हारे चेहरे पर अब भी गौरव मालूम होता है। ये कोई भिखारी की आंखें नहीं हैं। वह भिखारी हंसने लगा। उसने कहा, आप ठीक कहते हैं। कभी मेरे पास भी कार थी। लेकिन जैसे आपने मुझे पांच रुपये दिये, मैं दिल में सोचने लगा कि इस बेचारे पर भी वही मुसीबत आयेगी जो मुझ पर आयी है। ऐसे ही मैं भी बांटता रहा। वह सब चुक गया। तो जरा संभलकर चलो। ऐसे पांच-पांच रुपये भिखारियों को देने लगे तो यह कार ज्यादा दिन टिकने वाली नहीं है।

बाहर की जो सम्पदा है वह बांटने से चुक जाती है। और भीतर की जो सम्पदा है वह बांटने से बढ़ जाती है। तो कोई जरूरत नहीं है कि किसी से समायोजन करो। जरूरत केवल इतनी बात की है कि प्रेम देने में कंजूसी मत करो और समायोजन हो जायेगा। प्रेम से बड़ा कोई और मजबूत धागा नहीं है। बड़ा कोमल है, फूलों जैसा कोमल है लेकिन लोहे की जंजीरों से भी ज्यादा मजबूत है। प्रेम बांटो, आनन्द बांटो, और तुम जहां हो, जिनके बीच हो उन सभी के लिए गौरव बन जाओगे। और खुद अपने लिए एक अपूर्व शान्ति का अनुभव करोगे। न कोई झंझट है, न कोई झगड़ा है। लेकिन तुमने कम्यून में भी भूल की। तुम वहां दूसरों की आदतों का अनुसरण करने लगे। तुमने सोचा कि उनके जैसे होंगे तो ही उनके साथ मैत्री हो सकती है। अब फिर वही भूल, कि अब लोगों के साथ होना है तो उनके ही जैसा होना होगा।

दुनिया में किसी व्यक्ति को किसी दूसरे जैसा होने की जरूरत नहीं है। सिर्फ अपने जैसा होने की जरूरत है--आनंदित, आह्लादित, प्रफुल्लित, और सारी दुनिया उसकी है। वह फिर कम्यून में हो कि बाजार में हो कि दुकान में कि मन्दिर में हो, कोई फर्क नहीं पड़ता। वह जहां भी है वहीं काबा है। वह जहां भी है वहीं वाराणसी है। वह जहां पैर रख दे वहीं तीर्थंकरों ने पैर रखे होंगे। वह जहां बैठ जाये वहीं बुद्ध बैठे होंगे।

अपने से, अपने भीतर से सारे विरोध गिरा दो और अपने भीतर एक ऐसा समस्वर संगीत पैदा कर लो जो बजता ही रहे। उस संगीत ने आज तक दुनिया में करोड़ों लोगों को जीता है। तुम्हें अपना संगीत भूल गया है। सब साधन तुम्हारे पास हैं। लेकिन उन साधनों से संगीत कैसे पैदा हो इसकी कला भूल गयी है। उस कला को ही मैं धर्म कहता हूं। हिन्दू होने को मैं धर्म नहीं कहता और न मुसलमान होने को और न जैन होने को। अपने भीतर एक ऐसी शान्त, एक ऐसी मौन, एक ऐसे संगीत की दुनिया पैदा कर लो कि जो तुम्हारे पास आये बिना तुममें डुबकी लिये लौट न सके। और जो एक बार तुममें डुबकी ले ले, बार-बार तुम्हारे पास आये।

ऐसी कथा है कि बुद्ध का एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण शिष्य सारिपुत्र बुद्ध से दूर-दूर बैठता था। जबकि स्वभावतः लोग पास-पास बैठने की कोशिश करते हैं, सारिपुत्र छिप-छिपकर बैठता था, कहीं झाड़ की आड़ में, कहीं भीड़ की आड़ में। और दस हजार शिष्यों में बहुत आसान था छिप-छिपकर बैठ जाना। एक दिन बुद्ध ने उसे आखिर पकड़ ही लिया। और कहा कि सारिपुत्र, यह तुम क्या कर रहे हो? सारिपुत्र ने कहा, मुझे छोड़ दो, मुझे छिपा रहने दो। पर बुद्ध ने कहा, मामला क्या है? सारिपुत्र ने कहा कि मैं बुद्धत्व को उपलब्ध नहीं होना चाहता। बुद्ध ने कहा, तुम पागल हो गये हो? तुम मेरे पास आये इसलिए थे कि बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाओ। उसने कहा, आया था वह मेरी गलती थी। जाने वाला नहीं हूं। क्योंकि मैं देखता हूं रोज-रोज जो-जो बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाते हैं, आप कहते हैं जाओ, अब मेरे सन्देश को दूर-दूर पहुंचाओ। मैं तो रोज-रोज डुबकी लूंगा। मैं बुद्धत्व छोड़ सकता हूं लेकिन आपमें डुबकी लेना नहीं छोड़ सकता हूं। अगर वचन देते हों कि मेरे बुद्धत्व के होने के बाद भी मुझे बैठने का इन चरणों में हक होगा तो मैं छिपना छोड़ दूं। अन्यथा मैं छिपता रहूंगा, अन्यथा मैं बचता रहूंगा। मैं बहुत बार बुद्धत्व के किनारे पहुंच गया हूं और ऐसा भागा हूं कि मैंने पीछे लौटकर नहीं देखा। मुझे पक्का पता है कि मन्दिर कहां है; उसी मन्दिर को बच-बचकर चल रहा हूं। मुझे मत सताओ। बुद्ध ने तब उसे वचन दिया कि तू फिक्र छोड़। तू भी खूब आदमी है। तू मजे से बैठ, जहां

तुझे बैठना है। तेरे बुद्धत्व के हो जाने के बाद भी तू मेरे साथ ही चलेगा। तुझे मैं अपनी छाया की तरह साथ रखूंगा। सारिपुत्र ने कहा, आश्वासन? कोई धोखाधड़ी तो नहीं है? लेकिन उसे पक्का विश्वास नहीं आया। वह बुद्ध के पास बैठने लगा और एक दिन बुद्धत्व को उपलब्ध भी हुआ लेकिन उसने बुद्ध से निवेदन नहीं किया कि मैंने उसे पा लिया है जिसे खोजने निकला था। बुद्ध ने कहा, सारिपुत्र, कम से कम कह तो दे। सारिपुत्र ने कहा, मैं अपने मुंह से न कहूंगा। मुझे अज्ञानी ही रहने दो। बुद्ध ने कहा, मगर तू अब अज्ञानी नहीं है, तू बुद्ध हो गया है। और वे बातें जो मैंने तुझसे कही थीं, तेरे अज्ञान में कही थीं। उसने कहा, देख रहे हैं, मैंने पहले ही कहा था, धोखाधड़ी नहीं चलेगी। मैं मर जाऊं मगर इस जगह को नहीं छोड़ूंगा। इन चरणों को नहीं छोड़ूंगा। यह डुबकी---इसके बिना बुद्धत्व भी मुझे मीठा नहीं है।

तुम अपने साथ, अपने भीतर, अपने सितार पर संगीत को उठने दो। लोग तुमसे समायोजित होना चाहेंगे। तुम क्यों लोगों से समायोजित होना चाहते हो? और तुम उनसे समायोजित होकर न केवल अपना अहित करोगे, उनका भी अहित करोगे। क्योंकि मैंने देखा, पश्चिम में मैंने स्त्रियों से पूछा कि तुम सिगरेटें क्यों पी रही हो? उन्होंने कहा कि अगर सिगरेटें न पीओ तो पश्चिम में जो बुद्धिजीवियों का वर्ग है उसमें बैठ भी नहीं सकते। यहां पूरब में कोई स्त्री बैठ कर सिगरेट पीने लगे तो अशोभन मालूम होगा, अशिष्ट मालूम होगा। हम कल्पना भी नहीं कर सकते। वे लोग भी जो सिगरेट पीते हैं, वे भी नहीं मान सकते कि कोई स्त्री सिगरेट पी रही है। स्त्री को हमने उतना समादर दिया है। हम उसे इतने नीचे न गिरने देंगे। लेकिन लोगों के साथ बैठना है तो सिगरेट पीओ, शराब पीओ, जुआ खेलो। लोगों की जो आदतें हैं उनको अपनी आदतें बना लो। लोग अगर नालियों में गिरे हों तो तुम भी नालियों में गिरो। और लोग अगर नालियों में सड़ रहे हों कीड़ों की तरह तो तुम भी नालियों में कीड़ों की तरह सड़ो। तब तुम उनके साथ दोस्ती बना सकोगे। मगर यह दोस्ती बड़ी महंगी है। यह तो जीवन का सब कुछ खोकर तुम क्या पा रहे हो? नहीं, भूलकर भी किसी दूसरे से समायोजित मत होना। समायोजित होना है तुम्हें स्वयं की सत्ता से, क्योंकि वहीं परमात्मा का निवास है। और जो उसके साथ एक हो गया उसे इस दुनिया में किसी के साथ एक होने की जरूरत नहीं है। और जो उसके साथ एक हो गया वह हर जगह समादृत होगा।

मैं अमरीका के पहले जेल में बन्द था। तीसरे दिन उस जेल से मुझे दूसरी जेल में ले जाया गया। उस जेल का जेलर तीसरे दिन मेरे पास कोठरी में अकेला आया। उसकी

आंखों में आंसू थे। और उसने कहा, मुझे एक बात की क्षमा मांगनी है। मैंने कहा, आपके द्वारा मेरे ऊपर कोई अत्याचार नहीं हुआ है। मेरी सब तरह से सुविधा की आपने व्यवस्था की है, क्षमा किस बात की? उसने कहा कि क्षमा मुझे इस बात की मांगनी है कि पहले दिन जब आप जेल में आये तो कोई आधा घंटे बाद जर्मनी से एक फोन आया और उस फोन करने वाले ने पूछा कि भगवान आपकी जेल में हैं यह आपका सौभाग्य है। और शायद आपके पूरे जीवन में, बीते और आने वाले जीवन में ऐसा कोई व्यक्ति आपकी जेल में दुबारा नहीं आयेगा। मेरा आपसे कोई परिचय नहीं था, उस बूढ़े जेलर ने कहा, और अकड़ भी थी तो उसने जर्मन फोन करने वाले को कहा कि नहीं, मेरे जेल में बहुत बड़े-बड़े लोग आ चुके हैं। कैबिनेट स्तर के मिनिस्टर भी मेरी जेल में बन्द रह चुके हैं। तो यह कोई नयी अनूठी बात नहीं है।

तो मैंने कहा, इसमें कोई हर्जा नहीं है। इसमें मुझसे क्षमा क्या मांगनी है? उसने कहा कि हर्जा यह है कि मुझे उस आदमी के फोन का कोई पता नहीं है। तुम नये आये थे, तुम्हें जानता न था। फिर हजारों फोन आने शुरू हुए, तार आने शुरू हुए, टैलेक्स आने शुरू हुए और हजारों फूलों की डलियां आना शुरू हुईं। ऐसा मेरे जेल में कभी भी न हुआ था। जेल बड़ा था, छह सौ कैदी थे, लेकिन इतने फूल आये कि फूलों को रखने की जगह न रही। उसने मुझसे पूछा, इन फूलों का मैं क्या करूं? मैंने कहा, सारे विभाग जेल के हैं उनमें बांट दो। उसने कहा, बांटने का सवाल ही नहीं है। उन्हीं सब विभागों में तो फूल भरे हुए हैं। तो मैंने कहा, स्कूलों में, कालिजों को, युनिवर्सिटी को, सब विभागों को, विद्यालयों को मेरी तरफ़ से फूल भेज दो। जिस कोठरी में मुझे रखा गया था...वह दिन में कम से कम छह बार मुझे मिलने आता था। नर्सें परेशान थीं, डाक्टर परेशान था क्योंकि वे कहते हैं यह आदमी कभी साल-छह महीने में एक बार इस तरफ आता था और यह दिन में छह बार यहां आता है। वह अपनी पत्नी और बच्चों को दिखाने के लिए मुझे अपने साथ लाया और कहा कि बस एक ही आकांक्षा है कि मेरे साथ और मेरे परिवार के साथ-साथ एक चित्र निकलवा लें और दस्तखत कर दें। दो महीने बाद मैं रिटायर हो जाऊंगा। यह मेरे जीवन की सबसे बड़ी स्मृति है। क्योंकि मैंने कभी भी नहीं सोचा था कि तुम्हारी मौजूदगी से यह जेल भी मन्दिर बन सकता है।

क्योंकि कैदियों ने टेलीविजन पर निरन्तर मुझे देखा था। कई कैदियों के पास किताबें थीं। कुछ कैदियों ने ध्यान करने के प्रयोग किये थे। उन सबने प्रार्थना की जेलर से, कि यह हमारा सौभाग्य है कि वे तीन दिन के लिए हमारे जेल में हैं। हमें मौका दिया जाये कि हम उन्हें सुन सकें। हमें मौका दिया जाये कि वे हमें ध्यान करवा सकें। हमें मौका दिया जाये।

उस बूढ़े की यह कल्पना के बाहर था कि ये खतरनाक कैदी ध्यान करना चाहते हैं। और इन छह सौ कैदियों में एक भी मेरे विरोध में नहीं है। कोई डेढ़ सौ कर्मचारी जेल में होंगे, वे भी सब सम्मिलित होते थे ध्यान के लिए। और उसने एक आखिरी कदम उठाया जो कि कभी भी नहीं उठाया गया था। उसने मुझसे पूछा कि अनेक टेलीविजन स्टेशन, रेडियो स्टेशन पूछ रहे हैं कि क्या हम कुछ प्रश्न पूछने के लिए जेल के भीतर आ सकते हैं? इसका कोई इतिहास नहीं है। कोई जेल के भीतर इस तरह नहीं आ सकता। लेकिन उसने कहा कि मैंने उन सबको आज्ञा दी है आज सांझ सात बजे। अब मेरा कोई क्या बिगाड़ लेगा? दो महीने की कुल नौकरी है। ज्यादा से ज्यादा दो महीने पहले रिटायर हो जाऊंगा। उसने जेल के भीतर वर्ल्ड प्रैस कांफ्रेंस बुलायी। कोई सौ पत्रकार जेल के भीतर इकट्ठे किये। और जब मैं पत्रकारों से बोलने जा रहा था तो उसने कान में कहा कि इस बात की जरा भी चिन्ता न करना कि यह जेल है। और तुम्हें वही नहीं कहना है जो हमें अच्छा लगे--नहीं; तुम्हें वही कहना है जो अच्छा है। वह चाहे हमारे विरोध में हो।

और तीन दिन के बाद छोड़ते वक्त डाक्टर की आंखों में आंसू थे, नर्सों की आंखों में आंसू थे, जेलर की आंखों में आंसू थे। डाकटर एक महिला थी और उसने कहा कि मैं नहीं चाहती कि आपको कभी भी इस जेल से छोड़ा जाये। मैंने कहा कि तेरी आकांक्षा तो ठीक है लेकिन सारी दुनिया में फैले मेरे संन्यासी राह देख रहे हैं कि मुझे छोड़ा जाये। उसने कहा, इसलिए तो मैंने सिर्फ कहा कि मेरे मन का भाव है कि तुम सदा यहीं रहो। मैं जानती हूं कि वहां हजारों लोग तुम्हारी प्रतीक्षा करते होंगे। जब तीन दिन में हम तुम्हारे साथ इतना मेल-जोल बढ़ा लिये, जो लोग वर्षों से तुम्हारे साथ हैं उनके दुख और चिन्ता को हम अनुभव कर सकते हैं। लेकिन हमें भूल मत जाना।

तुम्हें केवल अपने साथ एक होना है। तुम्हें केवल अपने भीतर वे तरंगें उठानी हैं जो आनन्द की हैं। दूसरे तुम्हारे साथ एक होने लगेंगे। और यह ऊंचाई की यात्रा होगी। तुम अगर दूसरों के साथ एक होने लगे तो तुम गड्ढों में गिरोगे। क्योंकि फिर चारों तरफ भीड़ है अन्धों की और अज्ञानियों की। और उनके साथ एक होने का अर्थ है, उनके जैसा होना। एक भूल तुमने कम्यून में की, अब दूसरी भूल कम से कम मत करना। और आनंदित व्यक्ति को चाहे बाहर की दुनिया से कितना ही कष्ट मिले, कोई अन्तर नहीं पड़ता। और जिसके भीतर का संगीत जगा है, बाहर कितना ही शोरगुल हो, वह अपने

संगीत में लीन होता है। उसे कोई अन्तर नहीं पड़ता। बस तुम अपनी नजर अपने पर रखो। दूसरों को बहुत देख लिया, बहुत-बहुत जन्मों में देख लिया, अब इस जन्म में थोड़े-बहुत दिन बाकी बचे हों, रिटायर होने के पहले, वे अपने को देखने में व्यतीत करो।

प्रश्न : भगवान, क्या यह संभव है कि कोई व्यक्ति आपकी चेतन-दशा को उपलब्ध करके शारीरिक रूप से पूर्ण स्वस्थ रह सके, या कि यह संभव नहीं है? ऐसा ताओ का नियम है? क्योंकि मैंने सुना है कि सभी सद्गुरु शारीरिक रूप से अस्वस्थ रहे हैं।

यह सच है, ताओ का जो निष्कर्ष है वह सौ प्रतिशत सच है। ठीक आध्यात्मिक अनुभूति को उपलब्ध व्यक्ति शारीरिक रूप से पूर्ण स्वस्थ नहीं रह सकता। इसका यह मतलब नहीं है कि जो लोग बीमार हैं वे आध्यात्मिक स्थिति को उपलब्ध हो गये हैं। लेकिन जो लोग परम ज्ञान को उपलब्ध हुए हैं उनका शारीरिक रूप से पूर्ण स्वस्थ होना मुश्किल है—एक विशेष नियम के कारण। क्योंकि जैसे ही कोई व्यक्ति अपने को जानता है, उसके संबंध उसके शरीर से शिथिल हो जाते हैं। सेतु टूट जाता है। कल तक वह अपने को शरीर मानता था तो उसके जीवन की सारी ऊर्जा, उसकी सारी शक्ति शरीर में प्रवाहित होती थी। आज अचानक वह अपने शरीर को एक कारागृह से ज्यादा नहीं पाता, इसलिए उसकी ऊर्जा शरीर की तरफ प्रवाहित होनी बन्द हो जाती है।

रामकृष्ण परमहंस कैंसर से मृत्यु को उपलब्ध हुए। रमण महर्षि कैंसर से मृत्यु को उपलब्ध हुए। बुद्ध विषाक्त भोजन के कारण मृत्यु को उपलब्ध हुए। महावीर पेट की बीमारियों के कारण मृत्यु को उपलब्ध हुए। कृष्णमूर्ति चालीस वर्षों तक सिर की भयंकर पीड़ा से परेशान रहे। ऐसे परेशान रहे कि उनका मन होता था कि सिर को दीवाल से ठोंक-ठोंककर तोड़ डालें। दर्द इतना भयंकर था। और यह किसी एक के संबंध में सच नहीं है। यह करीब-करीब मनुष्य-जाति के इतिहास में जिन लोगों ने भी ऊंचाई पायी है, उन सबके संबंध में किसी न किसी अंश में सच है। कारण बिल्कुल साफ है। तुम शरीर से जुड़े हो और निकट हो। और आत्मज्ञानी शरीर से टूट जाता है और अलग हो जाता है। यूं ही समझो कि जैसे बैलगाड़ी बैलों से जुड़ी है तो चल रही है। बैल चलते हैं, बैलगाड़ी नहीं चलती। लेकिन अगर बैल बैलगाड़ी से छूट जायें या ढीले हो जायें तो बैलगाड़ी का चलना मुश्किल हो जाता है या गड्ढे में अटकने लगती है या रास्ते से उतरने लगती है। और यह इसलिए भी स्वाभाविक है कि यह अन्तिम शरीर है। परमज्ञानी

फिर दुबारा शरीर में नहीं आयेगा। इसलिए शरीर के साथ जो थोड़ा-बहुत संबंध बचा है, बस उसको ही पूरा करने योग्य समय है उसके पास। वह थोड़ा-सा समय पूरा हुआ कि उसकी विदाई की घड़ी आ जायेगी।

आध्यात्मिक अनुभव को उपलब्ध व्यक्ति परिपूर्ण रूप से स्वस्थ नहीं हो सकता। स्वस्थ होने का अर्थ, मैं शारीरिक स्वास्थ्य के लिए कह रहा हूं। उसका शरीर एक खोल रह जाता है। वह उसके भीतर है जरूर, मगर वे पुराने लगाव गये, वे पुराने खिंचाव गये, वे पुरानी रस्सियां टूट गयीं, वे पुराने बन्धन् सब शिथिल हो गये।

रामकृष्ण के जीवन में महत्वपूर्ण उल्लेख है जो समझने योग्य है। रामकृष्ण प्रवचन देते होते थे--ऐसे, जैसे आज सुबह मैं तुमसे बोल रहा हूं। रोज सुबह उनके भक्त इकट्ठे होते थे। लेकिन बीच-बीच में उठकर वे घड़ी भर के लिए जाते थे बाहर और फिर लौट आते थे। शिष्य बड़े हैरान होते थे। और जो खास शिष्य थे, विवेकानन्द और दूसरे लोग, उनको तो पता था कि मामला क्या है। मामला यह था कि हर थोड़ी-बहुत देर में वे जाकर झांक आते थे चौके में और पूछ आते थे शारदा मणि से, उनकी पत्नी से कि आज क्या बना है? ब्रह्मचर्चा चल रही है मगर शारदा हलुआ बना रही है और हलुए की गंध आ रही है तो रामकृष्ण कहते कि भई, जरा रुकना, मैं आया। शारदा कहती कि देखो परमहंस देव, यह शोभनीय नहीं है। लोग क्या कहेंगे! कि ब्रह्मचर्चा छोटी पड़ जाती है और हलुए का अस्तित्व ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाता है? और एक-आध बार नहीं, तुम दो-तीन बार उठ-उठकर आते हो। और अब धीरे-धीरे सभी को पता चल गया है कि तुम जाते कहां हो। तुम किचन में जाते हो। रामकृष्ण हंसते और टाल देते। लेकिन एक दिन शारदा जिद पकड़ गयी और उसने कहा कि यह बदनामी मुझसे नहीं सही जाती। लोग आपसे तो कुछ नहीं कहते। हिम्मत नहीं है कहने की। लेकिन मेरी जान खाये जाते हैं कि कम से कम तुम तो उनकी पत्नी हो, तुम तो उन्हें समझा सकती हो कि कुछ भी बन रहा है, तुम्हारे लिए बन रहा है। जरा धीरज रखो। इतना समझाते हो लोगों को कि धीरज से रहो, शान्ति से रहो, अशान्त न बनो और तु खुद जरा हलुए की गंध हवा में आयी कि भागे।

रामकृष्ण ने कहा, तू नहीं मानती तो मैं तुझे कह देता हूं। जिस दिन मैं नहीं आऊंगा उस दिन तू पछतायेगी। और जब शारदा थाली लेकर आती उनके भोजन के लिए तो वे बच्चों जैसा व्यवहार करते। जल्दी उठकर खड़े हो जाते थाली में देखने को कि क्या-क्या बना हुआ है। जो-जो उन्हें ठीक लगता वे उसे चखकर भी देख लेते। शारदा कहती, तुम थोड़ा तो धीरज रखो। कम से कम मुझे थाली तो जमीन पर रख लेने दो। तुम्हारे लिए

पटिया बिछाया है, उस पटिये पर बैठो। तुम्हें खड़े होने की जरूरत नहीं है। थाली मैं खुद रख रही हूं। आधा मिनट की भी देर नहीं होगी। और कोई यह देखेगा तो क्या कहेगा! रामकृष्ण ने कहा, शारदा, तू मानती नहीं। जिस दिन तू थाली लेकर आयेगी और मैं अपने बिस्तर पर करवट बदल लूंगा दूसरी तरफ और तेरी थाली को नहीं देखूंगा, समझ लेना कि तीन दिन और बचे हैं मेरी जिन्दगी के। शारदा समझी कि वे मजाक कर रहे हैं।

लेकिन यही हुआ। एक दिन शारदा रामकृष्ण के कमरे में प्रविष्ट हुई भोजन लेकर। रामकृष्ण न तो बिस्तर से उठे, न उन्होंने भोजन में कोई उत्सुकता ली, वरन् दीवार की तरफ मुंह कर लिया। शारदा के हाथ से थाली गिर पड़ी। उसे याद आयी वह बात जो वर्षों पहले रामकृष्ण ने कही थी। रामकृष्ण ने कहा, अब थाली के गिराने न गिराने से कुछ भी न होगा। बस तीन दिन और हूं। और आज तुझे कहता हूं, क्यों तू बार-बार पूछती थी और मैं चुपचाप रह जाता था। आज तुझे कहता हूं कि मेरे सारे बंधन शरीर से छूट गये हैं। किसी तरह एक छोटे-से बंधन को, रस के बंधन को, भोजन के बंधन को पकड़े हुए हूं ताकि जितनी देर इस घाट पर रुक सकूं, मेरे कुछ शिष्य जाग जायें ताकि मैं निश्चिन्त विदा हो सकूं। मेरी नाव तो बहुत दिन पहले की आ चुकी है और किनारे से बंधी है। मुझे तो पुकार आ चुकी है कि छोड़ो यह किनारा, तुम्हारा काम पूरा हो चुका। लेकिन मैं जानता हूं कि मेरे शिष्य अभी बच्चे हैं, अप्रौढ़ हैं। उनमें से कोई तो प्रौढ़ हो जाये। और ठीक तीन दिन बाद रामकृष्ण की मृत्यु हो गयी।

जिसके जीवन में समाधि का अनुभव होता है उसके सारे संबंध क्षीण हो जाते हैं। फिर उन संबंधों को करुणावश अगर वह किसी तरह खींचतानकर बनाये रखे, तो ऐसी यह मूढ़ दुनिया है जिसका कोई हिसाब नहीं। उसके शिष्य ही उस पर ऐतराज उठायेंगे कि बन्द करो, यह बात शोभा नहीं देती। और उन्हें पता नहीं है कि यह बात ही उस आदमी को जिन्दा रखे है। वह सांस ले रहा है। और यह उनके लिए है, उनकी करुणा के लिए। उसका खुद का काम तो पूरा हो गया है। जब खुद का काम पूरा हो गया तो शरीर की कोई जरूरत नहीं है। फिर शरीर कैसे स्वस्थ रह सकता है? फिर शरीर में ऊर्जा का प्रवाह अपने-आप बन्द हो जाता है। फिर शरीर जगह-जगह से अपने कमजोर स्थानों से बीमारियों को प्रकट करने लगता है। रामकृष्ण को गले का कैंसर हो गया था। यह जरा सोचने जैसी बात है। कोई जीवन की गहरी बातों पर सोचता ही नहीं है। क्योंकि यह आदमी भोजन के कारण अपने को रोके हुए था। नाव किनारे आ लगी थी उस पार ले जाने को। और इस आदमी ने तरकीब निकाल ली थी भोजन के कारण अपने को रोकने

की।

अस्तित्व बड़ा रहस्यपूर्ण है। रामकृष्ण के गले को कैंसर हो गया। वे पानी भी नहीं पी सकते थे, खाना भी नहीं खा सकते थे। वह आखिरी बन्धन को तोड़ने का उपाय था। क्योंकि नहीं तो वे नाव पर सवार ही नहीं होंगे। सबने उनसे प्रार्थना की कि आप तो उस अवस्था में हैं कि अगर अस्तित्व को कह दें कि हटा लो इस कैंसर को, तो यह हट जायेगा। क्यों हमें कष्ट दे रहे हैं? उनके भक्त, उनके प्रेमी, उनके शिष्य, दिन-रात भजन में, कीर्तन में, संकीर्तन में संलग्न थे कि किसी तरह रामकृष्ण का गले का कैंसर दूर हो जाये। और उस समय तक तो कैंसर का कोई इलाज भी न था, कोई आपरेशन भी न था। आखिर फिर उन्होंने शारदा को कहा कि तुम्हीं कहो। वे कुछ सुनते नहीं। हम कहते हैं, वे मुस्कुराते हैं। शारदा ने कहा, एक बार तो इनकी मान लो। इन्होंने जिन्दगी भर तुम्हारी मानी है। इन सबकी कम से कम एक बार तो मान लो। एक बार अस्तित्व से कहो कि हटा लो इस कैंसर को। और मैं यहां से नहीं हटूंगी। मैं यहां खड़ी हूं। आंख बन्द करो और कहो अस्तित्व से, कि हटा लो इस कैंसर को। रामकृष्ण ने आंख बन्द की, थोड़ी देर बाद आंख खोली, हंसे और शारदा से बोले, शारदा मैंने कहा। तेरी बात नहीं टाल सकता हूं। क्योंकि शारदा जैसी पत्नी पाना बहुत मुश्किल है। लेकिन अस्तित्व से उत्तर आया कि कब तक इसी गले पर निर्भर रहोगे? यह शरीर तो छूटना ही है। आज नहीं कल, कल नहीं परसों। अब जिनको तुम प्रेम करते हो उनके गलों से भोजन करो, उनके गलों से पानी पीओ। अब इस गले का मोह छोड़ो। यह अपना और तुम्हारा, अब यह भेद छोड़ो। अब बोल, शारदा से उन्होंने कहा, मैं क्या कहूं? अब मुझे और लज्जित मत करवा। उसी रात उनके प्राण निकल गये। लेकिन वे यह कह गये कि याद रखना, मैं तुम्हारे गलों का उपयोग करूंगा। आखिर तुम्हारे गले भी तो मेरे ही गले हैं। आखिर हम सब जुड़े हैं। और मेरी नाव को मैंने बहुत देर तक रोका है। और जरूरी था कि कोई उपाय किया जाये कि मैं नाव को न रोक सकूं। और अस्तित्व हमेशा ईजादें कर लेता है।

आदमी की औकात कितनी है? अस्तित्व के सामने आदमी की ताकत कितनी है? तो अब मैं चलूं और पता लगाऊं कि क्या भोजन बन रहा है!
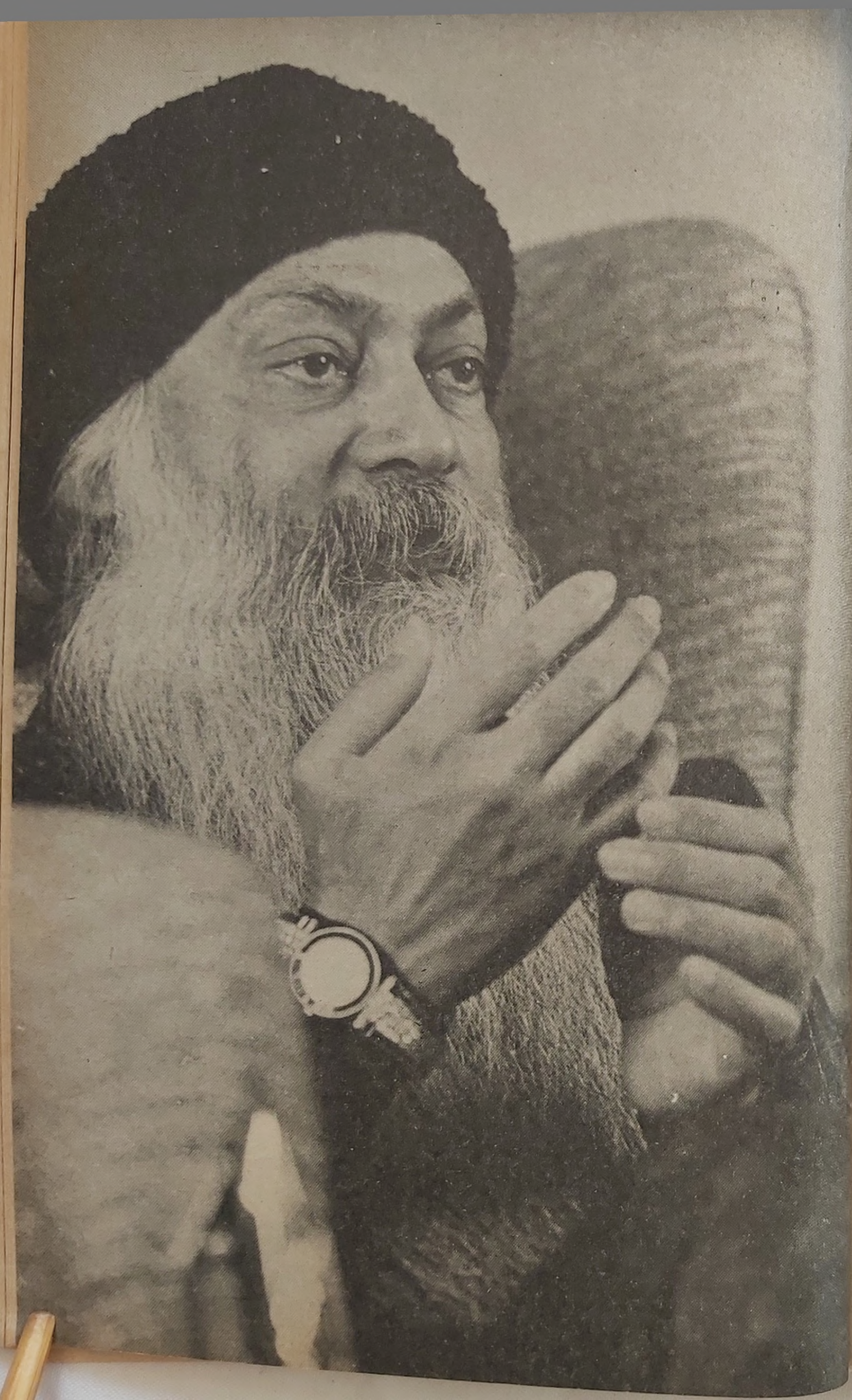
अपार्थिव तत्व की पहचान

पांचवां प्रवचन : ३ अगस्त, १९८६, ३.३० अपराह्न, सुमिला, जुहू, बम्बई

प्रश्न : भगवान, जब कोई छल और दगाबाजी करता है, या जब कोई मुझे वस्तु की तरह उपयोग करता है, ऐसी स्थिति में मुझे क्या करना चाहिये ? मैं उस व्यक्ति को चोट भी नहीं पहुंचाना चाहती। मन की शान्ति कैसे मिले ? मैं टूट-फूट गई हूं।

जीवन की उलझनों में दूसरे कभी भी उत्तरदायी नहीं होते। सारा उत्तरदायित्व अपना होता है। जैसे तुमने कहा कि जब कोई मुझसे छल और दगा करता है तो मेरे दिल को चोट पहुंचती है। थोड़ा सोचो, दिल को चोट किसी के छल और दगा करने से नहीं होती। तुमने चाहा था कि कोई छल और दगा न करे इसलिए चोट होती है। यह तुम्हारी चाह का फल है। और सारी दुनिया तुम्हारी चाह को मानकर चले, यह तुम्हारे हाथ में नहीं। यह किसी के भी हाथ में नहीं। लेकिन हम यूंही सोचने के आदी हो गये हैं कि हर चीज का दायित्व दूसरे पर थोप दें। इससे आसानी होती है, राहत मिलती है। राहत मिलती है कि मैं जिम्मेवार नहीं हूं। अब कोई छल कर रहा है इसलिए कष्ट हो रहा है। लेकिन तुमने चाहा ही क्यों कि कोई छल न करे ? और यह हमारे हाथ में कहां है कि हम ऐसी दुनिया बना लें जिसमें छल और कपट न हो ? छल भी होगा, कपट भी होगा। हम इतना जरूर कर सकते हैं कि हम अपने को ऐसा बना लें कि दूसरे के छल और कपट को भी स्वीकार कर सकें। कर्म उसका है, फल उसका होगा। तुम्हें परेशानी क्यों हो ? और तुम्हारी परेशानी उसके

छल और कपट को नहीं रोक पायेगी। हां, तुम अगर गैर-परेशान रह जाओ, तुम्हारी शान्ति में अगर कोई विघ्न और कोई बाधा न पड़े, तुम्हारा हृदय अगर निष्कम्प रह जाये, कोई कलुष, कोई शिकायत, कोई शिकवा न उठे तो शायद तुम उस दूसरे व्यक्ति को बदलने में समर्थ भी हो जाओ। यह बहुत मुश्किल है उस आदमी को धोखा देना, जो तुमसे धोखा खाने को चुपचाप राजी है; लेकिन न शिकायत है न शिकवा है। इतना गिरा हुआ आदमी जमीन पर पैदा ही नहीं हुआ। और न पैदा हो सकता है। लेकिन तुम्हारा दुख, तुम्हारी पीड़ा उसकी विजय है। और जब उसे छैल से और छलावे से विजय मिलती हो तो विजय को छोड़ना बहुत मुश्किल है।

मुझे बहुत प्रीतिकर रही है एक फकीर की कहानी। एक पूर्णिमा की रात, और एक चोर उसके झोंपड़े में घुस आया। फकीर के घर में कुछ भी नहीं है। सिर्फ एक कम्बल है जिसे ओढ़कर वह बरामदे में लेटा हुआ रात के पूरे चांद को देख रहा है। उसने चोर को भीतर आते देखा और उसकी आंखों में आंसू आ गये। आंसू इस बात के कि यह नासमझ चोर, इसे इतना भी पता नहीं है कि इस फकीर के घर में कुछ भी नहीं है। काश यह दो दिन पहले मुझे खबर कर देता तो मैं कुछ मांगकर जुटा लेता। इसके लिए कुछ तो इन्तजाम कर लेता। गांव से दस मील दूर इस पहाड़ी पर चढ़कर आया है और मेरे घर से खाली जायेगा। जीवन भर के लिए मेरे दिल को एक पीड़ा दे जायेगा। वह उठा, चोर के पीछे हो लिया। जैसे ही चोर घर के भीतर घुसा, फकीर ने मोमबत्ती जला ली। चोर ने कहा, आप कौन हैं? फकीर ने कहा, तुम इसकी फिकर न करो। इतना ही समझो कि दोस्त हूं, दुश्मन नहीं। चोर ने कहा, क्या अकस्मात दो चोर इस घर में एक साथ घुस आये हैं? फकीर ने कहा, मैं घुस नहीं आया हूं। तीस साल से इस घर में रहता हूं। और यह मोमबत्ती मैं इसलिए जला ली है कि तुम्हें कहीं कोई चोट न लग जाये। घर के भीतर अंधेरा है। और इसलिए भी जला ली है कि तीस साल में मैं खुद भी कुछ खोज न पाया। यह घर इतना खाली है, इतना सूना है, शायद तुम्हारे भाग्य से कुछ मिल जाये। और तुम्हारी कृपा से मैं भी कुछ भागीदार हो जाऊं! चोर तो ऐसे आदमी को देखकर बहुत घबराया। यह मालिक है, और यह कैसी बातें कर रहा है! चोर ने कहा, मुझे जाने दो। और उस फकीर ने कहा, यूं नहीं। कम से कम घर की पूरी छानबीन तो कर लो। जब भी कोई काम करो तो पूरा करो। और जब भी कोई काम करो तो समग्रता से करो। और फिर भय किसका? तुम मजे से खोजबीन करो, मैं सहायता के लिए तैयार हूं। अगर तुम मुझे भागीदार नहीं बनाना चाहते तो भी कोई हर्ज नहीं। मुझे तो मिला नहीं। यूं भी नहीं मिला, यूं भी नहीं मिलेगा। तुम सब ले जाना।

ठंडी रात, लेकिन चोर को पसीना छूट गया। उसने कहा, आप आदमी कैसे हैं? यह मकान आपका है। उस फकीर ने कहा, मकान अगर मेरा होता तो मेरे साथ आता और मेरे साथ जाता। न यह मेरे साथ आया और न यह मेरे साथ जायेगा। यह मकान किसी का भी नहीं है। मुझमें तुममें फर्क यह है कि मैं तीस साल पहले इसमें प्रवेश किया था, तुम तीस साल बाद पीछे प्रवेश किये हो। लेकिन चोर ने कहा, कुछ भी हो, तुम मुझे क्षमा कर दो और मुझे जाने दो। मुझसे गलती हो गई। तो फकीर ने अपना कम्बल उस चोर को ओढ़ा दिया और फकीर नंगा खड़ा हो गया। और फकीर ने कहा, रात सर्द है और गांव दूर है। अगर तुम्हें सर्दी-जुकाम पकड़ गया तो जिम्मेदारी मेरी होगी। और मैं तो घर के भीतर हूं, किसी तरह गुजार लूंगा सूरज के उगने तक। और कल कहीं से मांगकर कम्बल भी जुटा लूंगा। तुम यह कम्बल ही ले जाओ। कम से कम राहत रहेगी मन को। तुमने मुझे इतना गौरव दिया है। मुझे सम्राट बना दिया। सम्राटों के घर में चोर घुसते हैं। फकीरों के घर में कोई चोर घुसा है! इन्कार न करना। चोर इतनी घबराहट में था, उसके हाथ ऐसे कंप रहे थे, लेकिन मजबूरी में उसने कम्बल ले लिया कि किसी तरह बाहर हो जाऊं। जब वह बाहर हो गया तो उसने लौटकर देखा कि फकीर उसके पीछे चला आ रहा है। उसने पूछा कि कृपा करके अब तो मुझे छोड़ दो। फकीर ने कहा, अब तुम्हें छोड़कर क्या करूंगा? घरबार तो तुम ले चले। अब अकेला रहकर मैं यहां क्या करूंगा? जहां तुम रहोगे वहीं मैं रहूंगा। तुमको तो राजी कर लिया, कम्बल को कैसे राजी करूंगा? कम्बल नाराज होगा कि इतने दिन मैंने साथ दिया और मुझे यूं छोड़ दिया! मैं छोड़ने वाला नहीं हूं। साथ ही रहेंगे। दुख, सुख, जो होगा सहेंगे। चोर ने कहा, मुझे माफ करो। यह कम्बल अपना वापिस ले लो और अपने घर में जाओ। मैं भूल से घर में घुस गया। मुझे पता न था कि यह फकीर का घर है। मेरी प्रार्थना, मेरी अर्जी स्वीकार कर लो। और मुझे क्षमा करो।

वह फकीर कम्बल लेकर भीतर चला गया। और तभी चोर ने जोर की आवाज सुनी कि रुक, कम्बख्त! लौट। चोर हिम्मतदार आदमी था, बहादुर आदमी था लेकिन उसने ऐसी कड़कदार आवाज न कभी जीवन में सुनी थी। जेलों में रहा था। ऐसे काम किया था कि सूलियों पर चढ़ जाये। मगर यह आवाज, यह बुलन्दगी। वह घबराहट में पीछे लौट आया। फकीर ने कहा, सुन, दरवाजा खोलकर आया था, कम से कम दरवाजा बन्द तो कर जा। इतनी सभ्यता तो सीख। और मेरे पास जो कुछ था मैंने तुझे दिया है। कम से कम मुझे धन्यवाद तो दे। अब आ ही गया है तो कम से कम थोड़ी आदमीयत ही सीखकर

जा। और तो मेरे पास कुछ नहीं है।

चोर ने जल्दी से धन्यवाद दिया, दरवाजा बन्द किया और भागा। जब वह भाग रहा था तब फकीर ने खिड़की से कहा कि देख, जब वक्त पड़ेगा तब मैं काम आऊंगा। यह छोटा-सा धन्यवाद तेरी जिन्दगी के लिए छाया बन जायेगा।

और कुछ दिनों के बाद चोर पकड़ा गया। आखिर चोर निन्यानबे बार बच जाये लेकिन सौवीं बार तो पकड़ाने ही वाला है। और अदालत में पूछा गया कि कोई है जो तुम्हें जानता हो इस नगर में? चोर ने कहा, मेरा धन्धा ऐसा है कि दिन में तो मैं बाहर निकलता नहीं। मेरा धन्धा ऐसा है कि जब सब सो जाते हैं तब मैं निकलता हूं। तो परिचय का कोई उपाय नहीं। हां, एक फकीर है जो मुझे जानता है। वह गांव के बाहर दस मील दूर रहता है।

फकीर को बुलाया गया। वह प्रसिद्ध फकीर था। चोर नहीं जानता था लेकिन मजिस्ट्रेट जानता था, अदालत जानती थी। उन्होंने उस फकीर को पूछा कि क्या तुम इस चोर को पहचानते हो? फकीर ने कहा, यह आदमी चोर नहीं है। इसे मैं पहचानता हूं, भलीभांति पहचानता हूं। एक रात यह मेरे घर मेहमान हुआ था और चोर तो यह बिल्कुल भी नहीं है। चोर होना तो दूर, मैंने इसे कम्बल भेंट किया था, जो मैं अभी भी ओढ़े हुए हूं, इसने इसे भी लेने से इन्कार कर दिया था। मैं इसका ऋणी हूं। चोर होना तो दूर, मैं इसे कुछ भी न दे सका, फिर भी मुझे धन्यवाद देकर गया था। चोर होना तो दूर, जो सभ्य और शिष्ट कहे जाते हैं, वे भी इतने सभ्य और शिष्ट नहीं हैं, कि जब द्वार किसी का खोलें तो द्वार बन्द भी करके जायें। यह आदमी बड़ा भला है। यह आदमी बड़ा प्यारा है।

मजिस्ट्रेट ने कहा, फिर किसी और गवाही की जरूरत नहीं है। तुम्हारा शब्द पत्थर की लकीर है। चोर की जंजीरें खोल दी गईं। फकीर बाहर निकला। चोर फकीर के पीछे आया। फकीर ने कहा, क्या बात है? चोर ने कहा, मुझे माफ कर दो। एक बार और माफ कर दो। उस रात तुम मेरे पीछे आये थे और मैंने तुम्हें लौटा दिया। मुझ जैसा अभागा नहीं है। और आज मैं तुम्हारे पीछे आया हूं और सदा तुम्हारे पीछे रहूंगा। मुझे कभी लौटाना मत। मैंने बहुत आदमी देखे हैं मगर बस आदमी की शक्लें हैं। आदमी मैंने तुममें देखा। मुझे अपने चरणों में ले लो। मुझसे जो सेवा बन पड़ेगी, मैं तुम्हारी करूंगा। फकीर ने उसे अपने साथ ले लिया और रास्ते में कहा, मुझे पता है? मैंने कभी सोचा भी नहीं था कि मेरे भीतर कविता की कोई क्षमता है। जिस रात तू आया और वापिस गया और मैं खिड़की पर बैठकर पूरे चांद को और तुझे जाते हुए देख रहा था तो पहली बार मेरे जीवन में काव्य का

जन्म हुआ। मैंने पहली कविता लिखी। एकमात्र कविता मैंने जीवन में लिखी। वह कविता बड़ी प्यारी है। उस कविता का अर्थ है कि काश यह मेरे हाथ में होता तो आज मैं इस चांद को तोड़कर उस चोर को भेंट देता। मगर यह मेरे बस में नहीं है।

इस दुनिया में तुम्हें सब तरह के लोग मिलेंगे। और यूं तुम अगर हर आदमी से प्रभावित होते रहे, थपेड़े खाते रहे, तुम्हारे जीवन की नौका यूं ही डगमगाती ही रहेगी। तुम किनारा कभी पा न सकोगे। तुम मझधार में डूबोगे। साहिल तुम्हें मिलेगा नहीं।

एक बात ठीक से समझ लो। हम अपनी दुनिया खुद बनाते हैं। और अगर कोई तुम्हारे साथ छल करता है, या कपट करता है, क्या छीन लेगा? तुम्हारे पास है क्या? तुम्हारे पास कुछ भी तो नहीं है। और जो गरीब छल-कपट कर रहा है वह दीन, दरिद्र है। उसके पास भी कुछ नहीं है। सोचता है शायद छल-कपट से कुछ मिल जायेगा।

मेरी सलाह, पहली सलाहः जो तुम्हें धोखा दे, समझना कि बड़ा गरीब है। तुमसे तो ज्यादा गरीब है। जो तुम्हारे साथ छल करे, कपट करे, समझना कि बड़ा दीन है। तुमसे तो बड़ा भिखारी है। उस पर दया करना। उस पर करुणा करना। इसलिए नहीं कि तुम्हारी दया और करुणा से वह बदल ही जायेगा। वह बदले या न बदले लेकिन तुम बदल जाओगे। और असलियत बात यही है कि तुम बदल जाओ। और तुम एक ऐसी स्थिति में आ जाओ कि दुनिया तुम्हारे साथ कुछ भी करे लेकिन तुम्हें डांवाडोल न कर सके।

तुमने पूछा है कि लोग जब किसी वस्तु की तरह मेरा उपयोग करते हैं तो बड़ी चोट पहुंचती है। लेकिन तुम खुद अपने को वस्तु की तरह उपयोग कर रहे हो यह तुमने सोचा? तुमने अपने को आत्मा की तरह उपयोग किया है? कभी जीवन के किसी क्षण में? तुमने खुद अपने को वस्तु की तरह उपयोग किया है, एक शरीर मात्र। और जब तुम खुद ही अपने साथ यह दुर्व्यवहार कर रहे हो, तो दूसरों से क्या शिकायत? वे तुमसे वही कर रहे हैं जो तुम अपने से कर रहे हो। और शरीर तो वस्तु है ही। तुम अपने भीतर छिपे हुए उस चैतन्य को पहचानने की कोशिश करो जो वस्तु नहीं है। फिर तुम्हारा कोई भी कैसा भी उपयोग करे, तुम भलीभांति समझोगे कि तुम दूर खड़े देख रहे हो। वह तुम्हारा उपयोग नहीं है।

सिकन्दर भारत आया और भारत से लौटते वक्त अरबों की सम्पत्ति लूटकर ले गया। भारत की सीमा छोड़ने के पहले उसे याद आया कि उसके शिक्षा-गुरु अरस्तू ने उससे कहा था कि जब भारत से तुम वापिस आने लगो तो कम से कम एक संन्यासी को लेते आना। क्योंकि दुनिया में और सब कुछ है, हीरे हैं और जवाहरात हैं, लेकिन संन्यास की

अद्‌भुत कल्पना पूरब की बस अपनी है। और मैं एक संन्यासी को देखना चाहता हूं, समझना चाहता हूं। आखिर सारा पूरब अपनी सारी प्रतिभा संन्यासी की दिशा में क्यों अनुप्रणित करता है?

तो सिकन्दर ने खबर की आसपास, कि कोई संन्यासी यहां उपलब्ध होगा? किसी ने कहा, यूं तो बहुत संन्यासी हैं लेकिन अगर तुम सच में ही किसी संन्यासी को ले जाना चाहते हो तो इस गांव के बाहर, एक नदी के किनारे वर्षों से एक संन्यासी का डेरा है, उसे राजी कर लो। सिकन्दर ने कहा, राजी कर लूं? यह मेरी भाषा नहीं है। मेरी तलवार हर चीज को राजी कर लेती है। तो उस गांव के लोगों ने कहा, फिर तुम्हें संन्यासी का कोई पता नहीं है। यह तलवार सब कुछ कर सकती है लेकिन संन्यासी का कुछ भी नहीं कर सकती। सिकन्दर की समझ के बाहर थी यह बात। सिकन्दर गया और उसने घोषणा की संन्यासी से कि मैं महान सिकन्दर, विश्वविजेता, तुम्हें निमंत्रण देता हूं। तुम मेरे राज्य के अतिथि रहोगे। सारा सुख, सारा वैभव जो मेरा है, तुम्हारा है; लेकिन तुम्हें मेरे साथ यूनान चलना होगा।

वह संन्यासी नग्न खड़ा था सुबह की धूप में। उस संन्यासी ने कहा, पहले तो तुम यह भ्रम छोड़ दो कि तुम विश्वविजेता हो। आज हो, कल पानी के बुदबुदे की तरह मिट जाओगे। यह भ्रम छोड़ दो कि तुम महान हो। क्योंकि जिस आदमी को खुद यह भ्रम होता है कि मैं महान हूं, कम से कम वह तो महान नहीं होता। रही मेरे कहीं जाने की बात। संन्यास का मतलब ही है अपनी मर्जी से जीना, अपनी मौज, अपनी मस्ती। कभी आयेगी मौज, कभी आयेगी मस्ती, तो आऊंगा यूनान भी; लेकिन मुझे ले जाया नहीं जा सकता। यह तलवार म्यान के भीतर कर लो। यह तलवार उनको डरा सकती है जिनको अपने भीतर के अमृत का कोई पता नहीं है।

सिकन्दर ने कहा कि तुम मुझे जानते नहीं हो, मैं खूंखार आदमी हूं। मैं तुम्हारी गर्दन एक क्षण में, एक झटके में काट दूंगा। वह फकीर हंसा। उसने कहा, अगर तुम्हें इसमें मजा आता हो, सुख मिलता हो, तो यह मेरा सौभाग्य होगा। गर्दन कभी तो गिरेगी ही। चलो, एक आदमी को सुखी कर गयी। एक बात तुमसे लेकिन कह दूं, जब तुम मेरी गर्दन को जमीन पर गिरते देखोगे तो मैं भी अपनी गर्दन को जमीन पर गिरते देखूंगा। क्योंकि मैं गर्दन नहीं हूं, मैं शरीर नहीं हूं। तुम मुझे न देख पाओगे। लेकिन मैं तुम्हें देख पाऊंगा। फिर खींच लो तलवार। और यह पहला मौका है सिकन्दर के जीवन में एक ऐसे आदमी से मिलने का, जो निमंत्रण देता है कि खींच लो तलवार। फिर देर किस बात की

है? और सिकन्दर के हाथ रुक जाते हैं और सिकन्दर कहता है, मुझे माफ कर दें। मैं यह संन्यास की भाषा नहीं समझता।

उस संन्यासी ने कहा, अपने गुरु को सिर्फ यह घटना सुना देना। शायद इस घटना से उन्हें कुछ समझ में आ जाये।

तुम्हें पीड़ा होती है कि कोई तुम्हारा वस्तु की तरह उपयोग करे। वस्तुतः तुम्हारा कोई उपयोग करे, इससे ही पीड़ा होती है। क्योंकि उपयोग का मतलब है, तुम्हारा असम्मान। उपयोग का अर्थ है, तुम्हारे व्यक्तित्व को, तुम्हारी आत्मा को स्वीकृति नहीं दी जा रही। तुमसे वही काम लिया जा रहा है जैसे किसी मशीन से कोई काम लेता हो। लेकिन चौबीस घंटे यही हो रहा है। तुम किसी की पत्नी हो, तुम किसी के पति हो। तुमने अपनी पत्नी की आत्मा जानी है या उसका शरीर ही जाना है? तुमने अपने पति के भीतर झांका है, या सिर्फ बाहर जो दर्पण में देखाई देता है वही देखा है? तुम्हारे बच्चे हैं। तुम उनका भी तो उपयोग कर रहे हो। कोई अपने बच्चों को डाक्टर बनाना चाहता है, कोई इंजीनियर बनाना चाहता है, कोई वैज्ञानिक बनाना चाहता है। लेकिन भीतरी आकांक्षा क्या है? आकांक्षा है कि इन बच्चों का उपयोग हो। इन बच्चों को धन में कैसे रूपान्तरित किया जाये? ये बच्चे रुपये के सिक्कों में कैसे ढाले जायें, यही तो तुम्हारी कोशिश है।

हर आदमी हर दूसरे आदमी का उपयोग कर रहा है। और यह तब तक जारी रहता है जब तक तुम अपने को न पहचान लो। कसूर किसी और का नहीं है। तुम्हारे प्रश्न में झलक ऐसी है कि जैसे कसूर किसी और का है। तुम शिकार हो और शिकारी कोई और है। नहीं, तुमने खुद भी अभी अपने को नहीं जाना--उसको, जिसको तौला नहीं जा सकता, उसको जिसका कोई जन्म नहीं, उसको जिसकी कोई मृत्यु नहीं। तुम उसे पहचान लो तो फिर कोई हर्ज नहीं है। फिर तुम्हें दुख न होगा। फिर तुम्हें सिर्फ दया आयेगी उस आदमी पर, जो तुम्हारा उपयोग कर रहा है। तुम्हारी आंखों में आंसू आयेंगे करुणा के, कि इस बेचारे को कुछ भी पता नहीं।

कहानी है यूनान के बहुत बड़े विचारक डायोजनीज़ के संबंध में। डायोजनीज़ नग्न रहता था और एक सुन्दर व्यक्ति था। अति बलशाली व्यक्ति था। उन दिनों में सारी दुनिया में दासता की प्रथा थी। आदमी बेचे जाते थे, जैसे जानवर बेचे जाते थे। चार चोरों ने देखा इस आदमी को। उन्होंने बहुत आदमी देखे थे लेकिन यह मूर्ति की तरह सुदृढ़, यह गढ़ा हुआ आदमी—सोचने लगे कि अगर इसे हम पकड़ लें--और यह फकीर है निश्चित, नग्न बैठा है--तो बाजार में इतनी कीमत मिल सकती है, जितनी दस-पन्द्रह

आदमियों को भी बेचने से न मिले। मगर इसको पकड़ेगा कौन ? यह हम चार आदमियों के लिए काफी है। यह हम चारों को बेच देगा।

उनकी खुसफुस डायोजनीज़ ने सुनी। झाड़ियों के पीछे छुपे वे विचार कर रहे थे कि इसको कैसे फांसा जाये। डायोजनीज़ ने कहा, बाहर आओ। झाड़ियों के पीछे खुसफुस करने से कोई फायदा नहीं। मुझे बेचना है, मुझसे प्रार्थना करो। जंजीरों की कोई जरूरत नहीं है। मैं अपना मालिक हूं। और अगर चार आदमियों की जिन्दगी में खुशी आ सकती है मुझे बेचने से, मैं तुम्हारे साथ चलने को राजी हूं। वे चारों एक-दूसरे की तरफ देखने लगे कि यह आदमी कहीं पागल तो नहीं है ? डायोजनीज़ ने कहा कि मत घबराओ, मेरे पीछे-पीछे आओ। वे बाजार में पहुंचे जहां आदमी बेचे जा रहे थे। ऊंची तख्ती पर आदमी खड़ा किया जाता था और नीलामी बोली जाती थी। वे चारों आदमी डायोजनीज़ के सामने चोरों की तरह उसके आसपास छिपे हुए खड़े थे। उनकी इतनी हिम्मत भी न थी कि वे कह सकें नीलाम करने वाले से, कि हम एक गुलाम लाये हैं, इसको बेचना है। अन्ततः डायोजनीज़ खुद ही तख्ती पर चढ़ गया। और उसने तख्ती पर चिल्लाकर जो ऐलान किया वह सोचने योग्य है। उसने ऐलान किया कि यहां जितने भी गुलाम इकट्ठे हुए हैं--वहां गुलाम इकट्ठे नहीं हुए थे, वहां रईस थे, राजकुमार थे, रानियां थीं, राजा थे जो अच्छे गुलामों की तलाश में आये थे।

डायोजनीज़ ने कहा, यहां जितने भी गुलाम इकट्ठे हैं, मैं तुम सबको चुनौती देता हूं कि ऐसा मौका बार-बार न आयेगा। आज एक मालिक खुद अपने को नीलाम करता है। नीलामी सस्ती नहीं जानी चाहिए। गुलाम तो बहुत बिके हैं और बिकते रहेंगे। और गुलाम दूसरे बेचते हैं, मैं मालिक हूं। मैं खुद अपने को बेच रहा हूं। ये बेचारे चार-चार गुलाम मेरे पीछे खड़े हैं। इनको पैसे की जरूरत है। तो किसी की हो हिम्मत मुझे खरीदने की, तो खरीद ले। वहां एक सन्नाटा हो गया। वह आदमी इतना मजबूत था कि उसे खरीदना भी सोचने की बात थी, कि इसे खरीदना कि नहीं ! कोई झंझट खड़ी करे, घर पहुंचकर कोई उपद्रव खड़ा करे। रास्ते में गर्दन दबा दे। डायोजनीज़ ने कहा, मत डरो, जरा इन चार गुलामों की फिक्र करो। ये बेचारे मीलों मेरे पीछे चलकर आये हैं। इनकी इतनी हिम्मत भी नहीं है कि ये कह सकें कि मुझे बेचना है। इनकी बोलती खो गयी है। खरीद लो, बिल्कुल घबराओ मत। मैं किसी को कोई नुकसान नहीं पहुंचाऊंगा। मालिकों ने कभी किसी को कोई नुकसान नहीं पहुंचाया। जिस आदमी को अपने भीतर का पता चल जाता है उसे एक मालकियत मिल जाती है। फिर उसके हाथों में जंजीरें भी हों, पैरों में बेड़ियां भी हों, तो भी

तुम उसे गुलाम नहीं कह सकते। तुम उसे मार सकते हो लेकिन उसे गुलाम नहीं बना सकते।

तो जो लोग तुम्हारा वस्तुओं की तरह उपयोग करते हैं वे दयनीय हैं। वे खुद अपना भी वस्तुओं की तरह उपयोग करते हैं। यहां हर आदमी अपने को बेच रहा है, बड़े सस्ते में बेच रहा है। और जब वह खुद अपने को बेच रहा है तो तुमको कैसे छोड़ेगा ? वह तुमको भी बेचेगा। और खुद को बिकते देखकर दुख होता है। लेकिन इस दुख से कोई हल नहीं है। सिर्फ एक ही बात इस परेशानी से तुम्हें मुक्त कर सकती है और वह है, आत्मबोध। इस बात की अनुभुति कि आग मुझे जला नहीं सकती और तलवारें मुझे काट नहीं सकतीं। फिर क्या हर्ज है कि तुम किसी के थोड़े काम आ गये ?

और वह नासमझ है, कि उसने समझा कि उसने तुम्हारा उपयोग कर लिया। उसकी नासमझी उसके साथ, उसकी नासमझी उसका भाग्य, उसकी नासमझी उसकी नियति। लेकिन तुम्हारे लिए पीड़ित होने का कोई कारण नहीं है।

प्रश्न : प्यारे भगवान श्री, विपस्सना की साधना में कैथार्सिस कब होती है ? मैं विपस्सना का अभ्यास करता हूं। मेरा संगीत का कार्यक्षेत्र होश की दिशा में मेरे लिए किस प्रकार सहायक हो सकता है ?

विपस्सना सदियों पुरानी पद्धति है ध्यान की। इसकी खोज--किसने इसे खोजा, पता नहीं--अद्‌भुत प्रक्रिया है। स्वयं से परिचित होने का सरलतम उपाय है। विपस्सना शब्द का अर्थ है, चुपचाप बैठकर अपने आपका साक्षी हो जाना। 'पस्य' का अर्थ है, देखना। 'विपस्सना' का अर्थ है, बस चुपचाप भीतर बैठकर देखना। यह श्वास भीतर आयी, यह श्वास बाहर गयी, इसको भी देखना। यह हृदय धड़का, इसको भी देखना। चुपचाप भीतर बैठकर जो भी हो रहा है उसे देखना। और देखते-देखते ही सारी आवाजें विलीन हो जाती हैं और एक महाशून्य तुम्हें घेर लेता है।

बुद्ध ने विपस्सना की प्रक्रिया को सारे जगत में विस्तीर्ण किया। लेकिन एक अड़चन है। और वह अड़चन यह है कि बुद्ध को हुए ढाई हजार वर्ष हो गये। विपस्सना की पद्धति वही की वही है। लेकिन आदमी की नालायकी वही की वही नहीं है। आदमी नालायकी से और नालायकी की तरफ बढ़ता गया। विपस्सना किसी भी भोले-भाले आदमी के लिए सरल मामला है। लेकिन आधुनिक आदमी भोला-भाला नहीं है। आधुनिक

आदमी इतने शोरगुल से भरा है, इतनी बेईमानी से। औरों की तो बात छोड़ दो, अपने साथ भी ईमानदार नहीं है।

मैंने सुना है, एक चोर एकनाथ के साथ तीर्थयात्रा पर गया। एकनाथ तीर्थयात्रा पर जा रहे थे। उनके सारे शिष्यों का मण्डल तीर्थयात्रा पर निकला था। चोर जाहिर था। सारा गांव उसे जानता था। उस चोर ने एकनाथ को कहा कि मुझे भी साथ ले लो। मुझ गरीब को भी बचा लो। मैं भी तुम्हारे साथ सारे तीर्थ हो आऊं। एकनाथ ने कहा, मुझे कोई ऐतराज नहीं। एक शर्त है। कम से कम तीर्थयात्रा तीन से छः महीने तक चलेगी। इस बीच तुम चोरी नहीं करोगे। उस आदमी ने वायदा किया कि कसम खाता हूं आपकी, चोरी नहीं करूंगा। एकनाथ ने कहा, फिर कोई हर्ज नहीं है, तुम साथ हो लो लेकिन दूसरी ही रात से गड़बड़ शुरू हो गयी। और गड़बड़ बड़ी अजीब थी। किसी के हाथ की चूड़ियां किसी दूसरे के हाथ में पहुंच गयीं। किसी की अंगूठी किसी दूसरे के हाथ में चली गयी। किसी के बिस्तर का सामान किसी दूसरे के बिस्तर में चला गया। लोग सुबह उठकर बड़े हैरान, कि मामला क्या है? चीजें मिल जाती थीं। चोरी नहीं होती थी। मगर आधा दिन इसी खोज में निकल जाता था कि चश्मा कहां है? किसी के रुपये गायब। रुपये कहां हैं? जब तक पचास-साठ आदमियों की एक-एक चीज न खोजी जाये तब तक रुपये न मिलें, चश्मा न मिले।

एकनाथ ने अन्ततः दो-तीन दिन के बाद, एक रात जागकर बितायी। शक उन्हें हुआ कि मामला उसी चोर का है। और मामला उसी चोर का था। जैसे ही सब सो जाते, वह उठता। और इसका सामान उसके सामान में, उसका सामान किसी और के सामान में। एकनाथ ने उससे कहा, पागल तूने कसम खायी थी, चोरी न करेंगे। उसने कहा, मैंने कसम खायी थी चोरी न करेंगे तो चोरी तो नहीं कर रहा। और मैंने यह तो कभी कसम न खायी थी कि चीजें न बदलेंगे। और तुम्हारी तीर्थयात्रा तो तीन महीने में खत्म हो जायेगी। यह मेरी जिन्दगी भर की आदत है। और जब सब सो जाते हैं तब मेरा दिन होता है। और रात भर क्या करूं खाक? और किसी का कुछ बिगाड़ तो नहीं रहा हूं। किसी का एक धेला तो लिया नहीं।

आदत! चोरी नहीं करनी लेकिन फिर भी हेराफेरी करनी है। थोड़ा रस तो आ ही जाता है। थोड़ा मजा तो आ ही जाता है। दूसरे दिन सुबह बैठकर वही एक आदमी था, जो मजे से देखता था कि कहां क्या हो रहा है।

मैंने तो सुना है ऐसे चोरों की बाबत भी, जो अपने एक खीसे से चुराकर दूसरे खीसे में

चीजों को रख लेते हैं। दिल तो बहल जाता है। बात तो रह जाती है। इज्जत का सवाल है।

इन ढाई हजार वर्षों में मनुष्य के मन में इतने ज्यादा विकृत विचार, इतना दमन, इतने बादल उमड़-घुमड़ गये हैं कि अब विपस्सना सीधी-सीधी करना बहुत मुश्किल है। और तुम पूछते हो, विपस्सना में कैथार्सिस कब होती है? विपस्सना में कैथार्सिस का कोई स्थान ही नहीं है। क्योंकि जिस समय विपस्सना खोजी गयी थी, कैथार्सिस की कोई जरूरत ही न थी। अब अगर कैंसर ही न हो तो कैंसर के इलाज की क्या जरूरत है?

इसलिए मैं अपने संन्यासियों को विपस्सना में प्रवेश करने के पहले सक्रिय ध्यान का आग्रह करता हूं, ताकि सक्रिय ध्यान में सारा उपद्रव, कूड़ा-करकट बाहर फेंक दें। और एक बार फिर निखालिस छोटे बच्चे हो जायें। फिर विपस्सना शुरू करें। लेकिन अगर तुमने सीधे विपस्सना शुरू की, तो तुम एक खतरा करोगे। वह जो तुम्हारे भीतर इकट्ठा है, वह दबा ही रहेगा। ऊपर-ऊपर तुम शान्त दिखायी पड़ने लगोगे और भीतर-भीतर सारी अशान्ति इकट्ठी होती जायेगी। और वह अशान्ति एक दिन एक विस्फोट की भांति फूट सकती है। फूटेगी। एक सीमा है, जब तक तुम उसे दबाये रख सकते हो।

विपस्सना सीधी शुरू करने के मैं पक्ष में नहीं हूं। विपस्सना दूसरा चरण है। दो हजार वर्ष पहले पहला चरण था। अब विपस्सना दूसरा चरण है। अब पहला चरण सक्रिय ध्यान है। सक्रिय ध्यान तुम्हें विपस्सना के लिए तैयार करेगा। सक्रिय ध्यान काफी नहीं है, उससे तुम आत्मज्ञान को उपलब्ध नहीं हो जाओगे। लेकिन सक्रिय ध्यान तुम्हें धोकर--जैसे गंगा में स्नान कर आये हो, ऐसा स्वच्छ कर देगा। उन स्वच्छता के क्षणों में विपस्सना में प्रवेश करना उचित है; अन्यथा खतरा है।

लेकिन बड़ी मुश्किल यह है, हजारों वर्ष बीत जाते हैं, लोग अतीत को ऐसा जोर से पकड़ते हैं कि यह भूल ही जाते हैं कि वह अतीत किन्हीं और तरह लोगों के लिए निर्मित किया गया था, तुम्हारे लिए नहीं। तो विपस्सना के शिक्षक अभी भी विपस्सना सिखा रहे हैं। और उन्हें पता ही नहीं है कि इन पच्चीस सौ वर्षों में आदमी पर क्या गुजरी है! तूफान गुजर गये हैं, आंधियां गुजर गयी हैं। आदमी के भीतर इतनी टूट-फूट इकट्ठी हो गयी है, इतना कूड़ा-करकट इकट्ठा हो गया है कि पहले उसे साफ कर लेना जरूरी है।

तो मेरी सलाह है, सक्रिय ध्यान को पहला कदम बनाओ। और जब तुम अपने भीतर पाओ कि अब निकालने को कुछ भी नहीं है, तब विपस्सना शुरू करो। तो विपस्सना ही तुम्हें आत्मज्ञान की तरफ ले जायेगी।

दूसरा प्रश्न तुमने पूछा है कि तुम संगीतज्ञ हो, जागरूक रहकर संगीत को कैसे साधो।

या जागरूकता और संगीत को साथ-साथ कैसे विकसित करो। यह थोड़ा जटिल मामला है। क्योंकि जब तुम संगीत में खो जाओगे तो जागरूकता भूल जायेगी। जब तुम लीन हो जाओगे संगीत में तो कौन बचेगा जागरूक होने को? और जब तुम जागरूक होओगे तो संगीत टूट-फूट जायेगा। तो तुम दो विरोधी चीजों को जोड़ने की कोशिश में मुश्किल में पड़ जाओगे। बहुत ऐंचातानी हो जायेगी। कोई भी एक बात चुन लो, पर्याप्त है। दो-दो नावों पर सवार होना अच्छा नहीं है। दो घोड़ों पर सवार होना अच्छा नहीं है। लाख उपाय करो, खतरा होगा। संगीत पर्याप्त है, डूब जाओ पूरे। इतने डूब जाओ कि तुम्हें पता ही न रहे कि कोई संगीतज्ञ भी है, संगीत ही रह जाये। और परमात्मा के द्वार खुल जायेंगे। उसके अनेक द्वार हैं। सौभाग्य है कि उसका एक ही द्वार नहीं है, अन्यथा बड़ी भीड़ हो जाती। बड़ी मुश्किल हो जाती। क्यू लग जाते। सदियों तक क्यू लगे रहते। बुद्धों को सदियों तक खड़े रहना पड़ता दरवाजों पर। लेकिन उसके अनन्त द्वार हैं।

संगीत पर्याप्त है। अगर जागरूकता साधनी है तो फिर संगीत को उसकी अन्तिम गहराइयों तक नहीं पहुंचाया जा सकता। तुम संगीत को एक विषय बना सकते हो। जागरूक होने के लिए तुम संगीत के प्रति होश रख सकते हो। मगर वह होश संगीत को ऊंचाइयों पर नहीं ले जा सकेगा, न गहराइयों में ले जा सकेगा।

पश्चिम में एक बहुत बड़ा नर्तक हुआ निजिन्स्की। संभवतः मनुष्य के इतिहास में वैसा अद्भुत नर्तक दूसरा नहीं हुआ। क्योंकि निजिन्स्की के नर्तन में एक खूबी थी कि नृत्य करते-करते वह ऐसी ऊंची छलांग मारता था, जो कि जमीन के गुरुत्वाकर्षण के खिलाफ है। जो लोग ऊंची छलांग भरने का अभ्यास करते हैं ओलिम्पिक में प्रतियोगिता के लिए, वे भी वैसी छलांग नहीं भर सकते। और निजिन्स्की कोई छलांग का अभ्यासी नहीं था। लेकिन घड़ी आती थी उसके नृत्य में कि जैसे उसे पर लग जाते थे। और वह इतनी ऊंची छलांग भरता था कि वैज्ञानिक चकित थे। जमीन की कशिश के विपरीत इतनी ऊंची छलांग भरी ही नहीं जा सकती। और मामला यहीं तक नहीं था। मामला और भी मुश्किल हो जाता था। जब वह छलांग से नीचे गिरता था तो...।

जमीन बड़ी तेजी से खींचती है चीजों को अपनी तरफ। उनकी रफतार बहुत होती है। प्रति मिनट छह हजार मील की रफतार से चीजें खींची जाती हैं। इसलिए तुम रात में जब कभी देखते हो और कहते हो, तारा टूटा--कोई तारा नहीं टूटता। तारे बहुत बड़े हैं। अगर टूट जायें तो हम कभी के टूट गये होते। तारे नहीं टूटते। यह तो पृथ्वी जब सूरज से अलग हुई और चांद जब पृथ्वी से अलग हुआ, तो पृथ्वी गीली मिट्टी का लौंदा थी। चांद एक

बड़ा टुकड़ा है। अलग उसका अस्तित्व हो गया है। लेकिन साथ में छोटे-छोटे मिट्टी के टुकड़े चारों तरफ छितर गये। वे आकाश में भटक रहे हैं। वे जब भी पृथ्वी के घेरे के भीतर आ जाते हैं--घेरा दो सौ मील है--जब भी दो सौ मील के भीतर उन मिट्टी के टुकड़ों में से कोई टुकड़ा आ जाता है, तो पृथ्वी उसे इतने जोर से खींचती है--प्रति मिनट छह हजार मील-- कि हवा और उस मिट्टी के घर्षण से आग पैदा हो जाती है। जैसे चकमक से आग पैदा हो जाये। इसलिए वह तुम्हें चमकता हुआ मालूम पड़ता है। वह कोई तारा नहीं है। मिट्टी है, जो जल उठी है।

निजिन्स्की जब अपनी छलांग से उतरता था तो ऐसे उतरता था, जैसे कोई कबूतर का पंख आहिस्ता-आहिस्ता, डोलता-डोलता जमीन की तरफ उतर रहा हो। कोई जल्दी नहीं। यह और भी आश्चर्य की बात थी। उसका उतरना और भी हैरानी की बात थी। वह जमीन के कशिश के नियम को बिल्कुल ही तोड़ दिया। निजिन्स्की से लोग पूछते कि यह मामला क्या है? तुम कैसे करते हो? निजिन्स्की ने कहा कि मुझसे मत पूछो कि मैं कैसे करता हूं। क्योंकि जब भी मैं करने की कोशिश करता हूं तब यह नहीं होता। मैं घर भी करने की कोशिश करता हूं, यह नहीं होता। मैंने मंच पर भी करने की कोशिश की है और यह नहीं हुआ। जब मैं थक जाता हूं कोशिश करते-करते, और भूल जाता हूं इस बकवास को, तब मैं अचानक एक दिन पाता हूं कि यह हो गया। लेकिन यह होता तब है जब मैं नहीं होता। जब मेरा प्रयास नहीं होता, मेरा अभ्यास नहीं होता, मेरी चेष्टा नहीं होती, मेरी आकांक्षा नहीं होती, मेरी वासना नहीं हौती। यह मेरे लिए उतना ही बड़ा रहस्य है जितना यह तुम्हारे लिए बड़ा रहस्य है। मैं मिट जाता हूं तब यह घटना घटती है।

बड़े चित्रकारों का भी यही अनुभव है। जब वे मिट जाते हैं तभी उनके हाथ ईश्वर के हाथ हो जाते हैं। बड़े संगीतज्ञों का भी यही अनुभव है। जब वे नहीं रहते तब कोई और, कोई अनन्त शक्ति उनकी वीणा पर संगीत को सजाने लगती है।

तो तुम अगर संगीतज्ञ हो और संगीत से प्रेम है, जागरूकता की फिक्र मत करो। तुम संगीत में डूबने की फिक्र करो। संगीत ही रह जाये, तुम न बचो। तुम वहीं पहुंच जाओगे जहां वे लोग पहुंचे हैं, जो परम जागरूकता की साधना किये हैं। वहां भी यही करना होता है। परम जागरूकता में भी स्वयं को भूलना पड़ता है। शुरुआत करते समय तो व्यक्ति होता है। जागरण की चेष्टा का अ, ब, स, तो व्यक्ति शुरू करता है लेकिन अन्तिम अक्षर व्यक्ति नहीं लिखता। वह जो निर्व्यक्ति हमारे भीतर है, वह जो निराकार हमारे भीतर है, वे उसके हाथ से लिखे जाते हैं। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि तुम किस द्वार से शून्य को

उपलब्ध होते हो। सभी द्वार उसके हैं। तुम्हें जो द्वार प्रीतिकर हो। क्योंकि तुम्हारा प्रेम ही तुम्हें गहराइयों तक ले जा सकेगा--उन गहराइयों तक, जहां कि तुम मिटने को राजी हो जाओ। प्रेम के अतिरिक्त कोई दूसरी चीज तुम्हें मिटने को राजी नहीं कर सकती।

तो भला है, सौभाग्य है कि तुम संगीतज्ञ हो। तो संगीत में डूबो। संगीत को ही रह जाने दो। पहुंच जाओगे। पता भी नहीं पड़ेगा कब पहुंच गये। पहुंच जाओगे तभी जानोगे कि अरे, मैं कहां हूं। परमात्मा है। मैं कहां हूं? अस्तित्व है। मगर दो घोड़ों पर सवार हो जाते हैं। कही भी पहुंचते नहीं। सिर्फ हाथ-पैर तुड़वा कर किसी अस्पताल में भर्ती होते हैं। एक ही घोड़ा काफी है। एक को पाने के लिए बस एक काफी है। दुई खोनी है। और तुम दुई पर सवार हो रहे हो।

प्रश्न : प्यारे भगवान, दिन में अधिक समय ध्यान में डूबी, खोयी रहती हूं। शरीर क्षीण हुआ है। कुछ समय पहले दलाई लामा के डाक्टर ने मेरा हाथ पकड़ कर कहा कि मुझे अधिक पार्थिव होने की जरूरत है। कृपया बतायें कि मुझे क्या करना है?

इसको ही मैं कहता हूं, दो घोड़ों पर सवार होना।

यह गुणा का सवाल है। कोई दलाई लामा का डाक्टर गुणा के घर आया हो, यह तो संभव नहीं है। यह गुणा ही दलाई लामा के द्वार पर पहुंची होगी घोड़े की तलाश में। अभी दलाई लामा भी कहीं नहीं पहुंचे, उनका डाक्टर कहां पहुंचेगा? और जब दलाई लामा के डाक्टर ने कहा था, थोड़ी पार्थिव हो जाओ, एक झापड़ खींचकर देना था। उससे तुम्हारे पार्थिव होने का सबूत मिल जाता। और दलाई लामा का डाक्टर आध्यात्मिक है या नहीं, यह भी सबूत मिल जाता।

कोई पार्थिव होने की जरूरत नहीं है। पार्थिव तो तुम जन्मों-जन्मों से हो। पार्थिव के अतिरिक्त तुम हो ही क्या? और ज्यादा आत्मिक होने की जरूरत है। मगर यही मुश्किल है। लोग भटकते फिरते हैं।

दलाई लामा के डाक्टर के पास जाने की गुणा, तुझे जरूरत क्या थी? लेकिन नहीं, लोग सोचते हैं शायद दलाई लामा के पास कुछ मिल जायेगा, कि शायद अरविन्द आश्रम में कुछ मिल जायेगा, कि शायद किसी और स्वामी के पास कुछ मिल जायेगा। यह भिखारीपन छोड़ो। जो मिलना है, वह तुम्हारे भीतर मिलना है। और दलाई लामा के डाक्टर ने खुद तुम्हारा हाथ पकड़कर कहा, इससे तुम्हारा चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ होगा कि

अहा! धन्य हूं मैं। खुद दलाई लामा मेरा हाथ, उनका डाक्टर मेरा हाथ पकड़कर कह रहा है! जो सलाह बिना मांगे देता है वह नालायक है।

और क्या पार्थिव होना है? शरीर है तुम्हारे पास। खोपड़ी है हजार कीड़ों से भरी हुई। और पार्थिव होने की क्या जरूरत है? और पार्थिव होना हो तो कठिन क्या है? और थोड़ा भोजन ज्यादा करने लगो।

पार्थिव नहीं होना है। वह जो तुम्हारे भीतर छिपा है अपार्थिव, उसके साथ अपने को जोड़ना है और जानना है कि मैं शरीर नहीं हूं, मैं पार्थिव नहीं हूं। और एक बार और दुबारा जाना, और उस डाक्टर का हाथ पकड़कर कहना कि तुम्हें थोड़ा आध्यात्मिक होने की जरूरत है।

पार्थिव तो हम हैं ही। थोड़ी-सी किरण अपार्थिव की हमारे भीतर है, उस किरण को और प्रज्वलित करना है। ध्यान उसी किरण को थोड़ी और उकसाहट देता है जैसे कोई आग को उकसाता हो, राख को झाड़ता हो। अंगारे जो राख में दब गये हैं, उभर आते हों। बस वैसे ही।

मगर मैं उन लोगों के बहुत पक्ष में नहीं हूं जो भिखारियों की तरह यहां-वहां, हर कहीं पूछते फिरते हैं, क्या करें? करना कुछ भी नहीं है। एक फैशन है। इस शंकराचार्य के पास जाओ, दलाई लामा के पास जाओ, आचार्य तुलसी के पास जाओ। और इस मुल्क में इतनी दुकानें हैं जिनका कोई हिसाब नहीं। जन्मों-जन्मों तक ये दुकानें तुम्हें भटकाती रही हैं, और जन्मों-जन्मों तक भटकते रहो। और इस सारी भटकन में एक बात भूले बैठे हो कि जिसकी तुम खोज कर रहे हो वह तुम्हारे भीतर है।

दलाई लामा जब तिब्बत से भारत भागे तो जो सबसे बड़ी दुखद घटना घटी वह यह थी, कि ल्हासा के किले में जितना सोना था वह तो सब दलाई लामा साथ ले आये, लेकिन जितने पुराने शास्त्र थे वे सब वहीं छोड़ आये। या यूं कहो कि गोबर ले आये और सोना छोड़ आये। गोबर की कीमत है। और तिब्बत के पास कीमती शास्त्र थे। लेकिन उन शास्त्रों को लाने की कोई फिक्र नहीं। उनमें ऐसे शास्त्र थे जिनके मूल संस्कृत जला डाले गये हैं। क्योंकि हिन्दुओं ने बौद्धों को नष्ट करने के लिए उन शास्त्रों को जला दिया। अब उनको पाने का एक ही उपाय है कि उन्हें तिब्बतीय से फिर वापिस भारतीय भाषाओं में अनुवादित किया जाये। उन शास्त्रों में जीवन की बहुमूल्य कुंजियां छिपी हैं। लेकिन सोना ज्यादा कीमती है!

तो करोड़ों रुपयों का सोना... उसे तो... पूरा ल्हासा का किला खाली कर लिया और

उसको लेकर भागे। इस आदमी में अगर जरा भी अध्यात्म होता तो यह सोना तो वहीं छोड़ देता, उस खालिस पारस को लेकर अपने साथ आता जो कभी भारत से तिब्बत गया था और फिर भारत से विलीन हो गया। लेकिन पारस पत्थर को पहचानना मुश्किल है। सोना तो किसी भी आंख में दिखाई पड़ जाता है।

तो न तो दलाई लामा के पास कोई अध्यात्म है; रही उनके डाक्टर की बात, सो उस बेचारे के पास क्या हो सकता है? हां, उसने एक भ्रान्त धारणा जरूर गुणा के मन में भर दी कि और पार्थिव हो जाओ। बम्बई में रहकर अब और पार्थिव कैसे होओगे? अब तो नर्क ही जाना पड़ेगा। करो कोशिश। जाओ चौपाटी पर और छिड़को परफ्यूम, खाओ इडली-डोसा, बनो पार्थिव। तरू माता से दोस्ती कर लो।
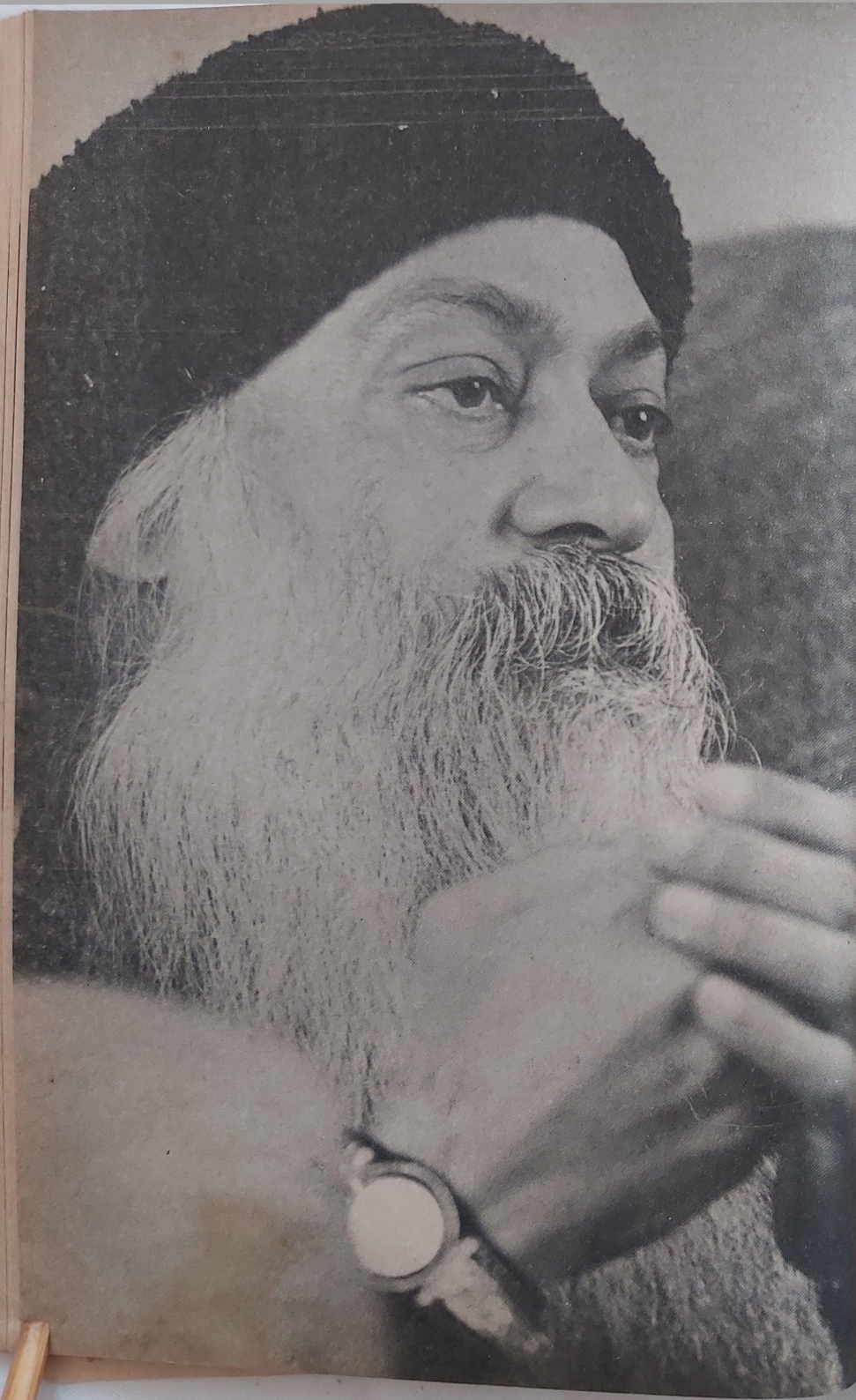
परम ऐश्वर्य : साक्षीभाव

छठवां प्रवचन : ४ अगस्त, १९८६, ७.०० संध्या, सुमिला, जुहू, बम्बई

पहला प्रश्न : भगवान, अध्ययन, चिंतन और श्रवण से बुद्धिगत समझ तो मिल जाती है, लेकिन मेरा जीवन तो अचेतन तलघरों से उठने वाले आवेगों और धक्कों से पीड़ित और संचालित होता रहता है। मैं असहाय हूं, अचेतन तलघरों तक मेरी कोई पहुंच नहीं। कोई विधि, कोई जीवन-शैली, सूत्र और दिशा देने कि कृपा करें।

अध्ययन, चिंतन और मनन से जो मिलता है, वह बुद्धि की समझ भी नहीं है, सिर्फ समझ की भ्रांति है। यूं ही जैसे किसी अंधे को प्रकाश के संबंध में हम समझायें--वह सुने भी। और अंधों की पढ़ने की प्रणाली भी है... अध्ययन भी करे। और जो सुना है और जो पढ़ा है, उस पर भीतर चिंतन भी करे, मनन भी करे, तो भी क्या तुम सोचते हो, उसे प्रकाश की कोई समझ मिल जायेगी ? हां, एक भ्रांति मिल सकती है कि मैं प्रकाश को समझता हूं। और वह भ्रांति अंधेपन से भी ज्यादा खतरनाक है। क्योंकि अंधा आदमी यह समझे कि मैं नहीं समझता तो शायद उस औषधि की तलाश करे, जिससे आंखें मिल जायें। लेकिन अंधा अगर समझ ले कि मैं समझता हूं, तब तो वह द्वार भी बंद हो गया।

तुम्हारे प्रश्न के दो हिस्से हैं।

तुम अध्ययन, श्रवण और मनन को बुद्धि समझ रहे हो। बुद्धि ने न कभी कुछ समझा है और न कभी कुछ समझ सकेगी। लेकिन तुम्हारा सौभाग्य है कि तुम्हें यह स्मरण है कि

यह समझ कुछ काम नहीं आ रही। तुम्हारे भीतर घना अंधकार है, अचेतन वासनाएं हैं और तुम्हें उनका भी बोध है। उनकी उपस्थिति, उनका उपद्रव तुम बुद्धि के शोरगुल में भूल नहीं गये हो। तो एक बात तो तुमने गलत कही कि बौद्धिक समझ मिलती है। लेकिन दूसरी बात कीमती है। और तुम धन्यभागी हो कि उसे समझ मानकर भी तुम समझदार नहीं बन गये हो। उस झूठी समझदारी को तुमने अपना पांडित्य नहीं समझ लिया। क्योंकि बहुत अभागे हैं, जो उसी पांडित्य में अपने जीवन को गंवा देते हैं।

यह सच है कि तुम बुद्धि से बहुत ज्यादा हो, बुद्धि से बहुत पार हो। बुद्धि का उपयोग है वस्तुओं को जानने के लिए, जो कि परायी हैं; औरों को जानने के लिए, जो कि तुम नहीं हो। इसलिए बुद्धि तुम्हारी कोई दुश्मन नहीं है। बुद्धि से सारे विज्ञान का जन्म हुआ है। लेकिन बुद्धि को तुम अपना दुश्मन बना सकते हो, अगर तुम यह सोचो कि तुम बुद्धि से अपने को भी जान लोगे।

यूं समझो कि कोई आदमी आंखों से संगीत को सुनने की कोशिश करे। या कि कोई आदमी कानों से प्रकाश को देखने की कोशिश करे। इसमें न तो आंख का कोई कसूर है और न कान का कोई कसूर है। आंख प्रकाश देखने को बनी है, संगीत सुनने को नहीं। कान संगीत सुनने को बने हैं, प्रकाश देखने को नहीं। बुद्धि का उपयोग है वस्तु को जानना, जो तुमसे भिन्न है, उसे जानना। लेकिन बुद्धि का यह उपयोग नहीं है कि वह उसे जान ले, जो जानने वाला है। जो तुम्हारे भीतर जानने वाला बैठा है, वह कोई वस्तु नहीं है। और इसलिए विज्ञान की बड़ी मुसीबत है। विज्ञान इतना कुछ जानता है... इतने-इतने तारों के संबंध में, इतना कुछ जानता है--अणुओं-परमाणुओं के संबंध में, लेकिन चूक जाता है बस वैज्ञानिक अपने को जानने से। सब जान लेता है और भूल जाता है एक उस को, जो सबको जान रहा है।

और यह साधारणतया स्वाभाविक मालूम पड़ता है कि जिससे हमने सबको जाना है, उससे हम जानने वाले को भी जान लेंगे। तुम अपनी आंखों से सारी दुनिया को देख सकते हो, लेकिन खुद अपनी आंखों को नहीं। यह और बात है कि तुम दर्पण के सामने खड़े हो जाओ, लेकिन तुम जो देखोगे, वह तुम्हारी आंखें नहीं हैं, आंखों की छाया है, आंखों का प्रतिबिम्ब है। कैसी मजबूरी है आंख सब देख लेती है और अपने आप को देखने में असमर्थ है! ठीक वैसी ही स्थिति है।

तुमने पूछा है: मैं कैसे अपने अचेतन, अपने अंधेरे को प्रकाश से भर दूं?

एक बहुत छोटा-सा काम करना पड़ेगा, बहुत छोटा-सा काम।

चौबीस घंटे तुम दूसरे को देखने में लगे हो। दिन में भी और रात में भी। कम से कम कुछ समय दूसरों को भूलने में लगो। जिस दिन तुम दूसरे को बिलकुल भूल जाओगे, बुद्धि की उपयोगिता नष्ट हो जायेगी।

इसे ज्ञानियों ने ध्यान कहा है। ध्यान का अर्थ है, एक ऐसी अवस्था, जब जानने को कुछ भी नहीं बचा, सिर्फ जानने वाला ही बचा। उससे छुटकारे का कोई उपाय नहीं है। लाख भागो पहाड़ों पर और रेगिस्तानों में, चांद-तारों पर, लेकिन तुम्हारा जानने वाला तुम्हारे साथ होगा। चूंकि वह तुम हो, वह तुम्हारी अंतरात्मा है, उसे छोड़कर भागा नहीं जा सकता। वह कोई छाया नहीं है। वह तुम्हारा अस्तित्व है।

रोज घड़ी भर, कभी भी सुबह या सांझ या दोपहर इस अनूठे आयाम को देना शुरू कर दो। बस आंख बंद करके बैठ जाओ। लेकिन तुम्हारी आदतें खराब हैं। और तुम्हारी खराब आदतों का उपयोग करने वाले पेशेवर लोग हैं। वे कहेंगे आंख बंद कर लो और देखो कि भगवान कृष्ण कैसी मुरली बजा रहे हैं। देखो कि जीसस कैसे सूली पर लटके हुए हैं। आंख बंद कर लो और देखो यह राम और सीता की जोड़ी। लेकिन आंख बंद करके भी दूसरे में ही उलझे रहे। आंख तो बंद हो गयी, लेकिन दूसरे से छुटकारा न हुआ।

गौतम बुद्ध का एक अनूठा वचन है कि ध्यान के रास्ते पर अगर मैं तुम्हें मिल जाऊं तो तलवार उठाकर मेरी गर्दन को काट देना। अगर तुम मेरे शिष्य हो और तुमने मेरी बात समझी है तो संकोच मत करना क्षण भर को भी। क्योंकि ध्यान के मार्ग पर अगर गुरु भी खड़ा हो जाये तो वह भी दूसरा है।

शायद यह लड़ाई, आखिरी लड़ाई है। पत्नी को छोड़ देना कोई बहुत कठिन बात नहीं है। और जो लोग पत्नी को छोड़कर जंगलों में चले गये हैं, संन्यास ले लिया है, साधु हो गये हैं, महात्मा हो गये हैं, शायद तुम सोचते हो बहुत कठिन काम किया है उन्होंने। तुम बड़ी गलती में हो। कठिन काम तुम कर रहे हो कि पत्नी के साथ अब भी बने हुए हो। वे जो भाग गये हैं, भगोड़े हैं। लेकिन ऐसे भगोड़ेपन से, ऐसे पलायन से कोई हल न होगा।

धन को छोड़कर भाग जाओ तो भी कुछ फर्क न पड़ेगा। धन की आकांक्षा पीछा करेगी। धन में कोई पाप नहीं है, धन की आकांक्षा में पाप है। आकांक्षा को कहां छोड़ोगे? अगर धन में कोई पाप होता तो चोरों को इनाम मिलने चाहिए थे, सजाएं नहीं। बेचारे कितनी मेहनत उठा कर लोगों को पापों से मुक्त कर रहे हैं। अगर पत्नियों को छोड़कर भाग जाना पुण्य था, तो जो तुम्हारी पत्नी को ले भागा हो, उसका स्वर्ग निश्चित है।

मैंने सुना है एक आदमी भागा हुआ पोस्ट ऑफिस पहुंचा। पसीने-पसीने है।

पोस्ट-मास्टर ने उसे बिठाया और पूछा कि क्या तकलीफ है? उसने कहा, मेरी रिपोर्ट लिखो, मेरी पत्नी किसी के साथ भाग गई है। पोस्ट-मास्टर ने कहा, मेरी पूरी सहानुभूति है तुमसे और मैं समझता हूं कि हड़बड़ाहट में तुम यह भूल ही गये हो कि यह पुलिस-स्टेशन नहीं है। यह पोस्ट-ऑफिस है। पुलिस-स्टेशन सामने है।

वह आदमी बोला, वह मुझे भी मालूम है। तुम रिपोर्ट लिखो जी। पोस्ट-मास्टर बोला, तुम अजीब आदमी हो। यह काम पोस्ट-ऑफिस का नहीं है। यह रिपोर्ट तुम्हें पुलिस-स्टेशन पर लिखानी होगी। उसने कहा, पहले एक दफा लिखा चुका हूं। लेकिन हरामखोर दूसरे दिन ही उसे खोजकर वापिस ले आये। अब यह भूल दुबारा मुझसे होने वाली नहीं है।

पोस्ट-मास्टर हैरान हुआ, उसने कहा, यह तो बताओ पत्नी भागी कब?

उसने कहा, कोई सात-एक दिन हो गये होंगे।

सात दिन बाद तुम रिपोर्ट लिखाने आये हो?

उसने कहा, मौका देना चाहता हूं कि जितनी दूर निकल जाये।

धन्यभागी है वह पुरुष। उसका स्वर्ग निश्चित है। और हमें महात्मा बना गया बिना किसी दिक्कत के।

न तो धन को छोड़ने से, न पत्नी को छोड़ने से, न पति को छोड़ने से, न बाजार छोड़ने से, क्योंकि... तुम मनोविज्ञान के एक छोटे-से सूत्र को समझ लो। तुम जिसे छोड़कर भागोगे, आंख बंद करोगे, उसे सामने खड़ा हुआ पाओगे। चूंकि भागता कमजोर है, भागता वही है, जो डर से आक्रांत है, भयाक्रांत है। लेकिन दूसरे से इस तरह मुक्ति न होगी।

और फिर तुम अपनी पत्नी भी छोड़कर भाग गये तो क्या फर्क पड़ता है? तुम्हारे भीतर स्त्री की वासना तो मौजूद है। पत्नी नहीं थी, तब भी थी। उसी के कारण तो तुमने पत्नी को खोज लिया था। वह वासना फिर तुम्हें पत्नी को खोजने के लिए मजबूर कर देगी। इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता कि शक्लें कौन-सी हैं। शक्लें बदल सकती हैं--कोई और स्त्री, कोई और पुरुष।

तुम महल छोड़ दे सकते हो और झोपड़ों में रह सकते हो। लेकिन असली सवाल यह न था। वह महल मेरा था, अब यह झोपड़ा मेरा है। तुम उस महल के लिए अपनी जान दे देते, अब तुम इस झोपड़े के लिए अपनी जान दे दोगे। असली सवाल है मेरे का, उसमें कोई अन्तर नहीं पड़ रहा है।

तो जब मैं कहता हूं घड़ी-आधा घड़ी को आंख बंद करके बैठ जाओ तो तुमसे मैं यह कह रहा हूं कि घड़ी-आध घड़ी को, दूसरों को भूल जाओ। चौबीस घण्टे पड़े हैं। तेईस घण्टे सारे संसार को दे दो, बाजार को दे दो, दुकान को दे दो, मकान को दे दो--जिसको देना हो, उसको दे दो। लेकिन क्या तुम इतने भी अधिकारी नहीं हो कि एक घण्टा अपने लिए बचा लो? शायद चौबीस घण्टा बचाना बहुत मुश्किल होगा। एक घण्टा बचाना आसान हो सकता है। और फिर मैं तुमसे यह भी नहीं कहता कि इस घण्टे को बचाने के लिए तुम हिमालय की किसी गुफा में बैठो। तुम्हारा घर पर्याप्त है, और सबसे ज्यादा आसान जगह है। क्योंकि वहां जो भी है, उससे तुम परिचित हो। और एक घण्टे के लिए उस सबको भूल जाना कठिन नहीं है।

आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों, जल्दी ही वह घड़ी आ जाती है कि तुम चुपचाप बैठे ही रहते हो। मूर्तियां आयेंगी, मत रस लेना उनमें। न पक्ष में न विपक्ष में। आने देना और जाने देना। रास्ता है, मन की राह है, चलती है। तुम राह के किनारे बैठे देखते रहना। और तुम चकित होओगे, इस जीवन के सबसे बड़े रहस्य से चकित होओगे कि अगर तुम साक्षीभाव से--सिर्फ साक्षीभाव से--जैसे तुम्हें कुछ लेना-देना नहीं--कौन जा रहा है, कौन आ रहा है। तुम गुमसुम चुपचाप सड़क के किनारे बैठे ही रहना। जल्दी ही वह घड़ी आ जायेगी कि यह रास्ते की भीड़ कम होने लगेगी, क्योंकि इस भीड़ के रास्ते पर होने का कारण है। तुमने इसे निमंत्रण दिया है। तुमने अब तक इसका स्वागत किया है। यह बिन बुलायी नहीं है। और जब यह देखेगी, कि तुम उपेक्षा से भर गये हो, कि तुम लौटकर भी नहीं देखते कि कौन आया, कौन गया, अच्छा था कि बुरा, सुंदर था कि असुंदर, अपना था कि पराया--यह भीड़ धीरे-धीरे विदा होने लगेगी।

ध्यान की प्रक्रिया बड़ी सरल है। थोड़ी-सी धैर्य की क्षमता चाहिए। और खोने को क्या है--अगर कुछ न भी मिला तो घण्टे भर आराम ही हो लेगा। लेकिन मैं जानता हूं अपने अनुभव से और उन हजारों लोगों के अनुभव से, जिनको मैंने इस प्रक्रिया से गुजारा है। एक दिन वह घड़ी आ जाती है, वह महाघड़ी आ जाती है कि मन का रास्ता खाली हो जाता है, धूल भी नहीं उड़ती, जानने को कुछ भी शेष नहीं रह जाता। और जब जानने को कुछ भी शेष नहीं रह जाता, तब सिर्फ जानने वाला शेष रह जाता है। और उस जानने वाले को अब कोई उपाय नहीं है किसी और को जानने का, सिवाय अपने को जानने के। जानना उसका स्वभाव है। अगर तुम कुछ खिलौना उसे हाथ में दे देते हो, कोई झुनझुना हाथ में दे देते हो, वह उसी को जानता रहता है। अब आज कुछ भी नहीं है। आज वह

अपने को ही जानता है। और एक बार भी किसी ने अपना स्वाद ले लिया तो उसने अमृत का स्वाद ले लिया। फिर न कोई अंधेरा है, फिर न कोई अचेतना है।

और वह एक घड़ी धीरे-धीरे तुम्हारी चौबीस घड़ियों पर फैल जायेगी। रहोगे फिर भी तुम बाजार में, रहोगे फिर भी तुम घर में। वही होगी पत्नी, वही होंगे बच्चे, लेकिन तुम वही नहीं होओगे। तुम्हारे जीवन में एक क्रांति घटित हो जायेगी। तुम्हारे देखने के सारे परिप्रेक्ष्य, तुम्हारी आंखें बदल जायेंगी। एक शांति और ऐसी शांति, कोई जिसकी गहराई कभी नाप नहीं सका। और एक प्रकाश और एक ऐसा प्रकाश, जिसमें न तो कोई तेल है, न कोई बाती है--बिन बाती बिन तेल।

इसलिए उसके चुकने का कोई सवाल नहीं है। इस अनुभूति के बिना सारा जीवन व्यर्थ है। और इस अनुभूति को पा लेना उस परम ऐश्वर्य को पा लेना है, जो कभी चुकता नहीं है। फिर तुम दोनों हाथ उलीच सकते हो, लेकिन उसे खाली नहीं कर सकते। इस ऐश्वर्य की स्थिति को ही हमने ईश्वर कहा है। ईश्वर ऐश्वर्य शब्द से ही बना है, इसलिए हमारे पास ईश्वर के लिए जो शब्द है, वह दुनिया की किसी भाषा में नहीं है।

तुम्हें याद रहे, इसलिए दोहरा दूं पहली बात। जिसे तुम समझदारी समझते हो बुद्धि की, वह बुद्धि की भी समझदारी नहीं है। दूसरी बात, तुम जिसे बहुत कठिन समझ रहे हो, वह बहुत सरल है, बहुत सहज है। सिर्फ तुमने कभी प्रयास ही नहीं किया।

तुम्हारी सारी शिक्षा, दीक्षा, तुम्हारा समाज, तुम्हारे संस्कार तुम्हें दौड़ना सिखाते हैं दूसरे के पीछे। महत्वाकांक्षा सिखाते हैं--धन के लिए, पद के लिए, प्रतिष्ठा के लिए, यश के लिए। दुर्भाग्य है हमारा कि अब तक हम एक ऐसा समाज भी पैदा न कर सके, जो तुम्हें सिखाता हो राज की वे बातें कि कैसे तुम अपने को पहचान लोगे। और उससे बड़ी कोई प्रतिष्ठा नहीं है। और उससे बड़ी कोई अभीप्सा नहीं है।

यह एक बहुत अनूठी दुनिया है। यहां बादशाहत से भरे हुए लोग भिखमंगे बने हुए घूम रहे हैं। जिन्हें सम्राट होना था, वे हाथ में भिखारी के पात्र लिए हुए घूम रहे हैं। थोड़ा सा प्रयास... लेकिन तुम्हारे समाज और तुम्हारे संस्कार तुम्हें डराते हैं। वे तुमसे कहते हैं, स्वयं को जानना, यह जन्मों में होता है, यह कभी-कभी होता है, यह किसी अवतारी पुरुष के जीवन में होता है, यह किसी तीर्थंकर के जीवन में होता है। यह कोई मसीहा, कोई पैगम्बर, कोई ईश्वर का पुत्र... तुम तो एक अदना आदमी हो। तुम इस झंझट में मत पड़ जाना, तुम इस मुश्किल को हाथ में मत ले लेना। यह तुम्हारे बस की बात नहीं है।

मैं तुमसे कहता हूं कि यह तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है, और इसके लिए तीर्थंकर होना जरूरी नहीं है। हां, यह घटना घट जाये तो तुम मसीहा हो जाओगे। मसीहा होना पहली जरुरत नहीं है, अन्तिम परिणाम है।

बस तुमसे एक घंटा मांगता हूं। और चौबीस घंटे में तुम एक घंटा न दे सको, इतने दीन तो नहीं। इतना दीन तो कोई भी नहीं। और मैं नहीं कहता कि मंदिर में जाओ और मैं नहीं कहता कि मस्जिद कि फिक्र करो। क्योंकि मेरी दृष्टि यह है कि मंदिर और मस्जिद और गिरजे और गुरुद्वारे घातक सिद्ध हुए हैं। इन्होंने यह ख्याल पैदा किया कि भगवान तुम्हारे घर में नहीं है। मैं तुमसे कहता हूं, तुम जहां हो, वहां भगवान है। इसलिए तुम जहां बैठ गये, वहीं तीर्थ हो गया। बस जरा मौन बैठ जाओ, शांत बैठ जाओ। थोड़ी देर-सबेर लगे तो घबराना मत।

और लोग इतने अधैर्य से भरे हैं कि एक साधारण-सी शिक्षा, जो उन्हें ज्यादा से ज्यादा किसी आफिस में क्लर्क बनाकर छोड़ेगी, उसके लिए जिंदगी का एक-तिहाई हिस्सा खर्च करने को राजी हैं, और पच्चीस वर्ष युनिवर्सिटी, स्कूल, कालेजों के चक्कर काटने के बाद फिर दफ्तरों के चक्कर काटेंगे; और तो भी नहीं सोचते कि मैं तुमसे केवल एक ही घंटा मांग रहा हूं। और उस घंटे भर की अनुभूति तुम्हें वहां पहुंचा देगी, उस अमृत अनुभव में, उस शाश्वत में, जिसके पाने के लिए यह जगत एक पाठशाला है।

प्रश्नः प्यारे भगवान, आपने ईश्वर तक पहुंचाने के दो मार्ग-- प्रेम और ध्यान बताये हैं। मेरी स्थिति ऐसी है कि प्रेम-भाव मेरे हृदय में उमड़ता नहीं है। ऐसा नहीं कि मैं किसी को प्रेम नहीं करना चाहती। वह मेरे व्यक्तित्व का प्रकार नहीं। चुप रहना और शांत बैठना मुझे अच्छा लगता है। इसलिए मैंने ध्यान का मार्ग चुनकर साक्षी की साधना शुरू की है। अब कठिनाई यह है कि जैसे ही मैं सजग होकर देख रही हूं कि विचारों का तांता शुरू हो जाता है। और फिर-फिर मेरा उनको देखना और बार-बार यही सब। भगवान, मेरी स्थिति में प्रगति दिखाई नहीं देती। क्या कहीं कोई भूल हो रही है, अथवा मेरा ध्यान के मार्ग का चुनाव गलत है? कृपा करके मुझे मेरा मार्ग बतायें, ताकि और समय व्यर्थ न हो जाये और आपको चूक न जाऊं।

यह सच है कि उस परम सत्य को पाने के लिए प्रेम और ध्यान दो मार्ग हैं। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि ध्यानी को प्रेम-शून्य होना पड़ेगा। न ही इसका यह अर्थ है

कि प्रेमी को ध्यान की कोई चिंता न करनी पड़ेगी। यह थोड़ा-सा दुरूह मालूम पड़ेगा। यह केवल प्राथमिक रूप से चुनाव की बात है। अगर तुमने प्रेम को अपना मार्ग चुना है तो ध्यान छाया की तरह तुम्हारे साथ आयेगा। क्योंकि प्रेम ध्यान को न लाये तो प्रेम नहीं है, वासना है।

प्रेम और वासना में भेद ही क्या है?

इतना ही भेद है कि वासना के पीछे ध्यान की कोई छाया नहीं होती, और प्रेम के पीछे ध्यान की छाया होती है। और अगर तुमने ध्यान का मार्ग चुना है तो इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम प्रेम-शून्य, काठ के उल्लू हो जाओगे। ध्यान तुम्हारी साधना होगी, लेकिन तुम्हारे जीवन में प्रेम के फूल खिलने शुरू हो जायेंगे।

प्रेम और ध्यान सिर्फ तुम्हारे रुझान की बात है। अन्यथा वे ऐसे ही हैं, जैसे किसी पंछी के दो पंख। उनमें से एक भी कट जाये तो पंछी का उड़ना मुश्किल है। वे ऐसे ही हैं, जैसे तुम्हारे पैर। वे ऐसे ही हैं, जैसे कोई नाव को दो पतवारों को लेकर चला रहा था। एक पतवार छूट जाये तो नाव एक ही जगह चक्कर मारती रहेगी।

तुम्हारी यही भूल हो गयी। तुमने प्रेम का अर्थ नहीं समझा। तुमने प्रेम का वही अर्थ समझा, जो कि बंबई में समझा जा सकता है। गये चौपाटी पर और समझ गये प्रेम का अर्थ।

प्रेम एक सद्भाव है इस सारे अस्तित्व के प्रति। प्रेम एक करुणा है, जिसके ऊपर कोई पता नहीं। प्रेम एक आनंद है-- जैसे फूल खिलता है और उस की खुशबू चारों दिशाओं में बिखर जाती है। नहीं खोजती किन्हीं नासापुटों को।

मैंने सुना है, चीन में एक बौद्ध भिक्षुणी थी। बुद्ध से उसका बड़ा प्रेम था। ऐसा वह समझती थी। उसने अपनी सारी संपत्ति बेचकर बुद्ध की एक स्वर्ण-प्रतिमा बना ली थी। और रोज बुद्ध की उस स्वर्ण प्रतिमा की वह पूजा करती थी। एक ही मुश्किल थी... ऊदबत्तियां जलाती-- अब धुएं का क्या भरोसा? कभी बुद्ध की यात्रा भी करता, और कभी बुद्ध के विपरीत भी चला जाता। धूप जलाती-- अब धुएं का क्या भरोसा? और धुएं को क्या मतलब। जहां हवाएं ले जाती, चला जाता। वह बड़ी परेशान थी। और परेशानी और बढ़ गयी। क्योंकि वह जिस विशाल मन्दिर में ठहरी हुई थी... संभवतः वह दुनिया का सबसे बड़ा विशाल मंदिर है अब भी शेष। न मालूम कितनी सदियां लगी होंगी उस मंदिर को बनाने में। एक पूरा पहाड़ खोदकर वह मंदिर बनाया गया है। उसमें एक हजार बुद्ध की प्रतिमाएं हैं। वह एक हजार बुद्धों का मंदिर कहलाता है। और एक से एक प्रतिमा सुंदर हैं।

इस भिक्षुणी की मुसीबत यह थी कि यह अपने बुद्ध को धूप देती, ऊदबत्ती जलाती, फूल चढ़ाती... और दूसरे बुद्ध... बेईमान मजा लेते। यह असह्य था। इसे वह प्रेम समझती थी। बहुत सोचा, क्या करे? तब उसने एक बांस की पोंगरी बना ली। और जब धूप को जलाती तो बांस की पोंगरी से उसके धुएं को अपने बुद्ध की नाक तक ले जाती। अब गरीब बुद्ध, सोने के बुद्ध कुछ कह भी नहीं सकते कि यह तू क्या कर रही, पागल... बुद्ध की नाक, उनकी आंख, उनका मुंह सब काला हो गया। तब वह बहुत घबरायी।

वह मंदिर के पुजारी के पास गयी और उसने कहा कि मैं क्या करूं? मैं बड़ी मुश्किल में पड़ी हूं। अगर बांस की पोंगरी का उपयोग नहीं करती तो मेरी धूप मेरे बुद्ध को नहीं पहुंचती, मेरी सुगंध मेरे बुद्ध को नहीं पहुंचती। और दूसरे बेईमान बुद्धों की ऐसी भीड़ है। एक हजार बुद्ध चारों तरफ मौजूद हैं कि कब कौन खींच लेता है उस सुगंध को, मेरी समझ में नहीं आता। सो मुझ गरीब औरत ने यह पोंगरी बना ली। अब इस पोंगरी से एक नये उपद्रव की स्थिति हो गयी। मेरे बुद्ध का मुंह काला हो गया।

उस पुजारी ने कहा, तूने जो किया है, वही दुनिया में हो रहा है। हर प्रेमी जिसको प्रेम करता है, उसका मुंह काला कर देता है। इसको लोग प्रेम कहते हैं। कहीं मेरी सुगंध, कहीं मेरा प्रेम किसी और के पास न पहुंच जाये। तो सबने अपने-अपने ढंग से बांस की पोंगरियां बना ली हैं।

हिन्दू हिन्दू से विवाह करेगा, मुसलमान मुसलमान से विवाह करेगा। और विवाह कर लेने के बाद भी कुछ पक्का नहीं है... दुनिया बड़ी है और हजारों बुद्ध, तरह-तरह के बेईमान घूम रहे हैं। तो सब द्वार-दरवाजे बंद रखेगा। चाहे जिसको प्रेम करता है, उसकी सांसें घुट जायें। चाहे उसके साथ-साथ उसकी खुद की सांसें घुट जायें। और घर-घर में सांसें घुट रही हैं।

मैं हजारों घरों मेहमान हुआ हूं और मैंने घर-घर में सांसें घुटती देखी हैं। पत्नी रो रही है इसलिए कि उसने उस आदमी से शादी की जिससे प्रेम किया। बड़े आश्चर्य की बात है, कुछ ऐसा लगता है कि लोगों को अपने दुश्मनों से प्रेम करना चाहिए। अपने दुश्मनों से कम से कम शादी तो करनी ही चाहिए। प्रेम चाहे किसी और से कर लेना, मगर शादी अपने दुश्मन से करना। छटे दुश्मन से करना। क्योंकि जो व्यवहार तुम करने वाले हो बाद में...।

प्रेम का तुम्हारा ख्याल गलत है। और एक स्त्री होकर अगर तुम्हें ऐसा लगता है कि

तुम्हारे भीतर कोई प्रेम नहीं है... यह असंभव है। जैसे हर तरफ हर जमीन के नीचे पानी है-- यह और बात है कि कहीं पचास फीट की गहराई पर होगा और कहीं साठ फीट की गहराई पर होगा वैसे हर मनुष्य के भीतर प्रेम है। पुरुष जरा कठोर है। कुआं जरा गहरा खोदना पड़ता है। स्त्री जरा तरल है, इतनी कठोर नहीं है। थोड़ी-सी खुदाई करनी पड़ती है और पानी निकल आता है। लेकिन कभी-कभी यूं हो जाता है कि हम अपने चारों तरफ प्रेम के नाम पर जो होते देखते हैं, वह हमें कठोर बना देता है, वह हमें डरा देता है, वह हमें भयभीत कर देता है कि अगर यही प्रेम है तो ईश्वर प्रेम से बचाये।

ऐसे ही तुमने अपने पास एक दीवाल खड़ी कर ली होगी। उस दीवाल को गिरा दो। कोई जरुरत नहीं है कि उस दीवाल को गिराने के लिए तुम्हें शादी करनी पड़े और बच्चे पैदा करने पड़े। इतना ही काफी है कि तुम्हारे बीच और इस बड़े मनुष्य-समाज के बीच, पक्षियों के बीच, और पौधों के बीच दीवाल न रहे।

हम सब जुड़े हैं, हम सब साथ-साथ हैं। हम कितने ही दूर-दूर हों फिर भी बहुत पास-पास हैं। आखिर हम एक ही अस्तित्व के हिस्से हैं। हम वहीं से पैदा होते हैं और वहीं एक दिन लीन हो जाते हैं।

तो पहला तो सुझाव मैं यह दूंगा कि तुम अपनी यह भ्रांत धारणा छोड़ दो कि तुम्हारे पास कोई प्रेम नहीं है या प्रेम तुम्हारा मार्ग नहीं है। प्रेम के बिना तुम रूखी-सूखी हो जाओगी। प्रेम के बिना तुम ऐसी हो जाओगी, जैसे कोई मरुस्थल में प्यासा हो। यह दीवाल तोड़ दो।

मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम प्रेम के मार्ग पर चलो। मैं सिर्फ यह कह रहा हूं कि प्रेम के संबंध में तुम्हारी जो धारणा है, वह हटा दो। ध्यान के मार्ग पर चलो। वह तुम्हें प्रीतिकर लगता है, वह तुम्हें रुचिकर लगता है। जैसे ही तुम प्रेम के संबंध में अपनी गलत धारणा छोड़ दोगी, वैसे ही तुम पाओगी, तुम्हारी ध्यान-धारणा, तुम्हारे ध्यान का मार्ग अपने आप सरल हो गया। अपने आप सरस हो गया। अपने आप वे कठिनाइयां जो कल तक मालूम होती थीं, अब मालूम नहीं होतीं।

तुमने पूछा है कि मैं बैठती हूं, साक्षी बनकर विचारों को देखती हूं। कभी-कभी विचार थम जाते हैं। क्षण भर को बड़ा आनंद आता है। और फिर विचार चल पड़ते हैं। और ऐसा ही हो रहा है। और ऐसा ही कब तक होता रहेगा?

यह तब तक होता रहेगा, जब तक कि तुम पहली भूल न सुधार लोगी। वह जो आनंद का थोड़ा-सा अनुभव तुम्हें होता है-- क्षण भर को, वह बहुत बड़ा नहीं हो पाता, क्योंकि

तुमने प्रेम को अवरुद्ध किया हुआ है। अगर प्रेम का बांध भी टूट जाये और आनंद का यह छोटा-सा क्षण भी मिल जाये तो तुम्हारे भीतर भी गंगा बहने लगेगी। फिर बड़े-बड़े अंतराल आने शुरू हो जायेंगे। देर-देर तक विचारों का कोई पता न रहेगा। और एक नयी अनुभूति होगी कि जहां ध्यान बढ़ रहा है, वहां पीछे-पीछे प्रेम की सुगंध फैलती जा रही है।

जिस दिन ध्यान और प्रेम तुम्हें दो न मालूम हों, उस दिन समझना कि मंजिल आ गयी।

जिस दिन ध्यान प्रेम हो और प्रेम ध्यान हो, उस दिन समझना कि मंदिर आ गया। अब कहीं और जाना नहीं है, यहीं आना था।

तो शुरुआत में चुनाव करना पड़े, लेकिन अंत में कोई चुनाव नहीं है। अंत में प्रेम और ध्यान दोनों एक हो जाते हैं। ध्यान तुम्हें अपने से मिला देता है, और प्रेम तुम्हें सबसे मिला देता है।

अगर अपने से ही मिलकर रह गये तो यह सारा अस्तित्व तुमसे भिन्न रह जायेगा। यह उपलब्धि अधूरी होगी। और अगर सबसे मिल गये और अपने से ही न मिले तो यह भी कोई मिलना हुआ? जिस दिन अपने से मिले, उसी दिन सबसे भी मिल गये, तो उपलब्धि पूरी हो गयी।

दोहरा दूं, ताकि तुम्हें भूल न जाये।

प्रेम के संबंध में तुम्हारी धारणा गलत है, उसे छोड़ दो।

प्रेम का अर्थ वासना नहीं है। प्रेम का अर्थ सबके लिए सद्भावना है।

गौतम बुद्ध के जीवन में यह उल्लेख है कि वह अपने हर भिक्षु को यह कहते कि जब तुम ध्यान करो और जब आनंद से भर जाओ तो एक काम करना मत भूलना। जब तुम आनंद से भर जाओ, तो अपने आनंद को सारे जगत को बांट देना। तभी उठना ध्यान से। ऐसा न हो कि ध्यान भी कंजूसी बन जाये। ऐसा न हो कि ध्यान को भी तुम तिजोड़ी में बंद करने लगो। जो पाओ, उसे लुटा देना। फिर कल और आयेगा, उसे भी लुटा देना। और जितना तुम लुटाओगे, उतना ज्यादा आयेगा।

एक आदमी खड़ा हुआ। उसने कहा और सब ठीक है, आपकी आज्ञा शिरोधार्य। लेकिन एक अपवाद मांगना चाहता हूं।

बुद्ध ने कहा, क्या अपवाद ?

उसने कहा कि मैं ध्यान करता हूं, ध्यान करूंगा। और आप जैसा कहते हैं, वैसा ही

ध्यान के बाद जो आनंद की अनुभूति होती है--प्रार्थना करूंगा कि हे विश्व, इस अनुभूति को संभाल ले। लेकिन इसमें मैं एक छोटा-सा अपवाद चाहता हूं। वह यह कि मैं अपने पड़ोसी को इसके बाहर छोड़ना चाहता हूं, क्योंकि वह कम्बख्त मेरे ध्यान का लाभ उठाये, यह मैं नहीं देख सकता। बस इतनी सी स्वीकृति... एक पड़ोसी। सारी दुनिया को ध्यान बांटने को राजी हूं। दूर से दूर तारों पर कोई रहता हो, मुझे कोई चिंता नहीं। मगर इस हरामखोर को...

बुद्ध ने कहा, तब बड़ी मुश्किल है। तब तुम बात समझे ही नहीं। सवाल यह नहीं था कि इसको देना है या उसको देना है। सवाल यह नहीं था कि अपने को देना है और पराये को नहीं देना है। सवाल यह नहीं था कि दोस्त को जरा ज्यादा दे देंगे, दुश्मन को जरा कम दे देंगे। सवाल यह था कि दे देंगे, बेशर्त दे देंगे। और यह न पूछेंगे कि लेने वाला कौन है। और तुम वहीं अटक गये हो। तुम्हारा ध्यान आगे न बढ़ सकेगा। ये चांद-तारे तुम्हारे लिए कोई अर्थ नहीं रखते; इसलिए तुम तैयार हो इनको प्रेम देने को, ध्यान देने को, आनंद देने को। मगर वह पड़ोसी...

तो बुद्ध ने कहा, मैं तुमसे यह कहता हूं कि तुम सबकी फिक्र छोड़ो--चांद की और तारों की। तुम इतनी ही प्रार्थना करो रोज ध्यान के बाद कि मेरा सारा आनंद मेरे पड़ोसी को मिल जाये। बस, तुम्हारे लिए इतना ही काफी है। दूसरों के लिए पूरी दुनिया भी छोटी है, तुम्हारे लिए तुम्हारा पड़ोसी भी सारी दुनिया से बड़ा मालूम होता है।

प्रेम का इतना ही अर्थ है कि मेरा आनंद, मेरे जीवन की खुशी, मेरे जीवन की खुशबू बेशर्त, बिना किसी कारण के सब तक पहुंच जाये।

तो पहली तो बात यह याद कर लो कि प्रेम की तुम्हारी पुरानी धारणा गलत है। और दूसरी बात कि वह जो क्षण आता है ध्यान में, घबराकर छोड़ मत देना। क्योंकि वही क्षण... जैसे गंगा गंगोत्री में छोटी-सी होती है। इतनी छोटी होती है कि हिंदुओं ने वहां एक गौमुख बना रखा है। पत्थर के गौमुख से गंगोत्री निकलती है। और वही गंगोत्री हजारों मील की यात्रा करके इतनी बड़ी हो जाती है कि जब वह सागर से मिलती है तो उसका नाम गंगासागर है। उसको एक पार से दूसरे पार तक देखना मुश्किल हो जाता है।

वह जो छोटा-सा क्षण है, वह अभी गंगोत्री है। अगर तुमने प्रेम के संबंध में सुधार कर लिया तो उस गंगोत्री को गंगा-सागर बनने में देर न लगेगी। उसका गंगा-सागर बनना निश्चित है। इस अस्तित्व के नियम बदलते नहीं; वे सदा से वही हैं। अगर कभी कोई भूल-चूक होती है, भूल-चूक हमारी है। जगत के नियमों का कोई पक्षपात नहीं है।

प्रश्न : भगवान, हृदय को सभी संतों ने अध्यात्म अनुभव का द्वार कहा है और मन को विचार और बुद्धि। भगवान, हृदय और मन में क्या फर्क है? हृदय और आत्मा में क्या फर्क है? इस फर्क को कैसे स्पष्ट करें? कैसे पहचानें?

मनुष्य का सबसे पहला द्वार विचार है। मनुष्य सबसे पहले सोचना सीखता है। उस सोचने की, विचारने की मनुष्य की जो क्षमता है, उसका नाम बुद्धि है।

हमारे सारे शिक्षण की संस्थाएं उसी बुद्धि को निष्णात करती हैं। और इसीलिए दुनिया में विचार तो बहुत हैं, लेकिन प्रेम बहुत नहीं है। और जिस दुनिया में विचार बहुत हों, और प्रेम न हो, वह दुनिया नर्क बन जाये, इसमें ज्यादा देर नहीं। क्योंकि विचार को इससे कोई संबंध नहीं--क्या ठीक है, क्या गलत है।

विचार वेश्या है।

यूनान में सुकरात के पहले एक बहुत बड़ी दार्शनिक परंपरा थी। उस परंपरा का नाम था सोफिस्ट। उनका एक ही काम था, लोगों को विचार करना सिखाना। रईसजादे, राजकुमार या जो भी उनकी फीस चुकाने के लिए राजी थे, वह उनको विचार की प्रक्रिया और तर्क की प्रक्रिया सिखाने के लिए राजी थे। उनका कोई सिद्धान्त न था। वे सिर्फ विचार सिखाते थे। और तर्क की प्रक्रिया सिखाते थे। फिर तुम जो चाहो उसका उपयोग करो--अच्छे के लिए या बुरे के लिए।

यूं तलवार किसी की गर्दन भी काट सकती है और यूं तलवार किसी की कटती हुई गर्दन को भी रोक सकती है। यूं जहर किसी की जान भी ले सकता है और यूं जहर किसी के कुशल हाथों में किसी के जीवन को बचा भी सकता है।

सोफिस्टों का काम कुल इतना था कि हम तुम्हें तलवार चलाना सिखा देते हैं, फिर तुम किसलिए तलवार चलाते हो, क्या लक्ष्य है तुम्हारा, यह तुम्हारी बात है। इससे हमारा कोई लेना-देना नहीं है।

झेनो, एक बहुत विचारशील युवक एक बड़े सोफिस्ट के स्कूल में भर्ती हुआ। और सोफिस्टों का यह नियम था कि आधी फीस तुम पहले भर दो और आधी फीस तब भर देना, जब तुम कोई पहला विवाद जीतो। इतना भरोसा था उन्हें अपने विज्ञान पर कि तुम जीतोगे ही जीतोगे। झेनो ने आधी फीस भर दी। शिक्षण भी पूरा हो गया। चांद आये, डूबे; सूरज उगे, डूबे। दिन बीते, महीने बीते। गुरु पीछे लगा है कि आधी फीस का क्या? लेकिन झेनो ने कहा, शर्त पूरी होने दो। जब मैं जीतूंगा तब। लेकिन मैंने निर्णय किया है

कि मैं कोई विवाद करूंगा ही नहीं। अगर कोई मुझसे दिन में भी कहेगा यह रात है, मैं कहूंगा "है", बिलकुल रात है। कोई झंझट ही नहीं करनी, तो विवाद किस बात का? और जब तक मैं विवाद न जीतूं, आधी फीस मैं देने का नहीं हूं। और तुम जानते हो कि आखिर मैं तुम्हारा ही शिष्य हूं, और तुम्हारी ही कला सीखी है।

लेकिन गुरु ने सोचा, यह तो बहुत ज्यादती हो गयी। यह आदमी शरारती निकला। कुछ करना पड़ेगा। आखिर गुरु को अपनी गुरुता सिद्ध करनी ही पड़ेगी। उसने झेनो पर अदालत में मुकदमा किया कि इसने मेरी आधी फीस नहीं चुकायी। उसके विचार की यह परंपरा थी--कि अब वह आधी फीस वसूल कर लेगा। अगर वह जीत गया तो अदालत से कहेगा कि झेनो को आज्ञा दो कि मेरी आधी फीस... अगर हार गया तो अदालत के बाहर झेनो की गर्दन पकड़ेगा कि बेटा, आधी फीस!

मगर झेनो भी उसी का शिष्य था। दोनों के सोचने का ढंग एक था, दोनों की तलवार एक थी, दोनों का तर्क एक था। उसने कहा, ठीक, अगर अदालत में हार गये तो मैं अदालत से निर्णय करवाऊंगा कि आप कह दें मेरे शिक्षक को कि अब मुझसे फीस न मांगे, मैं पहला ही मुकदमा हार गया। और अगर मैं अदालत में जीत गया, जिसकी पूरी संभावना है, क्योंकि सारे तर्क मेरे पक्ष में हैं; मैंने कोई विवाद ही नहीं किया तो फीस किस बात की। और शर्त यही थी। अगर मैं अदालत में जीत गया तो बाहर अपने गुरु को कहूंगा कि नमस्कार! मैं अदालत के खिलाफ कोई काम नहीं कर सकता हूं। मैं कानून को मानकर चलने वाला आदमी हूं।

विचार वेश्या है। विचार के पास अपनी कोई जीवन-दृष्टि नहीं है। विचार अंधा है। लेकिन हम उसी अंधेपन की शिक्षा देते हैं। और विचार से गहराई में छिपा हुआ हमारा हृदय है। लेकिन सारे समाज आज तक के आदमी को हृदय से बचाने की कोशिश करते रहे हैं। क्योंकि हृदय खतरनाक है। क्योंकि हृदय तर्क नहीं जानता, प्रेम जानता है। विचार का उपयोग किया जा सकता है, तुम्हें सैनिक बनाया जा सकता है, तुम्हें क्लर्क बनाया जा सकता है; लेकिन प्रेम का क्या उपयोग करोगे?

समाज के लिए प्रेम की कोई उपादेयता नहीं है। वरन् समाज के लिए प्रेम से खतरा है। आज तुम किसी को प्रेम करते हो, कल किसी और को प्रेम करने लगो, परसों किसी और को प्रेम करने लगो। तो समाज यह सब इंतजाम कहां से करता फिरेगा?

प्रेम को काट डालने के लिए समाज ने विवाह ईजाद किया है।

और हजार कानून बनाये कि सच्चा प्रेम वही है, जो कभी बदलता नहीं। हालांकि इस

दुनिया में जो भी सच्ची चीजें हैं, वे रोज बदलती हैं। और जो झूठी चीजें हैं, वही नहीं बदलती। कागज के फूल नहीं बदलते; असली गुलाब के फूल रोज बदल जाते हैं।

और फिर प्रेम के साथ खतरा है। किसी आदमी को सैनिक बनाना मुश्किल है; सैनिक बनाने के लिए जरूरी है कि उसके प्रेम की बिलकुल हत्या कर दी जाये। नहीं तो वह गोली जब हाथ में लेगा किसी दुश्मन को मारने के लिए तो उसका हृदय कहेगा, इसकी भी मां होगी, जैसी तुम्हारी मां है। और इसकी भी पत्नी होगी। और जैसी जार-जार तुम्हारी पत्नी रोयी थी तुम्हें विदा करते वक्त, इसकी पत्नी भी रोयी होगी। और इसके भी छोटे-छोटे बच्चे होंगे, जिन्हें तुम अनाथ करने जा रहे हो। और इसका भी बूढ़ा पिता होगा, जिसके बुढ़ापे में इसके सिवाय और कोई लाठी का सहारा नहीं है... तुम यह क्या कर रहे हो? और किसलिए कर रहे हो? और इस आदमी ने तुम्हारा कुछ भी नहीं बिगाड़ा है। सिर्फ सौ रुपट्टी की नौकरी और आदमी, और इसकी जिंदगी... और यह भी बिचारा सिर्फ सौ रुपट्टी की जिंदगी और तुम्हारी छाती पर बंदूक कसे है!

अगर प्रेम की दोनों में थोड़ी भी किरण हो तो दोनों बंदूकें छोड़कर गले मिल जायेंगे, क्योंकि दोनों की समस्या एक है। और ये बंदूकें जिन पर तननी चाहिए, वह राजधानियों में बैठे हुए हैं!

यह जानकर तुम हैरान होओगे कि पिछले दूसरे महायुद्ध में अमरीकी सैनिकों में जो उम्र वाले सैनिक थे, उन्होंने तो ठीक वैसा ही व्यवहार किया जैसा करना चाहिए एक सैनिक को -- हत्या का धंधा। लेकिन जो जवान थे, उनमें से तीस प्रतिशत लोगों ने किसी की हत्या नहीं की। वे बंदूकें लेकर मैदान पर जाते थे, और सांझ को बंदूकें लिए मैदान से वापस लौट आते थे! और जब इस बात का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया गया तो सारी अमरीका में एक घबराहट छा गयी, कि अगर युवकों में यह बात सनसनी की तरह फैल जाये... तीस प्रतिशत कोई छोटी घटना नहीं है। और अगर अमरीकी युवक यह कह दें कि हम क्यों किसी की हत्या करें जिन्होंने हमारा कुछ भी नहीं बिगाड़ा... तो अमरीकी का यह दंभ कि हम दुनिया की सबसे बड़ी शक्ति हैं, दो कौड़ी में मिल जायेगा। लेकिन जिनका यह दंभ है, वे वाशिंगटन में हैं। और जिनको मरना है और मारना है, उनका न कोई नाम है, न कोई ठिकाना है!

कोई समाज नहीं चाहता कि तुम्हारे हृदय को, तुम्हारे प्रेम को विकसित होने दे। उसे हर तरह से रोकता है। और सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि मस्तिष्क सबसे ऊपर है, उससे गहराई में हृदय है और उससे गहराई में तुम्हारी आत्मा है। चूंकि तुम्हारे हृदय को ही

विकसित नहीं होने दिया जाता, तुम्हारी आत्मा तक पहुंचने की संभावना ही समाप्त हो जाती है। दरवाजे ही बंद हो जाते हैं। इसलिए अगर आज की दुनिया में आत्मा को जानने वाले लोगों की एकदम कमी हो गयी है तो कोई आश्चर्य नहीं है। होना तो नहीं चाहिए था। क्योंकि हजारों-हजारों साल से आत्मा को लोग खोजते रहे हैं। तो संख्या बढ़नी चाहिए थी, उनकी जो अपने को जानते हैं। लेकिन उनकी संख्या रोज-रोज कम होती गयी है। और जो व्यक्ति भी इस तरह की बातें करेगा कि तुम्हारे हृदय के द्वार कैसे खोले जा सकें और तुम्हारी आत्मा का फूल कैसे खिले--सारी दुनिया की वे शक्तियां जो प्रेम और आत्म-उपलब्धि के खिलाफ हैं--उसकी दुश्मन हो जायेंगी।

मैंने किसी का कुछ भी नहीं बिगाड़ा है। अमरीका ने सारी दुनिया के गैर-कम्युनिस्ट देशों को राजी कर लिया है कि मुझे पैर रखने की जमीन भी न दी जाये। और कम्युनिस्ट राष्ट्र पहले से ही मुझसे परेशान हैं। इतनी बड़ी जमीन मेरे लिए एकदम छोटी हो गयी है।

उनकी घबराहट बहुत बुनियादी है। उनकी घबराहट यह है कि मैं उनके युवकों को प्रेम का संदेश दे रहा हूं। उनकी घबराहट यह है कि मैं उनके युवकों को ध्यान की अनुप्रेरणा दे रहा हूं। उनकी घबराहट यह है कि करोड़ों लोग सारी पृथ्वी पर आज पहली बार बिना इस बात की फिक्र किये कि वे हिंदू हैं या मुसलमान या ईसाई या पारसी या यहूदी--ध्यान की एक प्रक्रिया में उतरने के लिए और प्रेम के अनूठे सागर में गोते लेने के लिए राजी हो गये हैं। यह उनकी घबड़ाहट है।

बिना किसी जुर्म के आज मैं अमरीका की आंखों में दुश्मन नंबर एक हूं! उनकी अदालतों में वे सिद्ध न कर सके कि मेरा जुर्म क्या है? क्योंकि सिद्ध भी कैसे करें? दुनिया का कोई विधान नहीं कहता है कि प्रेम पाप है और दुनिया का कोई विधान नहीं कहता कि आत्मा को जानना अपराध है। तो सिद्ध भी क्या करें। दुनिया का कोई विधान नहीं कहता कि ध्यान या समाधि मनुष्य को नर्क ले जाते हैं। तो अदालत में सिद्ध भी क्या करें।

अभी चार दिन पहले अमरीका के सबसे बड़े कानूनविद अटार्नी जनरल ने पत्रकारों की परिषद को उत्तर देते हुए कहा... किसी ने पूछा था कि मुझे सजा क्यों नहीं दी गयी? मुझे जेल क्यों नहीं भेजा गया? तो उत्तर में जो उन्होंने दी तर्कसरणी, वह सोचने जैसी है। उन्होंने कहा,'हमें उत्सुकता थी, भगवान ने जो कम्यून यहां स्थापित किया था, उसको नष्ट करने की। वह हमारी प्रॉयारिटी थी। वह हमारा पहला काम था।'

और कम्यून क्या थी? पांच हजार लोगों की एक छोटी-सी जमात थी। जो ध्यान कर रही थी एक रेगिस्तान में, जहां किसी अमरीका के आदमी को आने की न कोई जरूरत

थी, न कोई आमंत्रण था। हमसे पड़ोसी नगर अमरीका का कम से कम बीस मील दूर था। छोटा-सा गांव। और थोड़ा बड़ा गांव हमसे तीस मील दूर था। हमसे उन्हें क्या तकलीफ थी?

लेकिन कम्यून को नष्ट करना हो तो एक बात उनके लिए साफ हो गई थी कि मुझे पहले अमरीका से बाहर कर देना जरूरी है। क्योंकि उन पांच हजार संन्यासियों ने घोषणा की थी कि अगर मुझे अरेस्ट करने की कोशिश की गयी तो बिना पांच हजार संन्यासियों की हत्या किये मुझे अरेस्ट नहीं किया जा सकता। इसलिए दो साल से वह मुझे अरेस्ट करना चाहते थे, दो साल से रोज खबरें आती थीं कि आज, कि अब वॉरंट आने को है। और कम्यून के पास, बीस मील दूर के गांव में उन्होंने लाकर फौजें खड़ी कर रखी थीं कि अगर जरूरत पड़े तो पांच हजार संन्यासियों की हत्या भी कर दी जाये, वह भी हम करेंगे।

और इन पांच हजार संन्यासियों ने उनका कुछ भी न बिगाड़ा था। इनका कसूर इतना ही था कि इन्होंने एक रेगिस्तान को मरुद्यान बना दिया, और अमरीका को पहली बार ध्यान के अमृत की थोड़ी-सी झलक दी। और पहली बार अमरीका में एक स्थान ऐसा बन गया, जो कि अमरीका में कहीं भी नहीं है, जिसको तीर्थ-स्थान कह सकते हैं--क्योंकि प्रतिवर्ष हजारों संन्यासी सारी दुनिया से कम्यून में आ रहे थे। उन्हें तो खुश होना चाहिए था कि हमने उनकी भूमि को एक पवित्रता दे दी, उनके अधार्मिक समाज को एक धर्म की भेंट दे दी। लेकिन वह उनके लिए खतरा था।

बुद्धि से सोचो, लेकिन ध्यान रहे--बुद्धि से इस तरह सोचो कि वह तुम्हें हृदय की तरफ ले जाये, हृदय के विरोध में नहीं। तो तुम समझदार आदमी!

प्रेम करो, लेकिन प्रेम ऐसा करो कि वह तुम्हें वासना की गंदी नालियों में न भटकाये, बल्कि आत्मा की तरफ इशारा करे।

और ध्यान करो, ताकि एक दिन तुम्हारे भीतर उस दिये को तुम जला लो, जो कभी भी नहीं बुझता। जिसने उसे जला लिया, उसने जीवन की परिपूर्णता पा ली। और जो उसे बिना जलाये मर गया, वह व्यर्थ जिया, व्यर्थ मरा।

और मैं अंततः फिर दोहरा देना चाहता हूं, यह तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है।
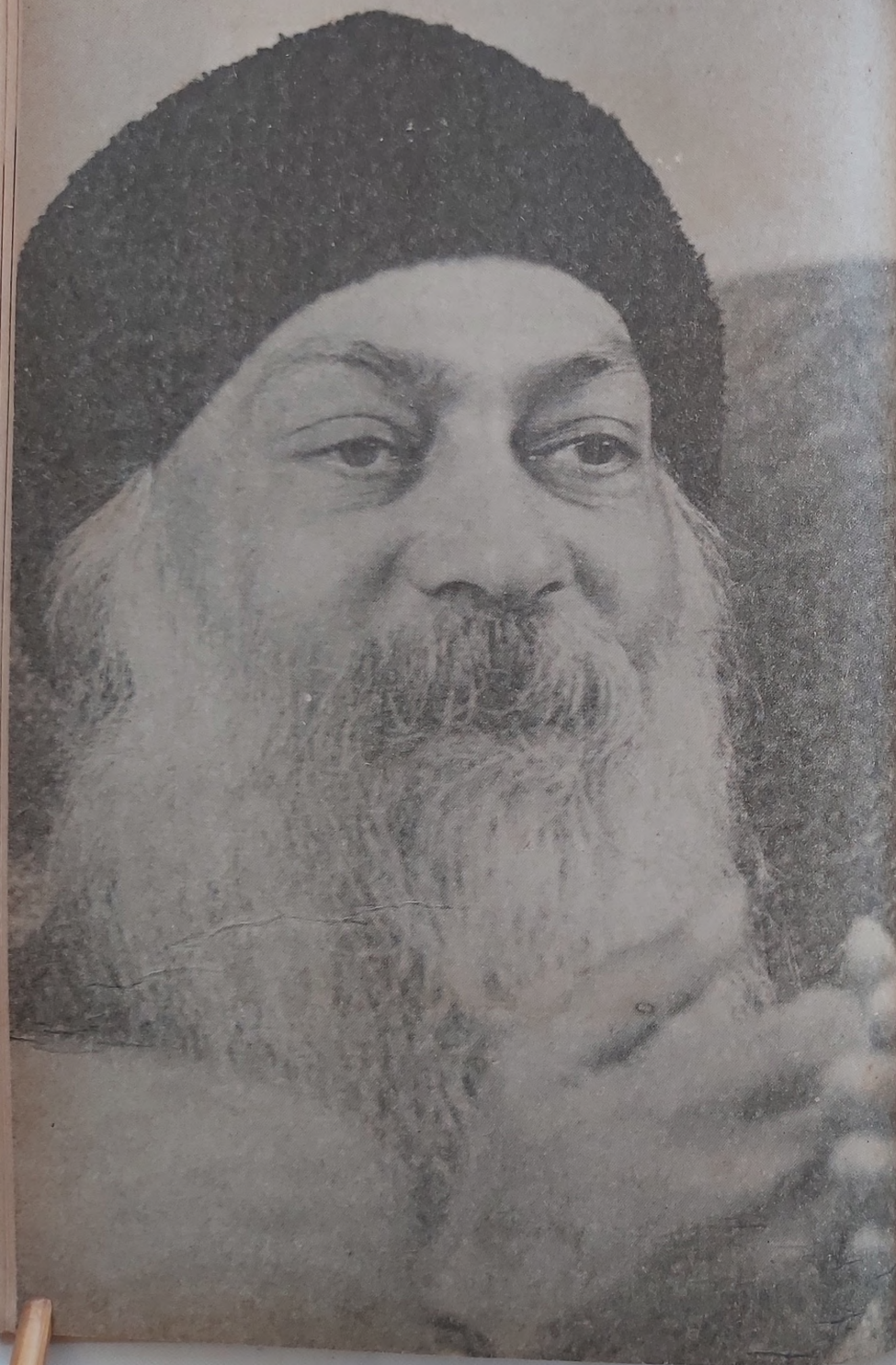
जीवित मंदिर मधुशाला है

सातवां प्रवचन : ५ अगस्त, १९८६, ७.०० संध्या, सुमिला, जुहू, बम्बई

प्रश्न : प्यारे भगवान, हाथ हटता ही नहीं दिल से, हम तुम्हें किस तरह सलाम करें?

जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है, जो भी रहस्यपूर्ण है, उसे व्यक्त करने का कोई भी उपाय नहीं है। न शब्द उसे बोल पाते हैं, न गीत उसे गुनगुना पाते हैं, आदमी उसकी तरफ इशारा करने में भी अपने को असमर्थ पाता है। वहां आंसू भी हार जाते हैं।

तुम्हारा प्रश्न प्यारा है। अब सलाम की कोई जरूरत नहीं। हृदय से हाथ न हटता हो तो सलाम पूरा हो गया। यूं भी होता है कि न चलते हुए भी मंजिल आ जाती है। और यूं भी कि चलते हैं, चलते हैं, जन्मों-जन्मों तक चलते हैं और मंजिल की कोई झलक भी नहीं मिलती।

मैं तुमसे कुछ कहता हूं, जरूरी नहीं है कि वह वही हो जो मैं तुमसे कहना चाहता था। शब्द पीछे छूट जाते हैं, अर्थ आगे निकल जाते हैं। तुम मुझे सुनते हो, जरूरी नहीं कि जो तुम सुनते हो, वही तुम समझते हो। सुनना तो, कान हैं तो हो जाता है, लेकिन समझना तो जब हृदय भी धड़कता हो कान के साथ-साथ, जब हृदय भी खड़ा हो मौन साधे, झोली फैलाये....।

जिन्दगी ऐसे एक कविता है। अंगरेजी के एक महाकवि कूलरिज के जीवन में यह घटना है। उसके जीवन के दिनों में उसकी कविताएं विश्वविद्यालयों में पढ़ायी जानी शुरू

हो गयीं थीं। होगा कोई ईमानदार अध्यापक, कि बीच कविता पर अटक गया। और क्षमा मांग ली विद्यार्थियों से, कि यूं तो समझा सकता हूं क्योंकि आखिर सभी शब्दों के अर्थ शब्दकोश में लिखे हैं। लेकिन दिल कहता है, बेईमानी हो जायेगी। तुम मुझे मोहलत दे दो। आज मुझे माफ कर दो। और यह हमारा भाग्य है कि कूलरिज अभी जिन्दा है। मुझे मौका दो कि मैं जाकर उससे पूछ लूं, कि तेरा अर्थ क्या है? शब्द क्या हैं, वह तो समझ में आता है। शब्द भी कीमती हैं, इसमें कोई शक-शुबहा नहीं, लेकिन यूं लगता है कि अर्थ कुछ और भी गहरा है।

वह दूसरे दिन ही सुबह-सुबह कूलरिज के द्वार पर पहुंच गया। कूलरिज अपने बगीचे में फूलों पर पानी डाल रहा था। प्रोफेसर ने कहा, क्षमा करना, एक मुश्किल में पड़ गया हूं। यह कविता आपकी लिखी है, अर्थ हमें समझाने पड़ते हैं। और वर्षों से लोग इसके अर्थ समझाते रहे हैं। मैं भी समझा सकता हूं। लेकिन अन्तरात्मा गवाही नहीं देती। लगता है, जो कर रहा हूं वह अन्याय है; और फिर तुम जब अभी जीवित हो, तो पूछ ही क्यों न लूं? जरा देखो और मुझे बता दो कि इसमें क्या अर्थ है।

कूलरिज ने कविता पढ़ी और कहा, तुम जरा देर से आये। जब मैंने इसे लिखा था, या ज्यादा अच्छा होगा कहना कि इसे मुझसे लिखवाया गया था – क्योंकि यह कहना भी झूठ है कि मैंने लिखा था। मैं एक साधारण आदमी, कहां से लाऊंगा ये गहराइयां? कोई अनजान, कोई अज्ञात शक्ति मेरे हाथों को पकड़कर इसे लिखा गयी थी। जब यह कविता घटी थी तब दो आदमी इस अर्थ को जानते थे। अब केवल एक ही जानता है। इसलिए तुमसे कहता हूं कि तुमने जरा देर कर दी। प्रोफेसर ने कहा, कोई हर्ज नहीं। क्योंकि स्वभावतः वह समझा कि जब कूलरिज कहता है कि लिखते समय दो जानते थे, और अब केवल एक ही जानता है, तो वह एक कूलरिज ही होगा।

कूलरिज ने कहा, तुम गलत समझे। जब मैंने इसे लिखा था तो ईश्वर जानता था और मैं भी जानता था। अब वही जानता है। अब मैं नहीं जानता हूं। कहीं मिलना हो जाये तो पूछ लेना। इतना सच है कि तुम्हारी जो प्रतीति है, कि शब्दों से ज्यादा कुछ छिपा है, मैं उसका अनुमोदन करता हूं। मैं भी उसे खोजता हूं लेकिन मिलता नहीं। किन्हीं-किन्हीं ऊंचाइयों में, शांति के किन्हीं क्षणों में, प्रेम की किसी घड़ी में तुम्हें पंख लग जाते हैं और तुम उन लोकों को छू लेते हो, जिन्हें बाद में तुम सिवाय सपने के और कुछ भी नहीं कह सकते।

मैं समझा तुम्हारे प्रश्न को। हाथ छाती पर ही रुक जाते हैं, सलाम कैसे हो? लेकिन

अब सलाम की कोई जरूरत कहां रही? हाथ छाती तक पहुंच गये, सलाम हो गया। हाथ छाती तक न भी पहुंचे, सिर्फ भाव छाती तक पहुंच जाये, तो भी सलाम हो जायेगा।

मैं काठमांडु में था, रोज सांझ को हजारों लोगों की भीड़ दर्शन के लिए आती थी। एक आदमी-- मुसलमान रहा होगा। शायद उसे बेचैनी होती होगी, कि इतने हिन्दुओं की भीड़ में लोग क्या कहेंगे, कि मुसलमान होकर ...... अपने गुनाह को छिपाने को, क्योंकि यह तो कुफ्र है – छोटी नजर के सामने, छोटी नजर में – तो जब भी मैं उसके पास से गुजरता, वह चिल्लाकर कहता कि भगवान, और सब प्रणाम कर रहे है, मैं सलाम कर रहा हूं। मैंने उससे कहा कि अगर प्रणाम में और सलाम में कोई फर्क है, तो फिर तुम कुछ भी नहीं कर रहे हो।

प्रणाम भी हृदय का वह भाव है जहां हम झुक जाना चाहते हैं – किसी गौरीशंकर के समक्ष, किसी सूर्योदय के समक्ष, किसी सूर्यास्त में। और सलाम भी वही है। भाषा का फर्क होगा। भाव का तो फर्क नहीं है।

तो मैंने उस आदमी को कहा, दुबारा यह बात मत कहना। मैं समझा कि यह तुम क्यों कह रहे हो। तुम इसलिए कह रहे हो कि तुम्हारे गांव के लोग पहचान लें, कि हालांकि तुम एक गैर-मुसलमान के दर्शन को आये हो, लेकिन तुम अब भी मुसलमान हो। अब प्रेम करते क्षण में भी अगर याद रह जाये कि मैं मुसलमान हूं, मैं हिन्दू हूं, मैं जैन हूं, मैं ईसाई हूं, तो वह प्रेम दो कौड़ी का भी नहीं है।

इतना ही बहुत है कि तुम्हारा हाथ छाती तक पहुंच गया। और हाथ छाती तक पहुंचा ही इसलिए कि भाव छाती में उभर आया है। सलाम भी हो गया, प्रणाम भी हो गया, प्रार्थना भी हो गयी, ध्यान भी हो गया। वे जीवन में जो सारे मंत्रवत, रहस्यपूर्ण अनुभव हैं, सभी उस छोटी-सी घड़ी में हो गये। अब कुछ और मत करो। क्योंकि तुम कुछ और करोगे तो 'तुम' करोगे। यह हाथ तुमने नहीं उठाया, यह अपने आप उठा है। और यह छाती तुमने नहीं धड़कायी, यह अपने आप धड़क उठी है। अब इसमें तुम कुछ भी करोगे तो बात सिर्फ बिगड़ेगी, बनेगी नहीं।

कूलरिज फिर मुझे याद आता है। कूलरिज जब मरा तो उसके घर में चालीस हजार कविताएं अधूरी पायी गयीं। किसी में एक पंक्ति और जोड़ देता तो वह पूरी हो जाती। किसी में दो पंक्तियां और जोड़ देता तो वह पूरी हो जाती। और अद्भुत कविताएं। और जिन्दगी भर उसके मित्र और उसके मित्रों का मण्डल। कवियों का ही मण्डल था–वे उससे कहते, कूलरिज, तुम पागल हो। कविता पूरी हो गयी है। एक जरा-सी, एक पंक्ति

और जोड़ दो।

कूलरिज कहता, तुम कभी भी न समझ पाओगे। इतनी पंक्तियां अपने आप उतरी हैं। इनके ऊपर हस्ताक्षर मेरे नहीं हैं। इन पर आकाश की छाया है। इनमें तारों की झलक है। मैं जो जोडूंगा उसमें जमीन की धूल होगी। मैं अपनी तरफ से जोड़ कर इन्हें पूरा तो कर सकता हूं और दुनिया को धोखा भी दे सकता हूं, कोई पहचान भी न सकेगा। लेकिन मैं अपनी आत्मा को कैसे धोखा दूंगा? और जहां से ये कविताएं उतरी हैं, कभी उस स्रोत का सामना हो गया, तो कैसे मुंह दिखाऊंगा? कैसे सिर उठाऊंगा? चालीस हजार नहीं, चालीस करोड़ कविताएं भी अधूरी पड़ी रहें, जिस स्रोत से इनका आगमन हुआ है, उसके सामने मैं गौरव और गरिमा से और प्रतिष्ठा से खड़ा हो सकता हूं। मैंने सिर्फ वही गाया है जो उसने चाहा था। उसमें कुछ भी जोड़ा नहीं है। मैं सिर्फ बांस की पोंगरी था। उसने गाया तो बांसुरी बन गया। वह चुप हो गया तो अब बांस की पोंगरी क्या करे?

जीवन में जो भी महत्वपूर्ण अनुभव हैं वे होते हैं, घटते हैं। जब तुम उन्हें करने लगते हो, बस तभी झूठ, तभी सब असत्य हो जाते हैं। तो जो हो रहा है वह पर्याप्त है, वह पर्याप्त से ज्यादा है; उसमें कुछ जोड़ना मत। इस जोड़ने के कारण ही सारे धर्म नष्ट हुए हैं। जरा-सी किरण उतरी, और उन्होंने कल्पना का जाल बुना और सूरज बना लिया। उनकी कल्पना के उस सूरज में सत्य की वह किरण खो गयी। उससे जगत को कोई लाभ न हुआ। उससे मनुष्य का कोई विकास न हुआ।

जो मुझे प्रेम करते हैं, उनसे तो मैं यह कहना चाहता हूं कि मेरा साथ और तुम्हारा साथ उतना ही है, जितनी देर तक परमात्मा उसे बनाये रखे। उससे ज्यादा नहीं। उससे ज्यादा गलत है।

प्रश्न : प्यारे भगवान, बहुत-सी मधुशालाएं देखीं, पीने वालों को नशे में धुत देखा, मगर आपकी मधुशाला का क्या कहना! न कभी देखी, न कभी सुनी। आपकी मधुशाला में पीने वालों को मस्त देखा। जो पीना नहीं चाहते उनकी भी मस्ती अजीब देखी। पीयें और नशा आये, वह बात समझ में आती है। बिन पीने वालों को मस्ती में मस्त देखता हूं, यह बात समझ में नहीं आती। आपकी मधुशाला की जब भी याद आती है, खुमारी-सी आ जाती है। यह तो और भी गजब की बात है। यह वास्तव में ऐसा है, या मेरा भ्रम है? मेरे संशय पर प्रकाश डालने की अनुकम्पा करें।

जीवन में जब भी कुछ ऐसा घटेगा, जो बाजार में खरीदा नहीं जा सकता, तभी तुम्हारी बुद्धि में संशय उठने शुरू हो जायेंगे। तुम्हारी बुद्धि बाजार में उपयोगी है, मन्दिर में बेकार है। और जिस मधुशाला की तुम बात कर रहे हो--जब भी कोई मन्दिर जिन्दा होता है, मधुशाला होता है। और अगर कोई मन्दिर मधुशाला नहीं है तो वह सिर्फ एक कब्र है, जो कभी मधुशाला थी। कभी वहां भी जीवन था। लेकिन हम अजीब लोग हैं। मन्दिर हैं, मस्जिदें हैं, गुरुद्वारा हैं, गिरजे हैं, सब मुर्दा लाशें हैं। क्योंकि वह बांसुरी ही अब वहां नहीं बजती, वह गीत वहां नहीं उठता, वे घूंघर वहां नहीं बजते, जिनके कारण कभी वे पवित्र स्थान बन गये थे। लेकिन हम मुर्दों के पूजक हैं। और मुर्दों को पूजते-पूजते हमारी आदतें ऐसी हो गयी हैं, कि जब भी कोई जिन्दा मन्दिर फिर से खड़ा होगा, संशय पैदा होगा, सन्देह उठेंगे, शंकाएं जगेंगी।

संशय छोड़ो। क्योंकि जितनी देर और जितनी शक्ति संशय में गंवा रहे हो, उतनी ही देर, उतनी ही शक्ति जो मधु उपलब्ध है, उसे पीने में क्यों नहीं लगा देते? तुम्हारा प्रश्न सुन्दर है। लेकिन उस आदमी का प्रश्न है, जो दूर खड़ा देख रहा है। जो देख रहा है कुछ लोगों को मस्ती में मस्त होते--बिना पीये। जो देख रहा है उनको भी, जो पीने न आये थे और पीकर झूम रहे हैं। लेकिन वह स्वयं तटस्थ है, वह अभी दूर खड़ा है। वह अंभी मन्दिर के बाहर है। वह औरों के संबंध में विचार कर रहा है कि यह क्या हो रहा है?

इसे समझना हो तो एक ही उपाय है: दरवाजे खुले हैं, भीतर आ जाओ। एक शराब तो है, जो तुम्हें बेहोश करती है। और एक शराब ऐसी भी है जो तुम्हारे होश को जगाती है। एक शराब है, जिसमें तुम टूटते हो और नष्ट होते हो। और एक शराब है, जो तुम्हें अपने भूले घर वापिस ले आती है।

इस बात को बौद्धिक प्रश्न न बनाओ। जिन्होंने इसे बौद्धिक प्रश्न बनाया वे इस अनूठे रस से वंचित रह गये। क्योंकि बुद्धि के पास सिवाय नकारात्मक उत्तर के, कोई विधायक सुझाव नहीं है। अन्ततः बुद्धि यही कहेगी कि पागलों की जमात है, सिरफिरों की जमात है। कहीं कोई बिना पीये यूं मस्ती में झूमता है? और बुद्धि का तर्क तुम्हें सन्तुष्ट कर देगा। इससे पहले कि बुद्धि तुम्हें खींचकर ले जाये, मन्दिर की सीढ़ियां चढ़ आओ। जिन्दगी में एक ही बात को प्रमाण बनाओ: अनुभव को।

अगर इतने लोग इस मधुशाला में डोल रहे हैं, झूम रहे हैं, मस्त हो रहे हैं, तो इस रस की धारा में थोड़ी देर को तुम्हारे आ जाने से, थोड़े-से अनुभव से, सारे संशय दूर हो जायेंगे। संशय केवल अनुभव से दूर होते हैं, तर्कों से नहीं।

एक पुरानी कहानी है। एक गर्भिणी सिंहनी एक छोटी पहाड़ी से दूसरी पहाड़ी पर छलांग लगाती है। और जब छलांग लगाती है तभी उसका बच्चा पैदा हो जाता है। और नीचे पहाड़ियों के, भेड़ों की एक भीड़ जंगल की तरफ जा रही है। वह बच्चा उस भीड़ में गिरता है, भेड़ों में ही बड़ा होता है, भेड़ों जैसा ही व्यवहार करता है। और जब भेड़ें डरकर भागती हैं किसी जंगली जानवर के हमले से, तो वह भी घसर-पसर उनके ही बीच भागता है। और यह बिल्कुल स्वाभाविक है, क्योंकि उसने कभी सोचा ही नहीं कि वह कोई और है। भेड़ों में से किसी-किसी को शक आता था, कभी-कभी उसे भी शक आता था। क्योंकि उसकी ऊंचाई बढ़ती चली गयी, लम्बाई बढ़ती चली गयी, लेकिन उन सबने अपने को समझा लिया कि प्रकृति में भूल-चूकें भी घटित हो जाती हैं।

लेकिन एक दिन एक बूढ़े शेर ने भेड़ों के उस झुण्ड पर हमला किया। और बूढ़ा शेर चकित खड़ा रह गया। वह अपनी आंखों पर विश्वास न कर सका, कि एक जवान सिंह भेड़ों के बीच में भागा चला जा रहा है। उसने जिन्दगी बहुत देखी थी, बूढ़ा हो गया था, मगर ऐसा अनुभव न देखा था। न किसी भेड़ को उससे डर है और न ही वह एक क्षण को भी यह सोच रहा है कि भेड़ नहीं है। बूढ़े सिंह ने पीछा किया। बामुश्किल से उसे पकड़ पाया। वह मिमियाने लगा, कि मुझे छोड़ दो। मुझे जाने दो। मुझे मेरे लोगों के साथ जाने दो। लेकिन बूढ़े शेर ने कहा कि जाने दूंगा, लेकिन एक छोटे-से काम के बाद। यह पास में ही तालाब है, तू मेरे साथ आ। बामुश्किल, बिना इच्छा के, लेकिन अब शेर के सामने भेड़ कर भी क्या सकती है ? बेचारा घसीटता हुआ उसके साथ तालाब तक गया। तालाब के किनारे पर खड़े होकर बूढ़े शेर ने उस जवान सिंह को कहा कि झांक, और देख।

शांत जल में उस सरोवर के, उस सिंह ने देखा कि वह भेड़ नहीं है। उसने अब तक भेड़ें ही देखीं थीं। भेड़ों की दुनिया में दर्पण तो होते नहीं। उसने आज तक अपना चेहरा भी नहीं देखा था। आज अपने चेहरे को भी देखा, अपने को भी देखा, और साथ ही यह भी देखा कि इस बूढ़े सिंह और उसके चेहरे में कोई अन्तर नहीं है। जवानी और बुढ़ापे का अन्तर है। और बिना कुछ समझाये, बिना कुछ बुझाये, एक हुंकार, एक दबी हुई हुंकार, जो जन्म के साथ ही उसकी छाती के भीतर दबी थी, पहाड़ियों को हिलाती हुइ चारों तरफ गूंज गयी। एक पल भर में वह भेड़ न रहा, सिंह हो गया। उस बूढ़े सिंह ने कहा, मेरा काम पूरा हुआ। अब तेरी मर्जी। अब तेरा क्या इरादा है ? अपने पुराने परिवार में लौट जाना है या मेरे साथ आना है ? उसने कहा, कैसा पुराना परिवार ? एक भूल टूट गयी, एक नींद टूट गयी, एक सपना मिट गया।

बाहर मत खड़े रहो। ये जो तुम्हें दीवाने दिखायी पड़ रहे हैं, इनके संबंध में सोचो मत--ये जो बिना पीये मस्त हो रहे हैं। थोड़ा पास आओ। ये मस्त हवाएं तुम्हें भी घेर लें। और यह यह रस की वर्षा तुम्हारे ऊपर भी थोड़ी हो जाये। जरा-सी बून्दाबान्दी, और सब संशय बह जायेंगे और सब सन्देह गिर जायेंगे। अभी यह मन्दिर जीवित है। अभी इस मन्दिर का अस्तित्व से नाता है। जब मन्दिर मर जाते हैं तो उनका नाता शास्त्रों से रह जाता है, अस्तित्व से नहीं। शब्दों से रह जाता है, अनुभव से नहीं। फिर कोई बाइबिल को घोंट-घोंट कर पी रहा है, कोई कुरान को, कोई गीता को। परिणाम कुछ भी नहीं होता। न तो जीवन में कोई नृत्य आता है, न जीवन में कोई आनन्द, न कोई मस्ती।

हां, जिन्होंने कृष्ण के साथ मन्दिर में प्रवेश किया होगा, उन्होंने मधुशाला में प्रवेश किया होगा। अब ये भूली-बिसरी यादें हैं। इन मुर्दों को तुम ढोते रहो, जब तक तुम चाहो। यह सिर्फ बोझ है। जहां तुम्हें जिन्दा, जीवन की गंगा बहती हुई मालूम होती हो, वहां चूकना मत। एकाध डुबकी तो कम से कम लगा ही लेना। बस, एक ही डुबकी काफी है और तुम नये हो जाओगे। फिर न तो तुम आश्चर्यचकित होओगे कि ऐसा क्यों हो रहा है ? क्योंकि यह तुम्हारा अपना अनुभव बन जायेगा। यह इसलिए हो रहा है, कि अगर एक व्यक्ति भी तुम्हारे बीच अस्तित्व के मूल स्रोत से जुड़ा हो, तो उसकी छाया भी तुम्हें मस्त कर दे सकती है।

प्रश्न तुम्हारा उपयोगी है, लेकिन तुम मुझसे पूछ रहे हो कि संशय तुम्हारा कैसे दूर करूं ? और संशय दूर करने का एक ही उपाय है कि मैं तुम्हें बुलावा दूं, निमंत्रण दूं, कि भीतर आ जाओ। रिन्दों की इस भीड़ में खो जाओ।

और ध्यान रहे, कोई भी मन्दिर हमेशा जिन्दा नहीं रहता। सभी मन्दिर एक न एक दिन मकान हो जाते हैं। सभी मन्दिर एक न एक दिन दुकान हो जाते हैं। और मजे की बात यह है कि जब मन्दिर मकान हो जाते हैं, दुकान हो जाते हैं, तो तुम मजे से उनके भीतर आने-जाने लगते हो। क्योंकि कोई डर न रहा। न तो मन्दिर तुम्हें बदल सकता है, न दुकान तुम्हें बदल सकती है। लेकिन जब मन्दिर जिन्दा होता है, यानी जब मन्दिर मधुशाला होता है, तब डर लगता है। क्योंकि एक भी घूंट जिन्दगी भर के लिए नशे में डुबा जाता है। और दूसरे घूंट की जरूरत नहीं रहती। और एक ही घूंट जीवन के सत्य को सिद्ध कर जाता है, किसी दूसरे घूंट की कोई आवश्यकता नहीं रहती। यूं मौज में तुम पूरी गंगा को पी जाओ, वह तुम्हारी मौज है।

असली सवाल पहला घूंट है। फिर तुम पीओगे ही पीओगे। और असली घूंट के

लिए साहस चाहिए। कैसी मुश्किल है! मस्त होने के लिए भी साहस चाहिए। यहां लोग दुखी हो सकते हैं, साहस की कोई जरूरत नहीं है। सारी दुनिया दुखी है। चिन्तित हो सकते हैं, साहस की कोई जरूरत नहीं। भेड़ों की पूरी भीड़ तुम्हारे साथ है। यहां सत्य का एक भी घूंट पीने के लिए हिम्मत और छाती चाहिए। क्योंकि उसके बाद फिर दुबारा तुम भेड़ों की उस भीड़ के हिस्से न हो सकोगे। उसके बाद पहली बार तुम्हारे जीवन में व्यक्तित्व, आत्मा, एक होने का सुरूर, एक स्वतंत्रता, और अस्तित्व के साथ पहली बार प्रेम का गठबंधन। तब तुम हिन्दू नहीं रह जाते, न मुसलमान रह जाते हो। तब तुम पहली बार आदमी बनते हो।

और इस दुनिया में आदमी बनना सबसे बड़ी साहस की बात है। क्योंकि भीड़ आदमियों की नहीं है, भेड़ों की है। और भीड़ के पास ताकत है। और आदमी अकेला रह जाता है इसलिए डर लगता है। इसी भय से तुम्हारा प्रश्न उठा है। आश्वस्त कर दूं तुम्हें, कि कोई डर की बात नहीं है, आ जाओ। डर की बात है? मैं तुम्हें कोई आश्वासन नहीं दे सकता। खतरा है। लेकिन वह आदमी ही क्या, जो खतरों के साथ खेलना न सीखे? जो जिन्दगी को चुनौतियां न बना ले। जो चेतना के शिखरों पर चढ़ने के लिए सब कुछ कुर्बान न कर दे।

तो सारी मुसीबतों के रहते हुए तुम्हें बुलाता हूं। लेकिन एक घूंट भी शांति का, आनन्द का, मौत का, इतना कीमती है कि लाख मुसीबतें भी आदमी सह सकता है। मौत भी सह सकता है।

तो प्रश्न न पूछो। जब तक मधुशाला जिन्दा है, मौका ले लो। क्योंकि कौन जाने, कल मधुशाला हो, न हो।

प्रश्न : भगवान, प्रश्न उठते हैं और इनमें से बहुत-से प्रश्नों के उत्तर भी आ जाते हैं। यह सब क्या है?

ऐसा कोई प्रश्न नहीं है, जिसका उत्तर न हो। और ऐसा भी कोई प्रश्न नहीं है, जिसका उत्तर तुम्हारे भीतर न हो। और इस बात से चकित मत होना कि जब तुम्हारे भीतर कोई प्रश्न उठता है, तो वह इसीलिए उठता है, कि उसके पहले उत्तर मौजूद है। उस उत्तर की मौजूदगी के कारण ही प्रश्न पैदा होते हैं। आम तौर से लोग समझते हैं कि मेरे भीतर प्रश्न उठ रहा है, तो कहीं खोजूं, किसी से पूंछूं। वह दृष्टि नासमझी की है। तुम्हारे भीतर प्रश्न

ही तब उठता है जब उत्तर मौजूद होता है। लेकिन उत्तर पर चलने की तुम्हारी हिम्मत नहीं होती। तो तुम आश्वस्त होना चाहते हो, कि जो उत्तर तुम्हारे भीतर है, वह सच में उत्तर है या नहीं? शास्त्रों में भी अगर वही उत्तर मिल जाये, तो हिम्मत बढ़ती है। सद्गुरु भी अगर वही उत्तर दे दे तो हिम्मत बढ़ती है। समाज में अगर हर जगह से उत्तर आये, तो तुम निश्चिन्त होकर उस पर चलने को राजी हो जाते हो। लेकिन वस्तुतः तुम्हारे हर प्रश्न के भीतर उत्तर मौजूद होता है।

और इस कारण एक झंझट पैदा होती है। क्योंकि शास्त्र, समाज, तुम्हारे तथाकथित साधु-सन्त, केवल उन्हीं उत्तरों को दोहरायेंगे, जिनको मान लेने में तुम्हें आसानी होगी; जिनको मान लेने को तुम आतुर ही हो, जिनको वस्तुतः तुम मान लेना ही चाहते थे। और इसलिए वे सन्त, वे शास्त्र तुम्हें प्रीतिकर हो जायेंगे।

लेकिन जरूरी नहीं है कि यह वही उत्तर हो, जो तुम्हारी अन्तरात्मा में छिपा है। यह तुम्हारा उत्तर हो यह जरूरी नहीं है। इसलिए जो सचमुच तुम्हारे मित्र हैं, जो तुम्हें सिर्फ प्रसन्न नहीं करना चाहते, बल्कि रूपान्तरित करना चाहते हैं, वे तुम्हें कोई विधि देंगे, ध्यान की कोई विधि देंगे ताकि तुम धीरे-धीरे अपने उत्तर को खुद पा सको। क्योंकि सिर्फ तुम्हारा उत्तर ही तुम्हें मुक्त कर सकता है। किसी दूसरे का उत्तर सिर्फ जंजीरें बनेगा। वह दूसरे का है, यही उसके जंजीर होने का सबूत है। और चूंकि वह दूसरे का है, इसलिए हमेशा तुम्हारी सतह को छुएगा। तुम्हारी अन्तरात्मा को, तुम्हारी गहराइयों को, तुम्हारी ऊंचाइयों को छूने की उसकी सामर्थ्य नहीं है। लेकिन हां, उसकी एक खूबी है कि वह तुम्हें सन्तुष्ट कर देगा, वह तुम्हें सांत्वना देगा।

और इस दुनिया में सांत्वना सबसे बड़ा जहर है। क्योंकि सांत्वना तुम्हें वहीं ठहरा देती है जहां तुम हो। सांत्वना तुम्हें यह भ्रम पैदा करवा देती है कि सब ठीक है। ये करोड़-करोड़ जन, जो सारी दुनिया में हैं, ये सभी रूपान्तरित हो सकते थे। ये सभी रूपान्तरित हो सकते हैं, इन सबके भीतर उतनी ही रोशनी है, जितनी किसी बुद्ध के भीतर रही हो। लेकिन ये बेरौनक हैं। ये बुझे हुए दीपक की तरह जीते रहेंगे क्योंकि चारों तरफ इनके बुझे दीपकों को सांत्वना देने वाले लोग हैं, धीरज बंधाने वाले लोग हैं।

मैं तुम्हें कोई ऐसा उत्तर नहीं दे सकता जो तुम्हें रोक ले वहीं, जहां तुम हो। हर उत्तर तुम्हारे लिए नयी अग्नि-परीक्षा बनना चाहिए। हर उत्तर से गुजरकर तुम्हें नया होना चाहिए। और इसी कारण मैं सारी दुनिया में दुश्मन बनाते हुए घूमता रहा हूं क्योंकि लोग सांत्वना चाहते हैं, लोग जीवन का रूपान्तरण नहीं चाहते। लोग चाहते हैं, कोई तुमसे कह

दे कि तुम जैसे हो, बिलकुल ठीक हो। तुम जैसे हो, इससे अच्छा अब और क्या हो सकता है? कोई सरकारी सील लगा दे तुम्हारे ऊपर, कि तुम पहुंच गये, तुम सिद्ध हो गये।

मेरे एक परिचित थे, जब मैं विश्वविद्यालय में शिक्षक था। वे भी शिक्षक थे विश्वविद्यालय में। संस्कृत पढ़ाते थे। संस्कृत पढ़ने अब कोई आता नहीं। दो-चार लड़के, जिन्हें किसी विषय में अनुमति नहीं मिलती, और खासकर लड़कियां, जिन्हें किसी विषय से कोई मतलब नहीं है, जिन्हें विवाह करना है, और डिग्री चाहिए। लेकिन उन दो-चार लड़कियों के सामने भी, व्याख्यान देने में थर-थर कांपते थे।

दोहरे कारण थे थर-थर कांपने के। एक तो, मंच पर खड़े होकर कोई भी कांपने लगता है। न मालूम क्या मामला है! मंच पर कैसी बीमारी पकड़ लेती है आदमी को। भला-चंगा आदमी, यूं घंटों बातचीत करे, कि तुम छुटकारा कराना चाहो तो छुटकारा न करो। रास्ते पर मिल जाये तो बचकर निकलना चाहो, कि कहीं ये भैया न मिल जायें। नहीं तो घंटा भर कम से कम इनके साथ खोपड़ी लड़ानी पड़ेगी। ऐसे-ऐसे वाचाल, बस उन्हें मंच पर खड़ा कर दो, और उनकी घिग्गी बंध जाती है। कुछ कहना चाहते हैं, कुछ कह जाते हैं।

कारण मनोवैज्ञानिक है, मंच में नहीं है। हजार व्यक्तियों की आंखें देख रही हैं। वे सिर्फ देख नहीं रही हैं, हजार व्यक्ति न्यायाधीश बन गये अचानक, और तुम्हें लटका दिया है सूली पर। तुम नाहक ईसा मसीह बन गये। और ये हजार आदमियों की आंखें तुम्हें देख रही हैं, कि कब तुमसे भूल हो जाये, कि कब तुमसे अंट-शंट कुछ निकल जाये। और अंट-शंट तुममें इतना भरा है कि तुम जानते हो, निकल सकता है। तो इधर अंट-शंट को दबा रहे हो, इधर ये हजार आंखें कह रही हैं कि आने दो।

तो एक तो यह उनकी मुसीबत थी। और दूसरी मुसीबत थी ब्राह्मण थे, बालब्रह्मचारी थे। और केवल लड़कियां उनकी कक्षा में भर्ती होती थीं। बालब्रह्मचारी जैसा लड़कियों से डरता है, वैसा कैंसर से भी नहीं डरता। और गरीब लड़कियां क्या करेंगी उसका? और काफी फासले पर बिठा रखता है। लेकिन वे मुझसे पूछा करते थे कि क्या करूं क्या न करूं। रात नींद नहीं आती। दूसरे दिन की फिक्र लगी रहती है। ठीक-ठीक व्याख्यान तैयार करके जाता हूं, सब गड़बड़ हो जाती है। जैसे ही लड़कियों को देखता हूं, ब्रह्मचर्य डांवाडोल होता है। और साधुपुरुष पहले ही कह गये हैं कि देखना ही मत। और उन साधुपुरुषों को क्या पता था कि अध्यापक भी होना पड़ेगा और देखना भी पड़ेगा। तो

कोई तरकीब मुझे बताओ।

तो मैं उनसे कहता, तुम एक काम किया करो। मैं जब खाली होता हूं, तुम आ गये, यह तख्त है, इस पर सवार हो गये। मैं तुम्हारा विद्यार्थी, तुम्हारे दिल में जो आये, व्याख्यान दो। पहले तो वे थोड़े झिझके, कि यह जरा जंचता नहीं। कहीं मोहल्ले के लोगों को पता चल गया तो वे क्या कहेंगे?

मैंने कहा, कुछ भी न कहेंगे। जिसको पता चलेगा, उसको ही निमंत्रित कर लेंगे, कि तुम भी आ जाओ। उसने कहा, यह न करना। मैं इसी भीड़-भाड़ से तो डरता हूं। तो मैंने कहा, मैं इन्तजाम कर दूंगा, बाहर तख्ती लगा दूंगा, कि इस समय कोई भीतर प्रवेश नहीं कर सकता।

बामुश्किल उनको राजी करके खड़ा कर लेता था। तख्त पर वे खड़े हो जाते। बाहर तख्ती देखते से ही मोहल्ला भर इकट्ठा हो जाता था। बिना तख्ती के मोहल्ले को खबर भी नहीं होती थी, कि कब व्याख्यान होगा। वह एक सर्कस हो गया। कोई खिड़की में से झांक रहा है, कोई दरवाजे की जाली में से झांक रहा है। और कुछ लोगों ने मेरे घर के नौकर से दोस्ती कर ली, वे भीतर से आने लगे, पीछे के रास्ते से। और उनकी दशा देखने योग्य है। पसीना-पसीना हुए जा रहे हैं, हालांकि एयरकंडिशन्ड मकान था। पसीना-पसीना हुए जा रहे हैं। इसकी फिक्र कम है कि क्या कह रहे हैं, इसकी फिक्र ज्यादा है कि कौन देख रहा है। कुछ का कुछ निकल जाता। मैं उनसे कहता, तुम फिक्र न करो। जितना अंट-शंट है, निकल जाने दो। लोगों को भी आनन्द आ जाता है। सिनेमा के भी पैसे बच गये। लोग मुझे धन्यवाद देते हैं कि यह आपने अच्छा काम शुरू कर दिया। और एकबारगी यह निकल ही जाये यह अंट-शंट, तो तुम्हारा डर भी मिट जाये।

और जब भी वे बीच भाषण में होते, मैं एक-आध कागज उनके हाथ में थमा देता--प्रश्न। कागज की बड़ी खूबी है; हाथ कंप रहा हो, कागज पकड़ा दो, तो कागज ऐसे हिलता है कि जिसका हिसाब नहीं। कि अगर तुम्हें दिख भी न रहा हो कि हाथ हिल रहा है, तो वह कागज हिल रहा है बता देता है, कि हाथ हिल रहा है। वे मुझसे कई दफे कहें कि देखो, एक काम बुरा है, बीच-बीच में प्रश्न मुझे मत दिया करो। मैं पैन्ट में अपने दोनों हाथ डालकर खड़ा होता हूं, और तुम्हारे प्रश्न की वजह से मुझे हाथ बाहर निकालना पड़ता है।

मैंने कहा, तुम्हें पता नहीं है, मैं तुम्हारा हाथ बाहर निकलवा कर तुमको बचाता हूं क्योंकि तुम्हरा पैन्ट हिलता है। वे बोले, यह मैंने कभी ख्याल नहीं किया। अगर ऐसा था

तो तुमने पहले क्यों नहीं कहा? मैं क्या कहूं, तुम्हारा पैन्ट है, तुम हाथ डालते हो, तुम हिलाते हो। और मैं क्या करूं? और लोगों की नजरें तुम पर कम, तुम्हारे पैन्ट पर ज्यादा होती हैं। मैंने उनसे कहा, तुम कोई और धन्धा ढूंढ़ लो। यह धन्धा तुम्हारे बस का नहीं। एक तो ब्रह्मचर्य की बीमारी, ऊपर से यह अध्यापकी, लड़कियों को पढ़ाना, मंच पर खड़े होना--बहुत ज्यादा है। तुम नाहक मरे जा रहे हो।

लड़कियां चाहती हैं कि लोग उनसे कहें, कि तुम बड़ी सुन्दर हो। ऐसे दस-पांच नालायक मिल जायें और कह दें– मिल ही जाते हैं चौपाटी पर घूमते-घामते, कि भला वह कलकत्ता की काली-वाली हो, माई भला हों, मगर कोई न कोई नालायक मिल ही जायेगा कि अहा! कैसा सौन्दर्य है। इससे अच्छा लगता है। कोई तुमसे कह दे कि तुम बुद्धिमान हो, इससे अच्छा लगता है। तुम्हारे अपने संबंध में धारणाएं तुम दूसरों के उधार विचारों से इकट्ठी करते हो। तुम उनसे प्रश्न पूछते हो, उनके उत्तरों को चिपका लेते हो। इसे तुम अपना ज्ञान समझते हो। इस सब बासे और उधार. . . । नहीं, कोई और तुम्हें ज्ञान नहीं दे सकता। और कोई तुम्हारे किसी प्रश्न का उत्तर नहीं बन सकता।

जो सच में तुम्हारा हितैषी है, जो सच में चाहता है कि तुम जीवन की ज्योति बनो, वह तुमसे कहेगा कि तुम्हारे हर प्रश्न का उत्तर तुम्हारे भीतर है। और इसलिए रास्ता यह है, कि तुम शान्त बैठो, और अपने भीतर उतरो। और एक ऐसी घड़ी आती है कि हर प्रश्न का उत्तर पाते-पाते, न उत्तर रह जाते हैं न प्रश्न रह जाते हैं। एक सन्नाटा और एक मौन रह जाता है। एक अपूर्व शान्ति रह जाती है। जैसे बिना कुछ लिखा हुआ कागज, निर्दोष। उसी दशा में तुम्हें उस मधुरस का थोड़ा-सा अनुभव होगा, जिसको तुम यहां लोगों को पीते देखते हो, डोलते देखते हो।

उनका आनन्द मेरे दिये गये उत्तर के कारण नहीं है। उनकी मस्ती, उनकी मौज, उनकी चमक मैं जो उनसे कह रहा हूं, उससे नहीं है। बोलना केवल मेरी एक विधि है। क्योंकि जब मैं बोल रहा हूं तब अनजाने ही तुम चुप होकर सुनने लगते हो। चुप्पी से तुम्हारा रस निकलना शुरू हो जाता है, मेरे बोलने से नहीं। मेरा बोलना तो सिर्फ बहाना था; वह तो तरकीब थी। लेकिन मुझे सुनने के लिए तुम चुप हो गये, तुम्हारी चुप्पी ने, तुम्हारे मौन ने तुम्हें अपने भीतर के रस-स्रोतों से जोड़ दिया।

जीवन कोई उत्तर नहीं चाहता। और जीवन का कोई उत्तर हो भी नहीं सकता। जीवन एक अनन्त रहस्य है, और सदा अनन्त रहस्य रहेगा। लेकिन अपने मौन में तुम उस रहस्य से जुड़ जाते हो। उस रहस्य की तरंगें तुम्हारे भीतर भी तरंगायित होने लगती हैं।

तुमसे मैं कहता हूं, प्रश्न कोई पूछना हो तो पूछ लो, वह सिर्फ इसलिए ताकि तुम सुनने के लिए चुप हो सको; ताकि मैं तुम्हें चुप होने का थोड़ा-बहुत स्वाद दे सकूं। और एक बार तुम्हें चुप होने का आनन्द आ जाये, तो तुम कहीं भी चुप हो सकते हो। कुछ मुझसे पूछने की जरूरत नहीं है, किसी और से पूछने की जरूरत नहीं है। जब जहां बैठ गये, वहीं मधुशाला है। तब जहां मौन हो गये, वहीं द्वार खुल गये।

मत चिन्ता करो प्रश्नों की, मत चिन्ता करो उत्तरों की। हां, पूछते रहो जब तक मैं हूं। क्योंकि अभी तुम्हें अपनी चुप्पी का अनुभव नहीं है। अगर मैं चुप हो जाऊं, तुम्हारे भीतर का जो घनचक्कर है, वह अपना काम शुरू कर देगा।

यह केवल मेरी एक विधि है, और इस विधि को बहुत गलत समझा गया है। लोग समझते हैं कि मैं तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर दे रहा हूं। मैं तो सिर्फ तुम्हारे प्रश्नों के बहाने तुम्हें चुप होने का संकेत कर रहा हूं। इसलिए जिन लोगों ने मुझे नहीं सुना है उन्हें बड़ी अड़चन होती है। क्योंकि मैं एक ही प्रश्न के हजारों तरह से उत्तर दे चुका हूं। यह प्रश्न और उत्तर तो केवल खेल है। उनके लिए गम्भीरता हो जाती है, कि ये दो उत्तर विरोधी हो गये। मुझे उनके विरोधी होने की चिन्ता नहीं है। और मैं याद भी नहीं रख सकता कि तीस सालों में मैंने किस प्रश्न का क्या उत्तर दिया। तुम पूछते हो तो जो मेरी मौज में आता है, वह मैं कह देता हूं। मतलब कुछ और है; मतलब यह है कि तुम चुप हो जाओ, कम से कम मुझे सुनने को ही चुप हो जाओ। उतनी ही देर को चुप्पी तुम्हारे भीतर एक सन्नाटे की लकीर खींच दे। शायद पकड़ लो तुम उस लकीर को, और कभी अकेले में, रात के अंधेरे में अपने बिस्तर पर बैठे-बैठे, उसी लकीर के सहारे दूर गहराई-- अपनी अन्तरात्मा में, अपने शून्य में उतार ले जाये।

जिस दिन तुम शून्य हो गये उस दिन तुम सब हो गये। मेरे लिए शून्यता दिव्यता है। और शून्य तुम तभी हो सकोगे, जब तुम्हें थोड़ा रस लग जाये। और कभी-कभी रस लगाने के लिए ऐसे आयोजन करने पड़ते है, जिनका सीधा-सीधा संबंध दिखायी नहीं पड़ता।

मैंने सुना है, एक आदमी के घर में आग लग गयी। उसके छोटे-छोटे बच्चे थे। पत्नी उसकी मर गयी थी। वे बच्चे इतने छोटे थे कि वे घर में उठती हुई चारों तरफ की लपटों को खिलवाड़ समझे। वे नाचें और कूदें। उन्होंने यह मौज कभी न देखी थी। दीवालियां तो देखीं थी, मगर यह दीवाली गजब की थी। सारा गांव इकट्ठा है और चिल्ला रहा है कि बाहर आ जाओ नालायको, मर जाओगे। यह कोई दीवाली नहीं है। यह तुम नाच रहे

हो उचक रहे हो। तभी उनका पिता गांव के शहर से वापस लौटा। लोगों ने उससे कहा कि तुम्हारे बच्चे बाहर नहीं निकल रहे। वे आनंदित मालूम होते हैं। हमारी समझ के बाहर है। हमने बहुत समझाया कि आग लगी है, मगर इतना शोरगुल है और इतनी भीड़-भाड़ है कि पता नहीं, हमारी आवाज भी वे समझ पाते हैं या नहीं समझ पाते हैं। और वे अपने में ऐसे मग्न हैं, और आग की लपटें इतनी बढ़ गयी हैं।

बाप मकान के थोड़े करीब आया और एक खिड़की के पास से उसने चिल्लाकर कहा कि अरे पागलो, तुम भीतर क्या कर रहे हो? तुमने जो खिलौने बुलाये थे, वे मैं सब ले आया हूं। सारे बच्चे भागकर खिड़की के पास आ गये। उसने एक-एक को खिड़की के बाहर निकाल लिया। और बच्चे पूछने लगे, खिलौने कहां हैं? उसने कहा, खिलौने तो मैं नहीं लाया लेकिन तुम्हें बाहर निकालने का इसके सिवाय कोई उपाय न था। खिलौने कल ले आऊंगा। लेकिन पागलो, यह कोई खेल नहीं है, यह आग लगी है। घर जल रहा है, तुम इसमें सब जलकर मर जाते। तुम मेरे झूठ के लिए मुझे माफ कर देना। लेकिन मेरा झूठ हजार सत्यों से ज्यादा कीमती है।

तो यह सवाल नहीं है कि तुम्हारा सवाल क्या है, और यह सवाल नहीं है कि मेरा जवाब क्या है। सवाल यह है कि क्या मेरे सवाल और जवाब के बीच तुम उस खिड़की के पास आ गये हो, जहां से आग, जो तुम्हारे सारे घर को, सारे जीवन को घेरे है, उसकी लपटों के बाहर निकल आओ थोड़ी देर के लिए। तो तुम मुझे माफ कर दोगे। अगर मैंने कोई ऐसी बात भी कही होगी जो सच न थी, तो तुम मुझे माफ कर दोगे। क्योंकि तुम समझोगे कि मैंने बात, तुम आग के बाहर आ जाओ इसलिए कही थी।

न तो प्रश्नों में कोई प्राण है, न उत्तरों में कोई प्राण है। प्राण है तो उस सन्नाटे में, जो दोनों के पार है।

प्रश्न : प्यारे भगवान श्री, कल ही मैंने पहली बार आपका प्रवचन सुना। आपमें जो संगम मैंने देखा है, वैसा संगम शायद ही पृथ्वी पर कभी हो। मैंने ऐसा जाना, कि शायद परमात्मा आपके द्वार पहली बार हंसा है।

यह हमारा दुर्भाग्य है कि हमने उदासी को, गम्भीरता को, आत्म-उत्पीड़न को साधुता समझा है। जो अपने को जितना सताये उतना बड़ा सन्त हो गया। हमने, जीवन का जिन्होंने विरोध किया है, उनकी पूजा की है। हालांकि हम उनका अनुसरण तो न कर

सके, क्योंकि जीवन के विरोध में जाना कुछ आसान नहीं। लेकिन हमने उनकी पूजा करके अपने को विषाक्त जरूर कर लिया।

और आज तक मनुष्य-जाति के इतिहास में एक अत्यन्त मूढ़ता से भरा हुआ खेल जारी रहा। हम आदर देते रहे उन लोगों को, जो जीवन से दूर हटते गये। और हमारे आदर के कारण वे जीवन से और भी दूर हटते गये क्योंकि आदर का मजा उनके अहंकार की तख्ती बनता गया। वे सूखकर हड्डियां हो गये। जीवन के सारे रस उन्होंने न केवल छोड़ दिये, बल्कि शिक्षा भी देने लगे कि दूसरे भी छोड़ दें। एक जीवन-निषेधात्मक आन्दोलन मनुष्य-जाति को अब तक घेरे रहा है। उसके जो दुष्परिणाम होने थे, वे हुए। जिनको हमने सन्त बना दिया उनके अहंकार की पूजा हो गयी। और अहंकार सिवाय नर्क के और कुछ भी नहीं है। और चूंकि उनके जीवन-निषेध ने अहंकार की तृप्ति दी, वे जितनी निन्दा हमारी कर सके, क्योंकि हम अब भी जीवन में रस ले रहे थे... उन्होंने हमारे सारे रस को विषाक्त कर दिया।

मैं निश्चित रूप से ही धर्म को विषाद से, आत्म-उत्पीड़न से, स्वयं को सताने से हटाकर आनंद का एक उत्सव बनाना चाहता हूं। मैं चाहता हूं कि जीवन हंसे, और ऐसा हंसे, कि हजार-हजार फूल बरसें। जीवन में कुछ भी नहीं है जो निन्दा के योग्य है। और जीवन में ऐसा कुछ नहीं है जिसे छोड़कर भागने की जरूरत है। हां, जीवन में ऐसा बहुत कुछ है, जो छिपे हुए खजाने की तरह है। या ऐसा है जैसे खदान से निकाला हुआ सोना हो। उसकी सफाई की जरूरत है, उस पर निखार लाना है, उसको चमक देनी है।

और धर्म और जीवन दो विपरीत आयाम न हों बल्कि एक ही संयुक्त धारा हो। धर्म नाच सके, हंस सके, गीत गा सके। धर्म उनकी पूजा में, जिनकी कुल कला अपने को सताने में समाप्त हो जाती है, बंधा हुआ न रह जाये। जिनको तुम सन्त कहते हो उनके मनोवैज्ञानिक इलाज की जरूरत थी, तुमने उनकी पूजा की है। भविष्य तुम पर हैरान होगा। तुमने विक्षिप्त लोगों की, बजाय चिकित्सा के, उनकी शिक्षाओं को ग्रहण करने की कोशिश की। एक स्वस्थ धर्म, एक स्वस्थ जीवन, विरोधी नहीं हो सकता। वे दोनों एक गाड़ी के दो पहियों की भांति होंगे। उनमें से एक भी पहिया खो गया तो गाड़ी की गति रुक जायेगी। और अब तक यही हुआ। सन्तों के हाथ में एक पहिया था, और उनके पूजकों के हाथ में एक पहिया था; तो गाड़ी चली ही नहीं, अटक कर खड़ी हो गयी।

तुम्हारा प्रश्न समुचित है। मेरी चेष्टा यही है कि दोनों पहिये फिर जुड़ जायें और जीवन की गाड़ी फिर गीत गा सके, नाच सके, आल्हादित हो सके। यह अस्तित्व– थोड़ा अपने

चारों तरफ तो देखो– इतने फूलों से भरा है। यह सागर– इसकी लहरों को तो देखो। यह आकाश– इसके सितारों को तो देखो। इनमें तुम्हारा एक भी साधु न मिलेगा और एक भी सन्त न मिलेगा।

मैं तुम्हें इस विराट अस्तित्व के एक अंग की तरह जुड़ा हुआ देखना चाहता हूं, लहरें उठती हुई देखना चाहता हूं। निन्दा का स्वर समाप्त हो और निन्दा का युग समाप्त हो। दमन की परम्परा समाप्त हो और जीवन का उल्लास हमारा भविष्य बने।

जो समझ सकते हैं, वे मेरी बात को प्रेम करेंगे। जो नहीं समझ सकते हैं, वे मेरी बात के दुश्मन हो जायेंगे। और नासमझों की भीड़ है। सुशिक्षित हैं, पढ़े-लिखे हैं, थोथे ज्ञान से भरे हैं, लेकिन समझ की एक जरा-सी किरण भी नहीं। सारी दुनिया में घूमकर मैं यह देखने की कोशिश करता रहा, कि जिस आदमी के लिए मैं नया आदमी बनाना चाहता हूं, वह आदमी सुनने को भी राजी नहीं है, कि मेरी बात को दूसरे लोग सुन सकें। यह मेरी पराजय नहीं है, यह उसकी पराजय है।

आज दुनिया के सारे बड़े देशों ने अपनी-अपनी पार्लियामेंट में मेरे लिए नियम बनाकर रखा है कि मैं उनके देश में प्रवेश नहीं कर सकता। न मैंने उनके देश में कभी प्रवेश किया है, और न मैंने उनके देश के कोई कानून तोड़े हैं, न मैंने उनके देश के विधान के खिलाफ़ कुछ किया है। मैं वहां कभी गया ही नहीं। ऐसे-ऐसे देशों की पार्लियामेंट में मेरे खिलाफ़ उन्होंने नियम बनाया है जिन देशों के नाम भी मैंने कभी नहीं सुने थे। पहली बार ही नाम सुने।

क्या घबराहट है? कैसी घबराहट है? और तुम्हारा देश है, तुम्हारी भीड़ हैं, मैं अकेला आदमी हूं। अगर मैं गलत हूं तो मुझे गलत कहो, और अगर मैं सही हूं तो कम से कम इतनी निष्ठा तो अपनी बुद्धि की दिखाओ, कि सत्य को स्वीकार करो। लेकिन वहीं अड़चन है। उनको भी दिखायी पड़ रहा है कि उनके पैरों के नीचे जमीन नहीं है। और वे नहीं चाहते कि कोई आदमी आकर उनको बताये कि तुम्हारे पैरों के नीचे जमीन नहीं है। उनको भी मालूम हो रहा है कि वे तिनकों के सहारे बचने की कोशिश कर रहे हैं। और इसलिए घबराहट होती है कि कोई आदमी आकर कहीं यह न कह दे, कि यह तुम क्या कर रहे हो? यह तिनकों के सहारे तुम बच न सकोगे। इन तिनकों को भी ले डूबोगे।

दुनिया का यह चक्कर मेरे लिए बहुत महत्वपूर्ण रहा। और भी चक्कर मैं जारी रखूंगा क्योंकि सरकारें बदलेंगी, पार्लियामेंटें बदलेंगी... और मेरे संन्यासी हर पार्लियामेंटों में तय किये गये नियमों के खिलाफ अदालतों में मुकदमे लड़ रहे हैं। क्योंकि इससे ज्यादा

बेहूदी कोई बात नहीं हो सकती कि एक आदमी जो कभी तुम्हारे देश में ही न आया हो, उस पर तुम किस इल्जाम में देश में आने पर रुकावट डाल सकते हो? मगर उनकी मुसीबत मैं समझता हूं। क्योंकि बुद्ध कभी बिहार के बाहर नहीं गये, मोहम्मद ने कभी अरब नहीं छोड़ा। उपनिषद के ऋषि अपने-अपने गुरुकुलों में निवास किये। नहीं तो उन सबको इन्हीं तकलीफों का सामना करना पड़ता।

इस अर्थों में मैं एक नये युग का आरम्भ कर रहा हूं। अब जिस व्यक्ति को भी सत्य की बात करनी हो, उसे पूरी मनुष्य-जाति के समक्ष अपने सत्य को पेश करने की चेष्टा करनी चाहिए। उसी चेष्टा में बहुत कुछ निश्चित हो जायेगा।

सारी दुनिया के देश अपने को लोकतंत्र सिद्ध करते हैं और बोलने की स्वतंत्रता को बहुत बड़ा आदर देते हैं। और मैं उनसे कुछ और नहीं मांग रहा था, और कुछ हमेशा के लिए रहने के लिए नहीं मांग रहा था। तीन सप्ताह किसी देश में बोलने का हक चाहता था। और वे इतनी भी हिम्मत न जुटा सके, कि तीन सप्ताह मुझे सुन सकते। साफ है, कि जाने-अनजाने उन्हें अपनी कमजोरी का भलीभांति पता है। यह भी साफ है कि मैं तीन सप्ताह में उनके दो हजार वर्षों में बनाये गये नियमों, धर्मों, नैतिकताओं को मिट्टी में मिला सकता हूं। क्योंकि उनमें कोई प्राण नहीं हैं। और यह मैं नहीं कह रहा हूं, यह वे खुद ही स्वीकार कर रहे हैं।

यूनान में एक युवा संन्यासिनी ने– जो कि प्रेसिडेंट के बहुत करीब है, और जिसने प्रेसिडेंट को चुनाव में जिताने में हर तरह से कोशिश की है--- क्योंकि संन्यासिनी एक अभिनेत्री है और उसका प्रभाव है यूनान में- उसने प्रेसिडेंट को मुझे चार सप्ताह के लिए यूनान प्रवेश के लिए राजी कर लिया। यूनान के सबसे बड़े फिल्म डाइरेक्टर के पास एक बहुत सुन्दर और बहुत प्राचीन, समुद्र के किनारे बना हुआ महल है। उस महल में मैं दो सप्ताह रहा। मैं तो महल के बाहर गया भी नहीं। लेकिन दो सप्ताह के भीतर यूनान के चर्च की जड़ें कैसे हिलने लगीं, यह भी मेरी समझ में न आया। क्योंकि मैं यूनानी भाषा नहीं बोलता। और जो लोग मुझे सुनने आते थे उस महल में, उनमें यूनानियों में सिर्फ मेरे संन्यासी थे, जो कि मुझे सुन ही चुके थे और मेरे संन्यासी थे। और, या यूरोप से अलग-अलग देशों से और संन्यासी आये थे। उनको भी बिगाड़ने का कोई सवाल न था, मैं उन्हें बिगाड़ ही चुका था।

यूनान के आर्च बिशप ने धमकी दी प्रेसिडेंट को, कि अगर मुझे इसी समय– दो सप्ताह वहां रहने के बाद, इसी समय– अगर यूनान के बाहर नहीं किया जाता, तो जिस

महल में मुझे रखा गया है और जहां और बहुत-से संन्यासी ठहरे हुऐ हैं, हम उस महल को उन सारे लोगों के साथ जिन्दा जला देंगे। ये बीसवीं सदी के हैं! और ये ईसाइयत के वचन हैं। और ईसाइयों का सबसे बड़ा पुरोहित यूनानी है। और चर्चों में शिक्षाएं दी जाती रहेंगी कि अपने दुश्मन को प्रेम करो। और जो तुम्हारे गाल पर एक चांटा मारे, तुम उसे दूसरा गाल भी दे दो।

मैंने यूनान के प्रेसिडेंट को खबर भेजी, कि अभी मैंने पहला चांटा भी नहीं मारा। रही दुश्मनी का बात; मैं इस आदमी को जानता भी नहीं। दोस्ती भी नहीं है, दुश्मनी तो दूर। और जिन्दा जला देने की बात उन लोगों के मुंह से, जो ईसा को सूली पर चढ़ा देने का इतना विरोध करते रहे हैं दो हजार साल तक, शोभा नहीं देती। और वह भी उस आदमी को, जिसने न यूनान में भ्रमण किया है, न लोगों को कुछ कहा है, न तुम्हारे चर्चों में गया है, न कोई उपद्रव किया है। लेकिन राजनीतिज्ञ राजनीतिज्ञ हैं, उनकी घबराहटें उनकी हैं।

मुझे उसी वक्त यूनान छोड़ने के लिए मजबूर किया गया। मैं सो रहा था दोपहर को, मुझे सोते में गिरफ्तार किया गया। एक युवती जो मेरी सेक्रेटरी थी यूनान में, उसने कहा कि कम से कम मुझे उन्हें उठा देने दो। वे अपना हाथ-मुंह धो लें, कपड़े बदल लें, तो उसे धक्के मारकर, सड़क पर घसीट कर, कार में लादकर पुलिस स्टेशन भेज दिया। और जब मैं उठा, तो मेरी कुछ समझ में न आया कि बात क्या है, हो क्या रहा है? क्योंकि सारा मकान पुलिस से घिरा है, और पुलिस के लोग बड़ी-बड़ी चट्टानों को उठाकर सदियों पुरानी कीमती खिड़कियों को फोड़ रहे हैं, दरवाजों को तोड़ रहे हैं। मैं ऊपर की मंजिल पर था। मुझे तो ऐसा लगा कि जैसे कोई नीचे बम फोड़ रहा हो। तुम्हारे पास मुझे गिरफ्तार करने का कोई वारंट है? न उनके पास कोई वारंट है, न मकान में प्रवेश का कोई वारंट है। उनमें से सिर्फ एक ने कहा कि हमारे पास कुछ भी नहीं है सिवाय इसके, कि प्रेसिडेंट का फोन है, कि मुझे इसी वक्त यूनान की जमीन के बाहर कर दिया जाये। क्योंकि हम आर्च बिशप की धमकी से भयभीत हैं। इलेक्शन करीब हैं, और अगर ईसाई विरोध में हो गये, तो हमारी पार्टी का जीतना मुश्किल है।

लोगों को न सत्य से मतलब है, न असत्य से मतलब है; न आदमी से मतलब है, न उसकी आदमियत से मतलब है। रास्ते में मुझे एयरपोर्ट ले जाते वक्त उन्होंने कागजात दिये, जिनमें वे मुझसे दस्तखत कराना चाहते थे। उन कागजों में यह लिखा हुआ था कि मैं यूनान से निष्कासित किया जा रहा हूं, क्योंकि मेरी उपस्थिति यूनान में यूनान के धर्म, नैतिकता, उसकी परम्पराएं, उसकी संस्कृति के लिए खतरा है।

मैंने उनसे कहा कि यह मेरे लिए सर्टिफिकेट है। तुम दो हजार सालों में जिन चीजों को बना पाये हो, उन्हें अगर मैंने दो सप्ताह में खत्म कर दिया हो, और दो सप्ताह और बचे हैं मेरे, तो तुमने जो बनाया है वह रेत का महल है। मैं फिर लौटकर आऊंगा। क्योंकि जो चीज इतनी सड़ी-गली है, कि उसके ठेकेदार उसके मिटने से इतने डरे हुए हैं, उस सड़ी-गली चीज को मिटा देना ही अच्छा है।

जिस गांव, निकोलस नाम के द्वीप पर मैं ठहरा था, उस गांव के लोगों ने खबर भेजी, कि हम क्या कर सकते हैं? हम गरीब लोग हैं। मैंने उनसे कहा कि तुम सब कम से कम इतना कर सकते हो, कि निकोलस के सारे लोग एयरपोर्ट पर मुझे विदा देने को इकट्ठे हों, ताकि आर्च बिशप को यह पता चल जाये कि कौन आर्च बिशप के साथ है और कौन मेरे साथ है। हालांकि तुम मुझे नहीं जानते, और न ही तुम मुझे पहचानते हो, न ही तुमने मुझे सुना है।

मैं खुद भी चकित हुआ। पुलिस के लोग चकित हुए। क्योंकि निकोलस की पूरी आबादीः तीस हजार लोग एयरपोर्ट पर मौजूद थे, और केवल छह बूढ़ी औरतें चर्च में मौजूद थीं। और चर्च में विजय की घंटियां बजायी जा रही थीं, क्योंकि निकोलस के चर्च के अधिकारियों को खबर दी गयी थी, कि जब मुझे निष्कासित किया जाये, तो यह एक बड़े विजय की बात समझी जाये, कि हमने एक संस्कृति, धर्म और हमारी परम्पराओं के दुश्मन को पराजित कर दिया।

मैंने पुलिस के प्रधान को कहा, कि तुम थोड़ा अपने आर्च बिशप को जाकर कहना कि ये छह बूढ़ी औरतें– और हो सकता है ये सभी खरीदी हुई हों– और नगर के तीन हजार लोग एयरपोर्ट पर मुझे विदा दे रहे हैं, और उन घंटियों पर हंस रहे हैं। उनसे कह देना कि इन छह औरतों के बलबूते पर तुम चर्च को टिका न सकोगे। यह चर्च गिर गया।

पुराना धर्म अपने आप गिरने को तैयार है, सिर्फ तुम्हारे धक्के देने की जरूरत है। और वह धर्म कोई तुम्हारे बाहर नहीं है, तुम्हारे भीतर का कचरा है। निकाल कर बाहर फेंक दो, वह समाप्त हो जायेगा। और एक ऐसे धर्म की घोषणा होनी जरूरी है जो गीत गा सकता हो, जो हंस सकता हो, जो आनंदित हो सकता हो, जो जीवन का रस ले सकता हो। अगर परमात्मा को जीवन को बनाये रखने में रस है, तो उन महात्माओं को रोकना ही होगा, जो जीवन के विरोध में विष फैलाने की कोशिश कर रहे हैं।

धन्यवाद।
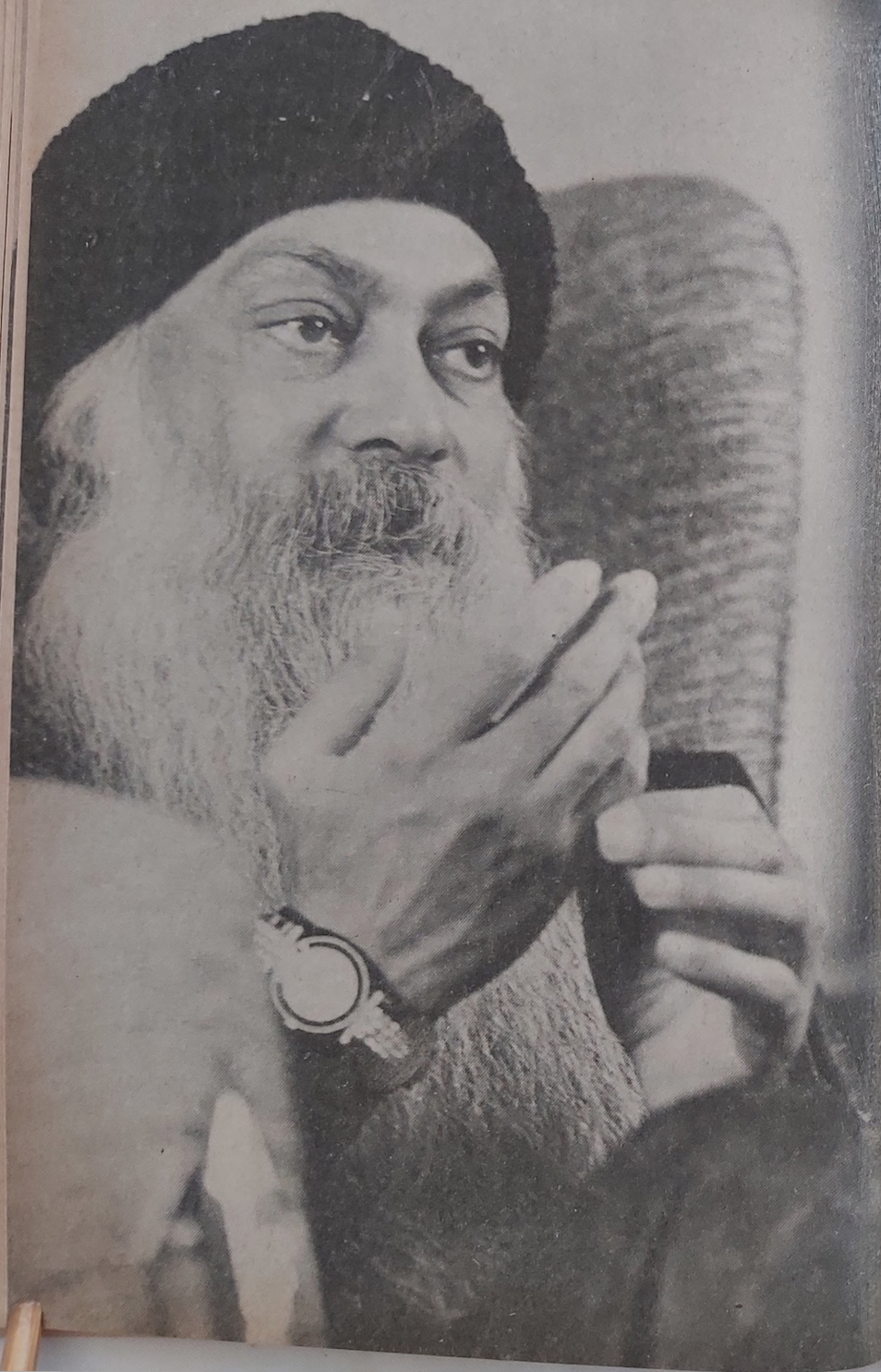
सद्‌गुरु शिष्य की मृत्यु है

आठवां प्रवचन : ६ अगस्त, १९८६, ७.०० संध्या, सुमिला, जुहू, बम्बई

प्रश्न : भगवान, एक शिष्य ने सद्‌गुरु से पूछा, मैं आपसे एक प्रश्न करूं? सद्‌गुरु ने उत्तर दिया, व्हाई यू वान्ट टू वुण्ड योरसेल्फ? क्यों तुम अपने को घाव करना चाहते हो? भगवान, कृपया इसका अर्थ समझायें।

सद्‌गुरु का अर्थ ही यही है कि जिसकी उपस्थिति में, जिसके सत्संग में शिष्य धीरे-धीरे पिघलते-पिघलते मिट जाये। सद्‌गुरु शिष्य की मृत्यु है। और इसलिए शिष्य होने का हकदार वही है, जिसमें मिट जाने का साहस है। मिटकर ही कुछ बचता है। सच कहो तो मिटकर ही जो बचता है, वही बचाने योग्य है। जो मिट जाता है वह मिट ही जाना चाहिए। व्यक्ति के भीतर बहुत कुछ है, जो कूड़ा-कचरा है। और लोग उस कूड़-कचरे को ही अपना होना समझ लेते हैं। ऐसे हीरे तो खो जाते हैं और कीचड़ में ही जिन्दगी बीत जाती है। जिसे तुम व्यक्तित्व कहते हो, वह तुम नहीं हो। और जो तुम हो, उससे तुम्हारी कोई पहचान नहीं। और जब तक तुम्हारी पुरानी पहचान न तोड़ी ज़ाये, नई पहचान बनाने का कोई उपाय नहीं।

इस दुनिया में सद्‌गुरु सबसे ज्यादा खतरनाक आदमी है। कहीं सद्‌गुरु से मिलना हो जाये तो जितने जोर से भाग सको, भागना। पीछे लौटकर भी मत देखना। हां, अगर हिम्मत हो, प्यास हो, खोज हो, तलाश हो, जानने की जिद्द हो कि मैं कौन हूं और क्यों

हूं, तो फिर सद्‌गुरु के चरण पकड़ लेना, छोड़ना मत।

यह छोटा-सा प्रश्न – शिष्य का पूछना कि 'क्या मैं एक प्रश्न पूछूं,' अनुचित तो नहीं है, लेकिन गुरु ने जो कहा, उसमें उत्तर छिपा है। जब तक पूछने वाला है तब तक सुनने वाला कहां से लाओगे? और जब तक तुम्हारे भीतर प्रश्नों की भीड़ है तब तक वह सन्नाटा, वह शांति, जो उत्तर बन जाती, उसे कहां खोजोगे? इस दुनिया में गुरु हैं; थोड़े ही नहीं, जरूरत से ज्यादा हैं और तुम पूछो या न पूछो, वे तुम्हारे पीछे पड़े हैं कि उत्तर देकर ही रहेंगे। जबरदस्ती ज्ञान ठूंस-ठूंस कर हर बच्चे में भरा जा रहा है। इससे बड़ा कोई और दूसरा अन्याय नहीं है। यह वैसे है, जैसे तुम्हें प्यास न लगी हो और जबरदस्ती पानी पिलाया जाये; भूख न लगी हो, और जबरदस्ती ठूंस-ठूंस कर भोजन कराया जाये।

हर बच्चा एक कोरे आकाश की तरह पैदा होता है। लेकिन मां-बाप को जल्दी है, धर्मगुरुओं को जल्दी है, पड़ोसियों को जल्दी है, कि कहीं यह कोरा आकाश कोरा न रह जाये। इसे भर दो शास्त्रों से, शास्त्रीय वचनों से, जिनका तुम्हें कोई अनुभव नहीं। जो तुम्हारे बाप-दादे तुम्हारे ऊपर थोप गये थे, वही तुम अपने बच्चों पर थोपते हो। यूं पीढ़ी-दर-पीढ़ी बीमारियां, झूठा ज्ञान सरकता रहता है। और जब मैंने कहा 'झूठा ज्ञान', तो मेरा मतलब है, जो तुम्हारा अपना अनुभव नहीं वह सब झूठा है। तुमने लाख प्रेम की किताबें पढ़ी हों, और तुमने लाख प्रेम के गीत सुने हों, लेकिन अगर प्रेम कभी तुम्हारे हृदय में लहरें न लिया हो और प्रेम ने कभी तुम्हारी आंखों को मस्ती न दी हो, तो तुम जो भी कहोगे वह कितना ही सच मालूम पड़े, बेजान है, मुर्दा है। अज्ञानी होना बेहतर है झूठे ज्ञानी होने की बजाय।

सद्‌गुरु को खोजना मुश्किल है। गुरु तो सस्ते में मिल जाते हैं। एक ढूंढो, हजार मिल जाते हैं। मत ढूंढो, वही तुम्हें ढूंढते चले आते हैं। लेकिन सद्‌गुरु का अर्थ है कि तुम्हारे भीतर प्यास लगी है। ऐसी प्यास, कि अगर प्राण भी उस प्यास को बुझाने में देने पड़ें, तो तुम देने को राजी हो।

इसलिए जब शिष्य ने पूछा कि क्या एक प्रश्न पूछूं, तो गुरु ने कहा, क्यों अपने लिए घाव की तलाश करते हो? मेरा एक-एक शब्द, एक-एक तीर की तरह तुम्हारे भीतर चुभ जायेगा। तुम्हारा पूछना तुम्हारे मरने की शुरुआत है। हो हिम्मत, तो पूछो। क्योंकि मैं तुम्हें कोई बंधे-बंधाये उत्तर देने वाला नहीं हूं। मैं तो सिर्फ उस रास्ते को तुम्हें बता दूंगा, जहां आदमी का सब कूड़ा-करकट झड़ जाता है, जहां उधार ज्ञान गिर जाता है, जहां अहंकार और उपाधियां, पदवियां और प्रतिष्ठाएं मिट्टी हो जाती हैं। जहां एक दिन तुम सिवाय

एक शून्य के और कुछ भी नहीं रहते हो।

लेकिन यह कहानी अधूरी है। यह कहानी एक तरफ से है। यह कहानी का एक पहलू है। इधर तुम शून्य होते हो और उधर तुम्हारे भीतर कुछ पूर्ण होने लगता है। इधर तुम मिटते हो, उधर तुम्हारे भीतर कुछ उघड़ने लगता है। इधर घाव बनते हैं, उधर फूल भी खिलने लगते हैं। लेकिन घाव पहले बनते हैं, फूल पीछे खिलते हैं। और सद्‌गुरु ने नहीं कहा कुछ भी फूलों की बाबत, क्योंकि हम ऐसे लोभी हैं कि फूलों के लोभ में घाव भी खाने को राजी हो सकते हैं। लेकिन अगर लोभ के कारण हमने घाव भी खा लिये तो फूल नहीं खिलेंगे। इसलिए सिर्फ इतना ही कहा है, कि क्यों व्यर्थ घाव की तलाश करते हो?

सद्‌गुरु के पास पूछते-पूछते सिवाय मिटने के और कुछ भी नहीं होता। और जब तुम्हारे भीतर एक भी प्रश्न नहीं रह जाता, सारे प्रश्न गिर जाते हैं तो उस मौन में जो कमल खिलते हैं, उनकी सुगंध शाश्वत है। वही तुम्हारे जीवन की सुगंध है। वही तुम्हारे होने का अर्थ है। उसे नहीं पाया, तो सिर्फ धक्के खाये और फिजूल जीये। समझे कि जीये, जीये नहीं। मैंने सुना है कि बहुत लोगों को सिर्फ मरने के वक्त ही पता चलता है कि अरे, हम जिन्दा भी थे! मगर अब बहुत देर हो गयी।

तुम जरा अपनी जिन्दगी को तो गौर से देखो। उसमें है क्या? न तो कोई आनंद है, न तो कोई संगीत है, न तो कोई तारे, न कोई फूल, न कोई पंख, कि तुम आकाश में उड़ सको। नींद में धक्के खाते हुए व्यर्थ का कूड़ा-करकट इकट्ठे करते हुए – क्योंकि दूसरे भी यही कर रहे हैं। लोगों को इसकी फिक्र ही नहीं है कि तुम जो कर रहे हो वह क्यों कर रहे हो? अगर तुम अपने से पूछोगे, तो सिर्फ एक ही उत्तर पाओगे – क्योंकि सभी यही कर रहे हैं।

मैं विश्वविद्यालय में शिक्षा के लिए भर्ती हुआ। मुझे स्कालरशिप चाहिए थी। बजाय लम्बे रास्तों के, मैं सीधे वाइस चांसलर के दफ्तर में पहुंच गया। वाइस चांसलर ने कहा, यह ठीक नहीं है, जहां दरख्वास्त देनी है वहां दरख्वास्त दो, और समय पर तुम्हें उत्तर मिल जायेगा। मैंने कहा, अंततः आपको निर्णय करना है। व्यर्थ समय क्यों खोना? इसलिए मैं सीधा आपके पास ही चला आया हूं। यह रही दरख्वास्त। और मैं नहीं कहता कि स्वीकार करो। जो तुम्हारी मर्जी हो। हकदार मैं हूं। वह इस दरख्वास्त में सब लिखा हुआ है। और अगर कल कोई मुझसे बड़ा हकदार आ जाये, तो मुझे खबर करके बुलवा लेना। स्कालरशिप वापस कर दूंगा। झंझट क्या है?

उसे भी लगा कि लड़का थोड़ा अजीब है। और इसके पहले कि वह कुछ कहे, मैं

आराम से कुर्सी पर बैठ गया। उसने कहा, यह बात ठीक नहीं। मैंने कहा, गलती तुम कर रहे हो और बात ठीक मेरी नहीं? इतनी देर से मैं खड़ा हूं और तुम कुर्सी पर बैठे हो। तुम्हें कहना चाहिए था कि कुर्सी पर बैठो। तुम कुछ कहते नहीं, कुर्सी कुछ कहेगी नहीं, इधर और कोई दिखाई पड़ता नहीं। मजबूरी में निर्णय मुझे खुद करना पड़ा। मैं कुर्सी पर बैठ गया हूं।

उसने कहा, तुम आदमी अजीब मालूम पड़ते हो। क्या मैं पूछ सकता हूं, यह तुमने दाढ़ी क्यों बढ़ा रखी है? मैंने कहा, अब थोड़ी बातचीत हो सकती है। अब आप मेरे चक्कर में आ गये। स्कालरशिप का निर्णय हो लेगा, हो लेगा। बूढ़े आदमी थे। आक्सफोर्ड में इतिहास के प्रोफेसर थे। उसके बाद जब रिटायर हुए, तो हिन्दुस्तान की उस यूनिवर्सिटी में वाइस चांसलर हो गये थे। मैंने उनसे पूछा, यह भी हद हो गयी! अगर मैं आपसे पूछूं कि दाढ़ी क्यों कटाते हैं, तो प्रश्न सार्थक मालूम होता है। आप उल्टे मुझसे पूछ रहे हैं कि दाढ़ी क्यों बढ़ाते हो? मैं नहीं बढ़ाता, दाढ़ी बढ़ रही है। सवाल मैं वापिस लौटकर आपसे पूछता हूं, कि दाढ़ी क्यों कटी? आपकी दाढ़ी और मूंछ को क्या हुआ? कहने लगे, यह बड़ी मुश्किल है, मगर बात तुम्हारी ठीक है। दाढ़ी बढ़ती है अपने आप; काटता मैं हूं रोज दिन में दो बार, मगर क्यों काटता हूं, यह कभी सोचा नहीं। और सभी लोग काटते हैं इसीलिए काटता हूं।

मैंने कहा, यह तो कोई बहुत विचारपूर्ण उत्तर न हुआ। इस दुनिया में नालायकों की भीड़ है और तुम उन्हीं नालायकों की भीड़ का अनुसरण कर रहे हो। और चूंकि मैंने अनुसरण नहीं किया उनका, तुम मुझसे उत्तर पूछ रहे हो। अब दुबारा दाढ़ी मत छूना। और मैं रोज आकर देख जाया करूंगा। मैंने कहा, थोड़ा सोचो तो। अगर स्त्रियां दाढ़ी बढ़ाने लगें और मूंछें बढ़ाने लगें, या रामलीला में बिकने वाली मूंछें खरीद लायें और दाढ़ी चिपका लें, तो क्या खूबसूरत लगेंगी? और तुम बारहमहीने रोज सुबह-सांझ दाढ़ी और मूंछ को काटकर वही कर रहे हो, जो कोई स्त्री दाढ़ी और मूंछें बढ़ाकर करे।

इस बूढ़े आदमी ने मुझसे कहा, माफ करो मुझे। स्कालरशिप तुम्हारी स्वीकार हुई, मगर रोज मत आना। और अब इस बुढ़ापे में दाढ़ी मत बढ़वाओ। क्योंकि अभी तुम अकेले पूछने वाले हो। अगर मैं दाढ़ी और मूंछ बढ़ाऊंगा तो पूरी यूनिवर्सिटी पूछेगी कि क्या हुआ, आप दाढ़ी और मूंछ क्यों बढ़ा रहे हैं? मत झंझट में मुझे डालो। लेकिन उस आदमी को चोट लग गयी। उस आदमी ने फिर दाढ़ी-मूंछ नहीं काटी। सारी यूनिवर्सिटी पूछती थी और वह कहता था, कि उस लड़के से पूछ लेना। सारा राज उसे मालूम है।

चारों तरफ हजारों लोग हैं और तुम उनका अनुसरण कर रहे हो। और इसी अनुसरण से तुम्हारे व्यक्तित्व का निर्माण हो रहा है। और इसी व्यक्तित्व को तुम अपनी आत्मा समझे हुए हो।

सद्गुरु का काम होगा, कि सबसे पहले यह चादर उतार ले। तुम्हें नग्न कर दे। तुम्हें वहां पहुंचा दे, जहां तुम्हारे ऊपर कोई दाग नहीं। तुम्हें वैसा ही कर दे, जैसे तुम पैदा हुए थे – खाली, निर्दोष, शून्य।

सिर्फ सूफियों के पास एक किताब है जिसे धर्मग्रंथ कहा जा सकता है; और किसी के पास नहीं। लेकिन उस किताब में कुछ लिखा नहीं है। किताब खाली है। पन्ने कोरे हैं। और सूफी उसे बड़ा संभाल कर रखते हैं।

सद्गुरु से प्रश्नों को पूछ-पूछ कर यह मत समझना, कि तुम धीरे-धीरे उत्तरों के गौरीशंकर बन जाओगे। सद्गुरु से पूछ-पूछ कर, धीरे-धीरे तुम एक कोरी किताब हो जाओगे। और जिस दिन तुम कोरी किताब हो गये उस दिन जानना, कि अस्तित्व से तुम्हारी पहली मुलाकात हुई। उस दिन जानना कि तुम्हारी आंखों से पर्दा हटा, अंधेरा छंटा, रोशनी हुई, भोर आ गयी।

लेकिन कष्टपूर्ण तो होता है। क्योंकि जिस व्यक्ति को हम अपनी आत्मा समझे हुए हैं, उसका टूट-टूटकर गिरना, उसके अंग-अंग को कटना पीड़ा तो देता है। अहंकार का बिखरना – उससे बड़ा और कोई घाव नहीं है। इसलिए सद्गुरु ने ठीक ही कहा, कि क्यों नाहक अपने को घाव पहुंचवाने की तरकीब कर रहे हो? फिर पीछे मुझे दोष मत देना। फिर एक बार मैंने काम हाथ में लिया तो मैं काम पूरा करके ही रहूंगा।

और कोई प्रश्न एक होता, तो ठीक था। हर आदमी के भीतर एक कतार है प्रश्नों की। एक प्रश्न हटेगा, दूसरा; दूसरा हटेगा, तीसरा। और जब तक सारे प्रश्न समाप्त न हो जायें, तब तक तुम्हारे भीतर ज्ञान का दीया नहीं जलता।

इसलिए लोग गुरुओं से तो बहुत प्रसन्न रहे। क्योंकि गुरु तुम्हारे व्यक्तित्व को और संभालते हैं, संवारते हैं, श्रृंगार देते हैं। लेकिन सद्गुरुओं से लोग बहुत नाराज रहे हैं। सुकरात हों कि जीसस हों, कि अल्लहिल्लाज मंसूर हो, ऐसे लोगों से आदमियों की भीड़ कभी भी प्रसन्न नहीं हुई। हां, जो थोड़े-से लोग हिम्मत कर सके, उनके जीवन में परमात्मा का आलोक फैल गया। लेकिन बहुत थोड़े लोग उतनी हिम्मत रखते हैं। अधिक लोग तो प्रश्न इसीलिए पूछते हैं, कि तुम उनके बंधे-बंधाए उत्तरों को और मजबूत कर दो। तुम वही कह दो, जो वे मानते हैं। तुम उनकी पीठ थपथपा दो। इसलिए

जो जैन धर्म को मानता है, वह जैन गुरु के पास जाता है, वह सूफी फकीर के पास नहीं जाता क्योंकि वहां पीठ नहीं थपथपायी जायेगी। क्योंकि वहां वही उत्तर नहीं दिये जायेंगे, जो वह सुनने का आदी है। हिन्दू हिन्दू गुरु के पास जाता है, मुसलमान मुसलमान गुरु के पास जाता है। कारण? तुम कुछ सुनना चाहते हो ऐसा, जिससे सांत्वना मिले; जिससे मन को ऐसा लगे कि हम ठीक हैं, कि हम जहां हैं और जैसे हैं, बस अब और कहीं जाना नहीं, और कुछ होना नहीं है; जिससे ऐसा लगे, कि हम पहुंच ही गये।

मेरे एक दोस्त थे डाक्टर। उन्होंने एक बहुत बड़ा दवाखाना खोल रखा था। उतने बड़े दवाखाने की कोई जरूरत न थी। और उनका आफिस दवाखाने के पीछे था। पहले मरीज को उनके पूरे दवाखाने, प्रयोगशाला, इन सबसे गुजरकर उन तक पहुंचना पड़ता था। और उनकी प्रयोगशाला देखने योग्य थी। हर चीज के लिए उन्होंने बड़ा अच्छा आयोजन किया था। अगर उन्हें तुम्हारी नब्ज भी देखनी हो, तो वे पुराने ढंग से तुम्हारी नब्ज नहीं देखते थे। तुम्हें लेटना पड़ता एक टेबल पर, जो बिजली के बटनों से सरकायी जाती थीं। और तुम्हारे ऊपर न मालूम कितने रंगों की बोतलें लटकी होती थीं, जिनका कोई मतलब न था। और तुम्हारे हाथ पर एक पट्टी बांधी जाती, और तुम्हारी नब्ज पर एक तार उस पट्टी के भीतर दबाया जाता। और वह तार उन बोतलों में बंधे हुए रंगीन पानी को उचकाता। तुम नीचे पड़े देखते और तुम सोचते, डाक्टर हो तो ऐसा! स्टेथस्कोप से तुम्हारी छाती की जांच नहीं की जाती थी, दूसरे तरह का इंतजाम किया था। भारी इंतजाम किये हुए थे।

मैंने उनसे पूछा भी कि यह सब क्या पागलपन है? उन्होंने कहा, पागलपन नहीं है। मरीज मेरे दफ्तर तक पहुंचते-पहुंचते आधा ठीक हो जाता है। भरोसा आ जाता है, कि कोई छोटे डाक्टर से इलाज नहीं हो रहा है; डाक्टर बड़ा है, वैज्ञानिक है। और सच्चाई यह थी, कि उनके पास डाक्टरी का सर्टिफिकेट भी नहीं था। कभी किसी डाक्टरी स्कूल में गये भी नहीं। मगर ये हरकतें .... । और उन्होंने हर चीज को बिजली से चलाने का इंतजाम कर रखा था। एक जगह से दूसरी जगह मरीज बिजली से सरकाया जाता, चीजें बिजली से सरकतीं, दरवाजे बिजली से खुलते और बन्द होते। और उनकी फीस किसी भी डाक्टर से कम से कम दस गुना ज्यादा थी। जो काम पच्चीस रुपये में हो जाता, उनके वहां दो सौ पचास रुपये लगते थे।

मैंने उनसे पूछा कि यह जरा जरूरत से ज्यादा है। एक तो तुम फिजूल का खेल, यह मदारीगीरी फैलाए हुए हो। नाड़ी हाथ से देखी जा सकती है – ज्यादा सुविधापूर्वक। स्टेथस्कोप आसानी से हृदय की धड़कनें सुन सकती है। इसके लिए इतने बड़े आयोजन की कोई जरूरत नहीं है। और यह सब बिजली का जाल, और दरवाजों का खुलना और बन्द होना, और कुर्सियों का सरकना – इस सबकी कोई जरूरत नहीं है। और फिर दो सौ पचास रुपया फीस। वह कहते, तुम्हें पता नहीं। जितनी ज्यादा फीस लो, मरीज उतने जल्दी ठीक होते हैं। क्योंकि ज्यादा फीस मरीज को यह विश्वास दिला देती है, कि पहुंच गये ठीक जगह। बड़े डाक्टर से इलाज हो रहा है।

और उन्होंने सैकड़ों मरीजो को ठीक किया। इसलिए यह भी नहीं कहा जा सकता, कि वे गलत हैं। जो दूसरे डाक्टरों को हरा चुके थे, उन मरीजों को भी ठीक किया। ऐसे मरीज, जिनको मरीज होने का शौक... जो बिना मरीज हुए रह ही नहीं सकते, वे भी उनके गोरखधंधे में आकर ठीक हो जाते।

लेकिन आखिर में वे पकड़े गये। क्योंकि उनके पास न कोई सर्टिफिकेट था। जिस दिन वे पकड़े गये, मैं यूनिवर्सिटी से लौट रहा था। पुलिस ने उनका दवाखाना घेरा हुआ था। मैंने अन्दर जाना चाहा। उन्होंने कहा, अन्दर आज आप नहीं जा सकते हैं। यह आदमी चार सौ बीस है। ये डिग्रियां झूठी हैं। मैंने कहा, तुम डिग्रियां देखते हो, आदमी की चार सौ बीसी देखते हो, तुम यह नहीं देखते कि जो मरीज किन्हीं डाक्टर से ठीक नहीं हुआ, वह इस गरीब ने ठीक किया। नहीं है सर्टिफिकेट, तो कोई बात नहीं। तुम्हारे लिए सर्टिफिकेट मूल्यवान है? तुम्हें उन सैकड़ों लोगों की जिन्दगी, जो इसने बचायी है, जरा भी मूल्यवान नहीं है?

मगर कानून कानून है। वह डाक्टर जेल में सजा भुगत रहा है। उसका सारा आयोजन व्यर्थ पड़ा हुआ है।

आदमी की बड़ी कमजोरी है। वह चाहता है कि कोई कह दे, कि तुम बिलकुल ठीक हो। कोई कह दे, कि अब तुम्हें कुछ और नहीं करना है। और ऐसे कहने वाले लोग तुम्हें मिल जाते हैं। या तुम्हें ऐसी छोटी-छोटी बातें पकड़ा देते हैं, जिनको करने में कोई कठिनाई नहीं है। घर में बैठकर रोज दस मिनट के लिए माला जप लेना, और स्वर्ग तुम्हारा है। कि हर रविवार को चर्च हो आना, तो कयामत के दिन जब जीसस ईश्वर के समक्ष लोगों को पहचानेंगे कि कौन-कौन चर्च जाने वाले थे, उनको तो स्वर्ग ले जाया जायेगा, बाकी लोगों को अंधेरे गर्त में अनन्त काल के लिए नर्क में ढकेल दिया जायेगा। सस्ते नुस्खे। घड़ी भर के लिए सुबह-सुबह चर्च हो आना कुछ बुरा भी नहीं है। थोड़ी गपशप भी हो जाती है। न तो कोई सुनता है कि पुरोहित क्या कह रहा है, न पुरोहित को कुछ मतलब है

कि कोई सुने। न उसने कभी ध्यान से समझा है, कि वह जो कह रहा है, उसकी स्वयं उसे कोई अनुभूति नहीं है।

मैंने सुना है, कि एक चर्च में गांव का जो सबसे बड़ा धनपति था, स्वभावतः सबसे पहले बैठता था। बूढ़ा आदमी था, अपने साथ अपने नाती को लाता था। नाती भी उसके पास बैठता। और बूढ़ा आदमी था, सुबह का वक्त, शांत चर्च के आसपास का वातावरण, ठंडी हवाएं। झपकी लेने का इससे अच्छा मौका और कहां ? और पुरोहित की वही पुरानी बकवास। उससे झपकी और जल्दी आती। कहते हैं कि जिन लोगों को नींद की बीमारी है, उनको राम की कथा सुनने जाना चाहिए; गीता सुनें, बाइबिल सुनें। क्योंकि बोरडम, ऊब अपने आप नींद ले आती है। वही राम, वही सीता, वही हनुमान, वही गोरखधंधा। तुम्हें पहले ही मालूम है कि अब क्या होने वाला है।

बूढ़ा मजे से झपकी लेता। झपकी लेता तो कोई हर्ज न था। मगर वह नींद में घुर्राटे भी लेता था। घुर्राटे झंझट की बात। दो-चार बार पादरी ने उसे कहा कि महाराज, आप आराम से सोयें। कोई हर्जा नहीं है। मगर आपके घुर्राटों से दूसरों की नींद टूट जाती है। लोग शिकायत करते हैं, कि हद हो गयी। घर में सो नहीं सकते, चर्च में भी नहीं सो सकते! और यह बूढ़ा हमेशा मौजूद। लेकिन जिसको घुर्राटे आते हों, वह कर भी क्या सकता है ? नींद आयी, कि घुर्राटे शुरू।

आखिर पादरी ने तरकीब सोची। उस छोकरे के द्वारा--जो उसके साथ आता था, उससे कहा, देख चार आने तेरे पक्के रहे। तू अपने दादा को सोने मत देना। जैसे ही तुझे लगे कि झपकी आये, टिहुनी मारते रहना। जगाये रखना। लड़के ने कहा, ठीक चार आने नगद, एडवान्स। क्योंकि आजकल आगे-पीछे का कोई भरोसा नहीं। कि हम घंटे भर मेहनत करें और पीछे कुछ न मिले। चार आने एडवांस लेकर उसने उस दिन बूढ़े को जगाये रखा। बूढ़े ने उसे कई दफा कहा, तुझे क्या हो गया रे ? ऐसा तो तू पहले कभी नहीं करता था। सालों से मेरे साथ आता है। अचानक धार्मिक हो गया क्या ? शांत बैठ। मगर जैसे ही बुड्ढे को झपकी आनी शुरू होती, कि उसको टिहुनी मारता।

रास्ते में पूछा कि सच-सच बता, बात क्या है ? टिहुनी क्यों मारता है ? उसने कहा, अब तुमसे क्या छिपाना, धंधे का मामला है। पुरोहित चार आने देने को राजी है। एड्वांस ले ली है। बूढ़े ने कहा, मूरख, नालायक, मेरा नाती होकर और ऐसा सड़ा धंधा कर रहा है ? मैं तुझे आठ आने दूंगा। मगर नींद में दखल नहीं। उसने कहा, नगद एडवांस। पादरी बड़ा प्रसन्न था उस दिन, क्योंकि बुड्ढे ने घुर्राटे न लिये। आम जनता भी शांत रही। लोग

भी प्रेम से सोये। प्रवचन भी ठीक से चला। सभी तरह सुख-शांति रही।

दूसरे रविवार को कई बार पुरोहित ने उस लड़के को इशारा किया। मगर वह लड़का धक्का ही न मारे और बुड्ढा घुर्राटे ले। यह लड़का तो बेईमान मालूम होता है। चार आने एडवांस भी ले लिये थे। इसको हो क्या गया ? सभा समाप्त होने पर लड़के को पादरी अलग ले गया और कहा, क्यों रे छोकरे, भूल ही गया ? उसने कहा, भूला नहीं। दादा ने आठ आने देने का वायदा किया है--नगद। पहले ले लिये। धंधा तो धंधा है। अब तो बात रुपये पर चलेगी। अगर हो हिम्मत, तो एक रुपया। और उस पादरी ने कहा, तू तो बड़ा उपद्रवी है। ऐसे तो हम मारे जायेंगे। क्योंकि तेरा दादा तो धनी आदमी है। हम गरीब पुरोहित। तू हमारी सारी तनख्वाह खा जायेगा सिर्फ बूढ़े को जगाने में।

लड़का बोला, जैसी मर्जी। मगर याद रखो, अभी तक सिर्फ बुड्ढा घुर्राटे लेता था, अगली बार से मैं भी घुर्राटे लूंगा। अब मैं कोई नासमझ और नाबालिग न रहा। अब मैं भी समझ गया। रुपया तो देना ही पड़ेगा। क्योंकि बुड्ढा तो नींद में घुर्राटे लेता है, मैं जगते हुए घुर्राटे लूंगा। और ऐसे घुर्राटे लूंगा कि एक आदमी न सो सकेगा पूरे चर्च में।

लोग चर्च जा रहे हैं, मंदिर जा रहे हैं, मस्जिदों में जा रहे हैं, गंगा-स्नान कर रहे हैं। नहीं गंगा जा सकते, तो भी घर में ही लुटिया भर पानी डालते हैं--'हर-हर गंगे'। गजब के आदमी हो ! किसको धोखा दे रहे हैं पता नहीं ! सिर के बाल भी ठीक से नहीं भीगते और ये कह रहे हैं, 'हर-हर गंगे'। ये तथाकथित फैले हुए धर्म, इनके गुरु, इनके पंडित, इनके पुरोहित तुम्हें बदलने नहीं देते, वरन् तुम जैसे हो उसमें ही कोई छोटी-मोटी तरकीब जोड़ देते हैं, जिसको करने में कोई कठिनाई नहीं। और पुरस्कार बड़े हैं--अनन्त काल तक स्वर्ग में भोग ही भोग।

सद्‌गुरु वही है, जो तुमसे तुम्हारी सारी सांत्वानाएं छीन ले-यह सद्‌गुरु की पहचान तुम्हें देता हूं: जो तुमसे तुम्हारी सारी सांत्वनाएं छीन ले। जो तुमसे कह दे कि गंगा में नहाने से तुम पवित्र नहीं होते, सिर्फ गंगा अपवित्र होती है। और तुम लाख मालाएं जपो, मंत्र पढ़ो, पूजाएं करो, पूजाओं के लिए नौकर रखो...क्योंकि जिनके पास सुविधा है, वे घर में ही मंदिर बना लेते हैं। पुजारी आकर, घंटी हिलाकर, जल्दी-जल्दी पूजा करके...क्योंकि उसे और भी जगह पूजा करनी है, कोई एक ही मंदिर थोड़े ही है। कोई एक ही भगवान थोड़े ही है। दस-पच्चीस जगह पूजा करके मुश्किल से जिंदगी की नाव को चला पाता है। और तुम कभी यह भी नहीं सोचते, कि चार पैसे देकर तुमने अगर किसी से पूजा करवा ली है, तो उस पूजा से हुआ कोई पुण्य तुम्हारा नहीं हो सकता। और

उस आदमी का तो हो ही नहीं सकता। उसने तो चार पैसे ले ही लिये। उसका पुरस्कार तो उसे मिल ही गया।

सद्‌गुरु की व्याख्या यही है कि वह तुम्हारी सांत्वनाएं छीन ले। तुम्हारी छाती में हड़बड़ी मचा दे। तुम कितनी ही गहरी नींद में होओ, तुम्हें झकझोर दे। और तुमसे कहे कि तुम जैसे हो, गलत हो। हालांकि तुम्हारे भीतर वह छिपा है, जो सच है। हालांकि तुम्हारे भीतर वह छिपा है, जो शाश्वत है।

लेकिन यह ऊपर की चदरिया, यह राम नाम चदरिया। क्या-क्या मजे हैं! राम-राम लिखकर लोग चदरिया ओढ़े हुए हैं। कबीरदास जी भूल ही गये। उनकी चदरिया पर राम-राम नहीं लिखा था। कर गये गलती। अब भटक रहे होंगे। गाते रहे जिन्दगी भर: 'खूब जतन से ओढ़ी चदरिया। ज्यों की त्यों धर दीन्हीं चदरिया।' अरे पागल! पहले राम नाम तो लिखते। 'ज्यों की त्यों धर दीन्हीं चदरिया। झीनी-झीनी बीनी चदरिया।' मगर राम नाम कहां है? उनसे ज्यादा होशियार ये लोग हैं, जो छापेखाने में राम-नाम छपाई हुई चदरिया ओढ़े हुए हैं। मस्ती से घूम रहे हैं, बेफिक्री से। किसी का कोई डर नहीं है। कवच ओढ़े हुए हैं। राम रक्षा करेंगे।

धर्म तुम्हें अगर सस्ते उपाय दे रहा हो तो ऐसे धर्म से सावधान रहना। वह तुम्हारी बीमारियों को बचा रहा है। वह तुम्हारी व्याधियों को बचा रहा है, वह तुम्हें समाधि नहीं दे सकता है। सद्‌गुरु वह है, जो तुम्हें समाधि दे दे। और समाधि का अर्थ होता है, चेतना की ऐसी दशा जहां न कोई प्रश्न है, जहां न कोई उत्तर है। जहां बस मौन है, सन्नाटा है। एक सुगंध है, जो एक बार ख्याल में आ जाती है तो ख्याल में डोलती ही रहती है। जहां एक रसधार है--रसो वै सः। कि उसका स्वाद, उसकी मिठास रोएं-रोएं में अनुभव होती है।

जरा-सी हिम्मत की जरूरत है। क्योंकि कचरा छोड़ने को कितनी हिम्मत चाहिए? और कचरा छोड़ोगे, हीरे बरसते हैं, तो कितनी हिम्मत चाहिए? बस, पहले कदम पर हिम्मत की जरूरत पड़ती है। क्योंकि पहला कदम ही सबसे कठिन, सबसे मुश्किल, सबसे दूभर कदम है। क्योंकि हीरों का कोई पता नहीं है और जिस कचरे को हीरे समझ कर बैठे हैं, वह भी हाथ से जा रहा है। उस अन्तराल में जब असार छूटता हो, और सार अभी आया न हो, उसी अन्तराल में सद्‌गुरु के चरण काम के हैं। उसी अन्तराल में वे चरण सहारा हैं, वे चरण भरोसा हैं, वे चरण आश्वासन हैं। उन्हीं क्षणों में सद्‌गुरु की वाणी या मौन, उसकी आंखें या उसके हाथ का इशारा, कि कहीं तुम पीछे न लौट जाओ। उसी क्षण में थोड़ा-सा तुम्हें साहस...और अगर तुमने किसी सद्‌गुरु को प्रेम किया है,

तो साहस की कोई कमी नहीं है। उसका प्रेम ही नौका बन जायेगा। और वह छोटा-सा अन्तराल--जब व्यर्थ छूटता है और सार्थक आता है--यूं गुजर जायेगा, कि जैसे कभी आया ही न था।

प्रश्न: भगवान, आपके स्वास्थ्य को देखकर बहुत चिंता होती है। आपने दुनिया को समझाने में अपनी आत्मा उंड़ेल रख दी, लेकिन लोग बदलने की बजाय आपको मिटा देना चाहते हैं। आप इतना श्रम क्यों कर रहे हैं भगवान?

शरीर तो मिटेगा ही। वह अगर प्रेम के रास्ते पर मिट जाये तो उससे बड़ा कोई सौभाग्य नहीं। शरीर तो जीर्ण-जर्जर होगा ही। लेकिन अगर वह कुछ लोगों के जीवन में आनंद की किरण पैदा कर जाये, तो धन्यभाग हैं। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि लोग मुझे सुनकर बदलेंगे या न बदलेंगे। लेकिन सत्य के अनुभव के साथ ही साथ उसकी छाया की तरह करुणा भी आती है, जो कहती है कोई बदले या न बदले, लेकिन तुम कम से कम पुकार तो दे दो। यह कसूर न रहे तुम्हारे ऊपर कि तुमने पुकार न दी थी। कोई यह न कह सके, कि तुम चुप रहे।

मुझे तो अब शरीर की कोई जरूरत नहीं है। मेरी यात्रा तो पूरी हो चुकी; काफी देर हुए पूरी हो चुकी। जो जान लिया, जान लिया। जो पाना था, पा लिया। अब उसके पार कुछ भी नहीं है। ये जो थोड़े-से दिन बीच में हैं--जब कि शरीर अपने आप छूटेगा, अगर इन थोड़े-से दिनों में कुछ लोगों के जीवन में भी दीये जल जायें और कुछ लोगों के जीवन में भी मुस्कुराहट आ जाये...और कुछ लोगों के जीवन में दीये जल रहे हैं और मुस्कुराहट आ रही है। और कुछ लोगों के पैरों में घूंघर, और कुछ लोगों के ओंठों पर बांसुरी। जो मुझे मिटा देना चाहते हैं वे व्यर्थ परेशान हो रहे हैं। मैं तो वैसे ही मिट जाऊंगा। यहां कौन सदा रहने को है?

लेकिन उन लोगों की कोशिश, जो मुझे मिटा देना चाहते हैं, शायद वह भी प्रकृति का और नियति का नियम है, कि जितने जोर से मुझे मिटाने की कोशिश की जायेगी उतने ही जोर से कुछ लोगों की अन्तरात्मा भी जागेगी। अगर मैं दस दुश्मन पैदा कर लूंगा तो एक दोस्त भी पैदा हो जायेगा। मैं दोस्त की गिनती करता हूं, दुश्मनों की क्या फिक्र करनी? और मैंने काफी मित्र पैदा कर लिये हैं। शायद वैसा दुनिया में पहले कभी नहीं हुआ। क्योंकि बुद्ध की दौड़ बंधी थी बिहार तक। जीसस की दौड़ बंधी थी जूदिया तक। सुकरात

तो कभी एथेंस नगर को छोड़कर बाहर भी नहीं निकला।

मैंने सारी दुनिया में पुकार दी है। हजारों लोगों ने उस पुकार को सुना है। करोड़ों दुश्मन पैदा हो गये हैं। लेकिन मैं दुश्मनों का हिसाब नहीं रखता। मैं तो अपने दोस्तों का हिसाब रख रहा हूं। और जिस मात्रा में दुश्मन बढ़े हैं उसी मात्रा में दोस्तों का बल भी बढ़ा है, उनकी हिम्मत भी बढ़ी है, रूपान्तरित होने का उनका इरादा भी मजबूत हुआ है। और यह देखकर, कि इतने लोग मुझे मिटा देने को राजी हैं, मुझ पर मिट जाने को भी बहुत लोग राजी हुए हैं। इसलिए चिंता की कोई भी जरूरत नहीं है।

मुझे एक क्षण को भी यह ख्याल नहीं आया है कि मैंने कोई भी कदम गलत उठाया हो। यह देह तो छूट ही जाती है। खाट पर छूटती। निन्यानबे प्रतिशत लोग खाट पर मरते हैं। इसलिए मैं तुमसे कहता हूं, खाट पर मत सोया करो। खाट जैसी खतरनाक चीज दुनिया में दूसरी नहीं है। निन्यानबे प्रतिशत लोग वहीं मरते हैं। रात चुपचाप उतर कर नीचे फर्श पर सो गये। शुरू चाहे खाट पर किया ताकि कोई कुछ न कहे, लेकिन रात चुपचाप नीचे उतर गये--अगर बचना हो। क्योंकि खाट कितनों को खा गयी है, इसका तो ख्याल करो। फांसी पर तो कभी कोई मरता है मुश्किल से। उसकी कोई गिनती नहीं है। मगर तुम खाट से बड़ी दोस्ती रखते हो और सूली से बड़ी दुश्मनी रखते हो।

शरीर तो जायेगा। वह जाने को ही बना है। जो आया है, वह जाने को ही आया है। और चूंकि यह शरीर दुबारा अब आने को नहीं है। और जो यह इन सांसों से बोल रहा है, अब कभी दुबारा किन्हीं और सांसों से नहीं बोलेगा। इसका पड़ाव आ गया। इसकी मंजिल आ गयी। यह मेरा आखिरी जीवन और आखिरी यात्रा है। इन आखिरी दिनों में जितने लोगों तक मैं जीवन के परम सत्य की खबर पहुंचा सकूं--चाहे मेरी कोई भी दुर्दशा क्यों न हो। मेरा कुछ छीना नहीं जा सकता। जो मौत छीन ही लेगी, उसको अगर और किसी ने छीन लिया तो मुझसे नहीं छीना, मौत से छीना। मेरा कुछ लेना-देना नहीं है।

मैं आनंदित हूं क्योंकि जितने लोगों को मैं अपने हृदय की बात कह सका हूं, इस दुनिया में पहले कोई आदमी नहीं कह सका। और जितने लोगों ने मुझे प्रेम किया है, इतना प्रेम भी किसी आदमी को उसके जीवन में कभी नहीं किया गया। और जितने लोगों ने मुझसे घृणा की है, उतनी घृणा भी किसी आदमी को उसके जीवन में नहीं की गयी। इसको भी मैं सौभाग्य समझता हूं। क्योंकि जो आज मुझे घृणा करते हैं, हो सकता है, कल मुझे प्रेम भी करें। क्योंकि घृणा का प्रेम में बदल जाना बहुत मुश्किल नहीं है। शायद घृणा उनका ढंग है प्रेम के मंदिर तक पहुंचने का।

एक छोटी-सी घटना मुझे याद आती है। यहूदियों में हसीद फकीर हुए। जिस फकीर ने हसीद परंपरा को जन्म दिया--बालसेम, उसने अपनी पहली किताब लिखी थी। और यहूदियों के सबसे बड़े रबाई, सबसे बड़े पुरोहित को अपने शिष्य के हाथ भेंट की। शिष्य को कहा, इस किताब को ले जाओ। प्रधान रबाई को अपने हाथ से देना, किसी और को नहीं। और तुम्हें भेज रहा हूं इसलिए, कि रबाई की क्या प्रतिक्रिया होती है, रबाई क्या कहते हैं, उनके चेहरे पर क्या भाव आता है, उस सबका तुम ख्याल रखना। रत्ती-रत्ती तुम्हें लौटकर मुझे बताना होगा। कोई चूक न हो। और तुम मेरे सबसे ज्यादा सजग शिष्य हो इसलिए तुम्हें भेज रहा हूं।

हसीद क्रान्तिकारी परंपरा है। यहूदी रबाई पुरानी, सड़ी-गली, मुर्दा संस्कारों की बात है। हसीद होने के लिए क्रान्ति से गुजरना होता है। यहूदी होने के लिए सिर्फ यहूदी के घर पैदा होना होता है।

शिष्य जब पहुंचा तो प्रधान रबाई और उसकी पत्नी, दोनों बगीचे में बैठकर चाय पी रहे थे। उसने बालसेम की किताब रबाई के हाथों में दी। रबाई ने किताब ली और पूछा कि किसकी किताब है? और जैसे ही उस शिष्य ने कहा, कि बालसेम की यह पहली किताब है, उसके प्रवचनों का यह पहला संग्रह है, जैसे रबाई की आंखों में अंगारे आ गये, जैसे उसके चेहरे में अचानक राक्षस पैदा हो गया। उसने किताब को उठाकर हाथ से बगीचे के बाहर सड़क पर फेंक दिया। और कहा कि तुमने हिम्मत कैसे की इस घर में प्रवेश करने की? और तुमने वह गंदी किताब मेरे हाथों में कैसे दी? अब मुझे स्नान करना होगा। यह युवक सब देखता रहा। तभी पत्नी ने कहा कि इतना नाराज न हों। आपके पास इतना बड़ा पुस्तकालय है, उसमें वह किताब भी किसी कोने में पड़ी रहती तो कोई हर्ज न था। और अगर उसे फेंकना ही था, तो इस युवक के चले जाने के बाद फेंक दे सकते थे।

युवक लौटा। बालसेम ने पूछा, क्या हुआ? युवक ने कहा, प्रधान रबाई के हृदय में कभी कोई परिवर्तन हो सके इसकी संभावना नहीं, लेकिन उसकी पत्नी शायद कभी परिवर्तित हो जाये। और पूरी घटना कही। बालसेम हंसने लगा। उसने कहा, कि तू पागल है। तुझे मनुष्य के मनोविज्ञान का पता नहीं। और अगर तुझे मेरी बात का भरोसा न हो, तो लौटकर जा। रबाई ने किताब उठा ली होगी और पढ़ रहा होगा। और उसकी स्त्री के बदलने की कोई संभावना नहीं है। उसकी स्त्री के मन में घृणा ही नहीं है, प्रेम तो बहुत दूर है। लेकिन रबाई उत्तेजित हो उठा, भावाविष्ट हो उठा, मेरा काम बन गया। तू लौटकर जा। मैं तुझसे कहता हूं, रबाई किताब पढ़ रहा होगा। और युवक लौटकर गया और

देखकर दंग रह गया। सड़क से किताब नदारद थी। उसने झांककर देखा, रबाई बगीचे में किताब को लिये हुए देख रहा है। रबाई की पत्नी मौजूद नहीं है।

घृणा प्रेम का ही उल्टा रूप है, शीर्षासन करता हुआ रूप। इसलिए जो मुझे प्रेम करते हैं उनकी संख्या भी बड़ी है, और जो मुझे घृणा करते हैं उनकी संख्या तो बहुत बड़ी है। और मैं दोनों के प्रति आभारी हूं। क्योंकि जो मुझे प्रेम करते हैं वे तो मेरे रस में डूबेंगे ही डूबेंगे, जो मुझे घृणा करते हैं वे आज नहीं कल, कल नहीं परसों राह से किताब को उठाकर पढ़ेंगे। उनके भी बचने का उपाय नहीं है। उन्होंने घृणा करके ही अपने आप, मेरे साथ संबंध जोड़ लिया। यूं नाराजी में जोड़ा है, मगर संबंध तो संबंध है।

मैं तुम्हारी मनःस्थिति समझ सकता हूं, तुम्हारा प्रेम समझ सकता हूं। लेकिन तुम्हें भरोसा दिलाना चाहता हूं, कि तुम्हारे प्रेम के सहारे ही जिन्दा हूं। अन्यथा मेरे लिए कोई जीने का कारण नहीं है। अब तुम्हारी आंखों में चमकती हुई ज्योति को देख लेता हूं, तो सोचता हूं और थोड़ी देर सही, शायद कुछ और लोग मधुशाला में प्रवेश कर जायें। शायद कुछ और लोगों को इस रस को पीने की याद आ जाये। तुम मेरे शरीर की चिन्ता न करो। शरीर की चिन्ता अस्तित्व करेगा। तुम तो सिर्फ इस बात की चिन्ता करो कि जब तक मैं हूं तब तक तुम पियक्कड़ों की इस जमात को कितनी बड़ी कर सकते हो, कर लो। यह जमात जितनी बड़ी हो जाये, मैं उतनी देर तुम्हारे बीच रुकने का तुम्हें आश्वासन देता हूं।

प्रश्न : भगवान, क्या आपने अब संन्यास-दीक्षा देनी और शिष्य बनाना बंद कर दिया है? क्या मैं आपका शिष्य बनने से वंचित ही रह जाऊंगा?

शिष्य बनाया नहीं जाता। शिष्य बनना पड़ता है। तुम जब किसी से प्रेम करते हो, तो तुम क्या पहले पूछते हो, आज्ञा लेते हो? प्रेम हो जाता है। प्रेम न किसी आज्ञा को मानता है और न किसी अनुमति को, न किसी विधि को, न किसी विधान को। शिष्यत्व क्या है? प्रेम का ऊंचा से ऊंचा, गहरा से गहरा नाम है। तुम मुझे प्रेम करना चाहते हो, तो मैं कैसे रोक सकता हूं? तुम अगर मेरे प्रेम में आंसू गिराओ, तो मैं कैसे रोक सकता हूं? और तुम अगर, जिसे मैं ध्यान कहता हूं, उस ध्यान में डुबकियां लगाओ तो मैं कैसे रोक सकता हूं?

जिसे शिष्य होना है उसके लिए कोई भी नहीं रोक सकता। और मैंने इसीलिए, जो

औपचारिकता थी शिष्य बनाने की, वह छोड़ दी। क्योंकि अब मैं केवल उनको ही चाहता हूं जो अपने से मेरी तरफ आ रहे हैं, किसी और कारण से नहीं। अब पूरा उत्तरदायित्व तुम्हारे ऊपर है।

जैसे स्कूल की पहली कक्षा में हम बच्चों को पढ़ाते हैं, ''अ'' आम का, ''ग'' गणेश का। पहले हुआ करता था ''ग'' गणेश का, अब तो ''ग'' गधे का है। यह सेकुलर राज्य है, यहां गणेश का नाम किताब में आना ठीक नहीं है। लेकिन ''ग'' से न कोई गणेश का लेना-देना है, न कोई गधे का। लेकिन बच्चे को सिखाने के लिए... क्योंकि बच्चे को ज्यादा रस गधे में आता है, गणेश में आता है। वह जो ''ग'' नाम का अक्षर है, उसमें बच्चे को कोई रस मालूम नहीं होता। लेकिन धीरे-धीरे गधा भी भूल जायेगा, गणेश भी भूल जायेंगे, ''ग'' ही रह जायेगा। और ''ग'' ही काम पड़ेगा।

अगर विश्वविद्यालय तक पहुंचते-पहुंचते भी, हर वक्त, पढ़ते वक्त पहले तुम्हें पढ़ना पड़े ''अ'' आम का, ''ग'' गधे का, तो हो गयी पढ़ाई। एक वाक्य भी पूरा पढ़ना मुश्किल हो जायेगा। और पढ़ने के बाद यह भी समझना मुश्किल हो जायेगा, कि इसका मतलब क्या है। क्योंकि उसमें न मालूम कितने गधे होंगे, कितने गणेश होंगे, कितने आम होंगे।

छोटे बच्चों की किताब में तस्वीरें होती हैं, रंगीन तस्वीरें होती हैं, बड़ी तस्वीरें होती हैं। छोटे अक्षर होते हैं। और जैसे-जैसे ऊंची क्लास होने लगती है, तस्वीरें छोटी होने लगती हैं, अक्षर ज्यादा होने लगते हैं। धीरे-धीरे तस्वीरें खो जाती हैं, सिर्फ अक्षर रह जाते हैं। विश्वविद्यालय की कक्षा में कोई तस्वीर नहीं होती, सिर्फ अक्षर होते हैं।

हमारा 'अक्षर' शब्द भी बड़ा प्यारा है। उसका अर्थ है, जो कभी न मिटेगा। क्योंकि गणेश भी मिट जाते हैं, गधे भी मिट जाते हैं, मगर अक्षर रह जाता है। वह क्षर नहीं होता। उसका कोई क्षय नहीं होता।

तो मुझे शुरू करना पड़ा तो संन्यास भी मैंने दिया, शिष्य भी मैंने बनाये, मगर कब तक गधों को और गणेशों को, और कब तक आम को और इमली को--कब तक खींचना? अब संन्यास प्रौढ़ हुआ है। अब औपचारिकताओं की कोई खास बात नहीं है। अब तुम्हारा प्रेम है तो शिष्य हो जाओ। कहने की भी बात नहीं, किसी को बताने की भी जरूरत नहीं। अब तुम्हारा भाव है तो संन्यस्त हो जाओ। अब सारा दायित्व तुम्हारा है। यही तो प्रौढ़ता का लक्षण होता है। अब तुम्हारा हाथ पकड़कर कब तक मैं चलूंगा? इसके पहले कि मेरे हाथ छूट जायें, मैंने खुद तुम्हारा हाथ छोड़ दिया है। ताकि तुम खुद

अपने पैर, अपने हाथ, अपने दायित्व पर खड़े हो सको और चल सको।

नहीं तुम्हें सत्‌शिष्य होने से रुकने की कोई जरूरत नहीं है। न संन्यासी होने से कोई तुम्हें रोक सकता है। लेकिन अब यह सिर्फ तुम्हारा निर्णय है, और तुम्हारे भीतर की प्यास और तुम्हारे भीतर की पुकार है। मैं तुम्हारे साथ हूं। मेरा आशीष तुम्हारे साथ है।

लेकिन अब तुम्हें समझाऊंगा नहीं, कि तुम संन्यासी हो जाओ; और समझाऊंगा नहीं, कि ध्यान करो। अब समझाऊंगा नहीं। अब तो इतना ही समझाऊंगा कि ध्यान क्या है। अगर उससे ही तुम्हारे भीतर प्यास पैदा हो जाये, तो कर लेना ध्यान। अब आज्ञा न दूंगा कि प्रेम करो। अब तो सिर्फ प्रेम की व्याख्या कर लूंगा, और सब तुम पर छोड़ दूंगा। अगर प्रेम की अनूठी, रहस्यमय बात को सुनकर भी तुम्हारे हृदय की धड़कनों में कोई गीत नहीं उठता, तो आदेश देने से भी कुछ न होगा। और अगर गीत उठता है, तो यह कोई लेने-देने की बात नहीं है।

तुम शिष्य हो सकते हो, तुम ध्यान कर सकते हो, तुम संन्यस्त हो सकते हो। तुम समाधिस्थ हो सकते हो। तुम इस जीवन की उस परम निधि को पा सकते हो, जिसे हमने मोक्ष कहा है। लेकिन यह सब अब तुम्हें करना है। अब कोई और तुम्हें धक्का दे पीछे से, वे दिन बीत गये। अब तुम बिलकुल स्वतंत्र हो। तुम्हारी मर्जी और तुम्हारी मौज और तुम्हारी मस्ती ही निर्णायक है।

प्रश्न : भगवान, आप कहते हैं कि जहां हो वहीं रहो, जो करते हो वही करो। फिर आप इधर-उधर क्यों भागते हैं?

सवाल महत्वपूर्ण है।

जरूर मैं कहता हूं, जहां हो वहीं रहो, जो करते हो वही करो। लेकिन मैं कहीं नहीं हूं, और करने को भी मेरे पास कुछ नहीं है। इसलिए इधर-उधर भागा करता हूं। क्योंकि खाली बैठा रहूं तो भी तुम नाराज होओगे कि क्या कर रहे हो, महाराज!

न मेरे पास कोई मकान है न कोई जमीन है, न कोई इंच भर स्थान है खड़े होने को। इसलिए इधर-उधर भागा करता हूं। थोड़ी देर को समझा लेता हूं, कि यह अपना घर है। ऐसे सारी जमीन पर बहुत-से घर अपने हैं। ऐसे सारी जमीन पर बहुत-से देश अपने हैं।

तुम्हारा क्या इरादा है, सूरज प्रकाश को बिलकुल निकाल बाहर कर दूं? नहीं, मैं जल्दी ही यहां-वहां भागने लगूंगा। आखिर उनको भी अपना काम-धंधा करना है। और

तुमको भी अपना काम धंधा करना है। थोड़ी देर यहां रहूंगा तो ठीक, तुम सब काम-धंधा छोड़कर मेरे साथ हो रहोगे। थोड़ी देर कहीं और, थोड़ी देर कहीं और। जहां हूं वहीं भीड़, जहां हूं वहीं प्रेमी।

एक ही जगह रहने में, सोचता हूं, कि कहीं किसी को कोई बाधा न हो जाये। जिसके पास इंच भर जमीन न हो, खूंटी में कलदार पैसा न हो, जिसके वस्त्रों में जेब भी न हो जिसमें कुछ रखा जा सके, ऐसे दूसरों की जेब में हाथ डालकर किसी तरह अपना काम चला ले। यह भी एक रहने का ढंग है : हाथ अपने, जेब किसी की। मगर ज्यादा देर नहीं। फिर किसी और की जेब, फिर किसी और की जेब।

धन्यवाद।
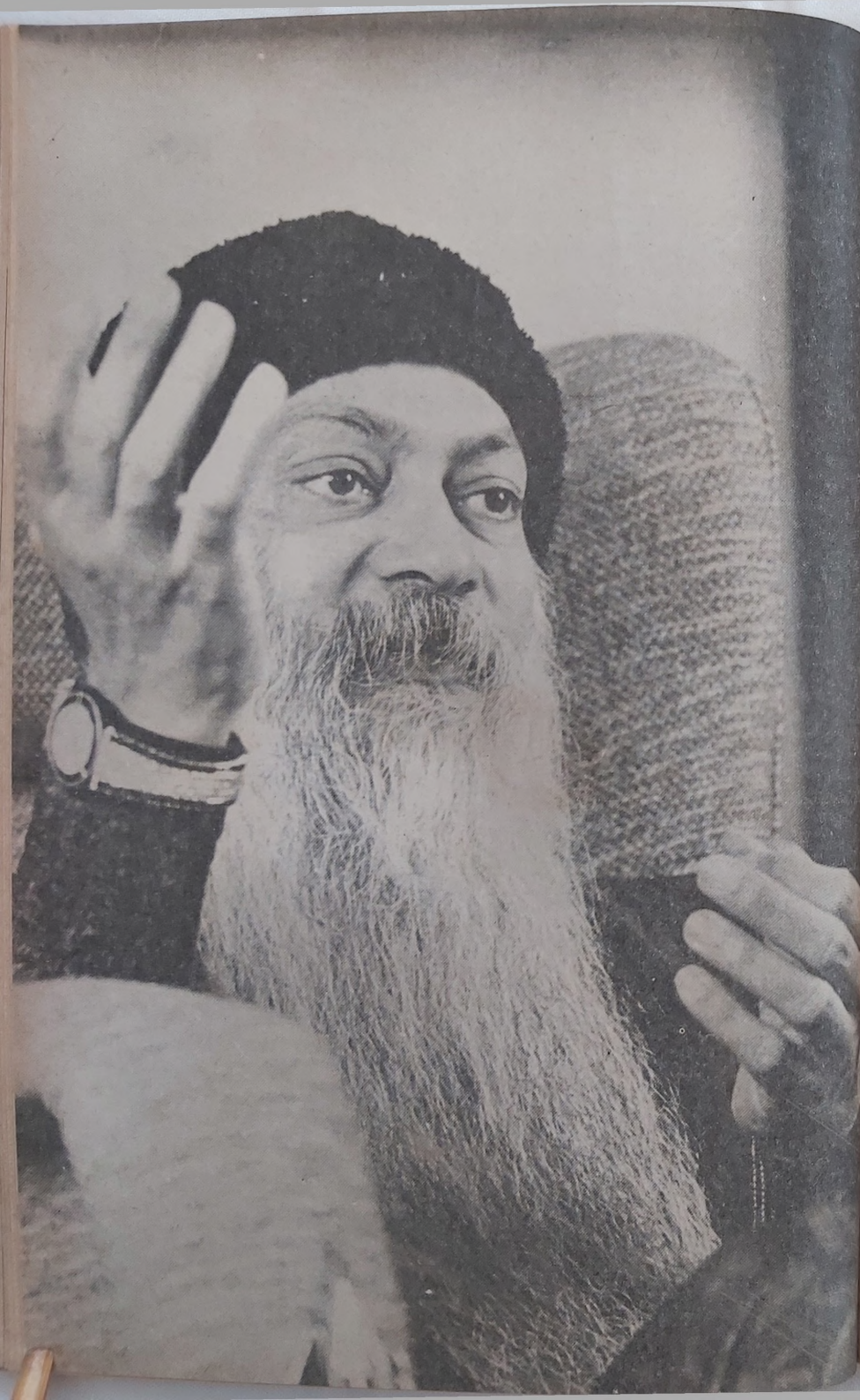
ध्यानतंत्र के बिना लोकतंत्र असंभव

नौवां प्रवचन : ७ अगस्त, १९८६, ७.०० संध्या, सुमिला, जुहू, बम्बई

प्रश्न : भगवान, विचार-अभिव्यक्ति और वाणी-स्वतंत्रता लोकतंत्र का मूल आधार है। आपकी बातों से कोई सहमत हो या अपना विरोध प्रकट करे, इसके लिए वह स्वतंत्र है। लोग विरोध तो करते हैं, लेकिन व्यक्ति को अपना काम करने की स्वतंत्रता नहीं देना चाहते। ऐसा क्यों ?

एक ही जाम ने दोनों का भरम तोड़ दिया।
रिन्द मस्जिद को गये शेख जी मयखाने को।

जिसे हम जिन्दगी कहते हैं और जिन मूल्यों के ऊपर हम नाज करते हैं, उनमें कितने भरम हैं और कितनी सच्चाइयां हैं, तुम जरा आंख खोलो तो चौंके बिना न रहोगे।

सारी दुनिया में लोकतंत्र के नाम पर ऐसे-ऐसे झूठों का प्रचार किया गया है, और इतने लम्बे अरसे से, कि हम यह बात भूल ही गये कि इस प्रचार पर पुनर्विचार करने की जरूरत है। कहा तो जाता है कि लोकतंत्र जनता का है, जनता के लिए है, जनता के द्वारा है, लेकिन इतने बड़े झूठ भी बहुत बार दोहराये जाने पर सच जैसे मालूम पड़ने लगते हैं।

एडोल्फ हिटलर कहा करता था कि मैंने तो झूठ और सच में सिर्फ एक ही फर्क पाया, और वह फर्क है, दोहराने का। झूठ नया सच है, जो अभी दोहराया नहीं गया; और सच पुराना झूठ है, परम्परागत, सदियों, पीढ़ी-दर-पीढ़ी दोहराया गया है।

उसकी बात में थोड़ी-सी सच्चाई है। क्योंकि न तो किसी देश में जनता का राज्य है, न किसी देश में जनता के लिए राज्य है, और न किसी देश में जनता के द्वारा राज्य है। लेकिन ये झूठ बड़े प्यारे हैं। ये बड़े मीठे हैं। ये जहरीले हैं जरूर, लेकिन करोड़ों-करोड़ों लोग आनन्द से इन्हें पी जाते हैं। और जो लोग इन झूठों का प्रचार कर सकते हैं, वे राज्य करते हैं। उनका ही राज्य है, उनके ही द्वारा है, और उनके अपने हित के लिए है। यों कहने को वे कहते हैं कि वे जनता के सेवक हैं। लेकिन बड़ी अजीब दुनिया है। यहां जनता के सेवक कहने वाले लोग जनता के मालिक बनकर बैठे हैं। हां, पांच साल में एक बार जरूर उन्हें फिर झूठ को दोहराना पड़ता है। उन्हें फिर जनता के द्वार पर आकर कहना पड़ता है, हम तुम्हारे सेवक हैं। एक बार तुम्हारा मत उनकी झोली में पड़ गया, कि वे जो भिखारी की तरह आये थे, उनके द्वार पर खड़े चपरासी तुम्हें धक्के देकर निकाल देंगे। तुम्हें मिलने का भी मौका नहीं मिलेगा।

यह अजीब जनता की सेवा हुई। जनता भूखी मरती है। जनता रोज-रोज दुख और पीड़ा से भरती जाती है, लेकिन उसी जनता के सेवक मौज कर रहे हैं, गुलछर्रे कर रहे हैं। वे मौज करें, गुलछर्रे करें, इसमें मुझे एतराज नहीं। मुझे एतराज है उनके झूठों पर।

तुमने पूछा है कि कहा जाता है कि लोकतंत्र का मूल आधार है विचार-स्वातंत्र्य। और मेरे जीवन भर का अनुभव यह कहता है कि विचार की स्वतंत्रता कहीं भी नहीं है। अभी-अभी मैं सारी दुनिया का चक्कर लगाकर आया हूं। नहीं कोई देश है जमीन पर, जहां तुम स्वतंत्र हो वही कहने को, जो तुम्हारे हृदय में उपजा है। तुम्हें वह कहना चाहिए जो लोग सुनना चाहते हैं। बहुत-से देश चाहते थे कि मैं उनका निवासी बन जाऊं; कि उन्हें लगता था, मेरे कारण हजारों-हजारों संन्यासियों का आना होगा, आर्थिक लाभ होगा उनके देश को। मुझसे उन्हें मतलब न था, मतलब इस बात से था कि हजारों व्यक्तियों के आने से उनके देश की सम्पदा बढ़ेगी। लेकिन उन सबकी शर्तें थीं। और आश्चर्य तो यह है, कि सबकी शर्तें समान थीं। हर देश की शर्त थी कि हम खुश हैं कि आप यहां रह जायें, लेकिन आप सरकार के खिलाफ कुछ भी न बोलें और आप इस देश के धर्म के खिलाफ कुछ भी न बोलें। बस ये दो चीजों का वजन, इन दो शर्तों को अगर आप पूरा करें, तो आपका स्वागत है। वही हालत इस देश में भी है।

जिन्दगी भर मुझे दफ्तरों से, सरकारी अदालतों से समन्स मिलते रहे हैं, कोर्ट में उपस्थित होने की आज्ञा मिलती रही है। क्योंकि किसी व्यक्ति ने कोर्ट में निवेदन कर दिया कि मैंने जो कुछ कहा है, उससे उसके धार्मिक भाव को चोट पहुंच गयी। यह बड़े मजे

की बात है। तुम्हारा धार्मिक भाव इतना लचर, इतना कमजोर, कि कोई कुछ उसके विरोध में कह दे तो उसे चोट पहुंच जाती है। तो ऐसे लचर और कचरे भाव को फेंको। तुम्हारे भीतर का धर्म तो मजबूत स्टील का होना चाहिए। ये कहां के सड़े-गले बांस तुम उठा लाये हो।

और जो भी व्यक्ति किसी अदालत के सामने जाकर कहे कि उसके धार्मिक भाव को चोट पहुंची है, अदालत को चाहिए कि उस आदमी पर मुकदमा चलाये कि ऐसा धार्मिक भाव तुम अपने भीतर रखते क्यों हो? तुम्हें कुछ मजबूत और शक्तिशाली जीवन चिन्तना नहीं मिलती? तुम्हें कोई ऐसी विचारधारा नहीं मिलती, जिसको कोई चोट न पहुंचा सके? मैंने तो आज तक किसी अदालत से नहीं कहा कि मेरे धार्मिक भाव को कोई चोट पहुंची है। मैं तो प्रतीक्षा कर रहा हूं उस आदमी की, जो मेरे धार्मिक भाव को चोट पहुंचा दे। मैं तो सारी दुनिया में उसको आमंत्रित करता हुआ घूमा हूं, कि कोई आये और मेरे धार्मिक भाव को चोट पहुंचा दे। क्योंकि मेरा धार्मिक भाव मेरा अपना अनुभव है। तुम उसे चोट कैसे पहुंचा सकोगे?

लेकिन लोगों के धार्मिक भाव उधार हैं, बासे हैं; दूसरों के हैं, अपने नहीं हैं। किसी ने कान फूंके हैं, गुरुमंत्र दिये हैं, और इन उधार बासी बातों पर, इस रेत पर उन्होंने अपने महल खड़े कर लिये हैं। जरा-सा धक्का दो, तो उनके महल गिरने लगते हैं। महल हिल जाते हैं, कंपायमान हो जाते हैं। लेकिन इसमें कसूर धक्के देने वाले का नहीं है। तुम रेत पर महल बनाओगे तो गलती किसकी है? तुम पानी पर लकीरें खींचोगे और मिट जायें, तो जिम्मेवारी किसकी है?

और अगर यह सच है कि किसी धर्म के, किसी चिन्तन के विरोध में बोलना अपराध है, तो कृष्ण ने भी अपराध किया है, बुद्ध ने भी अपराध किया है, जीसस ने भी अपराध किया है, मोहम्मद ने भी अपराध किया है, कबीर ने भी, नानक ने भी। इस दुनिया में जितने विचारक हुए हैं, उन सबने अपराध किया है; भयंकर अपराध किया है। क्योंकि उन्होंने निर्दयी भाव से, जो गलत था उसे तोड़ा है। और जो गलत से बंधे थे उनको स्वभावतः चोट पहुंची होगी।

अगर अब दुनिया में कबीर पैदा नहीं होते, अगर अब दुनिया में बुद्ध पैदा नहीं होते, तो तुम्हारा लोकतंत्र जिम्मेवार है। अजीब बात है। लोकतंत्र में तो गांव-गांव कबीर होने चाहिए, घर-घर नानक होने चाहिए। जगह-जगह सुकरात होने चाहिए, मंसूर होने चाहिए। क्योंकि लोकतंत्र का मूल आधार है: विचार की स्वतंत्रता। जब लोकतंत्र नहीं था

दुनिया में, और विचार की कोई स्वतंत्रता नहीं थी दुनिया में, तब भी दुनिया ने बड़ी ऊंचाइयां लीं। और अब, अब दुनिया में ऊंचाइयों पर उड़ना अपराध है, तुम्हारे पंख काट दिये जायेंगे। क्योंकि तुम्हारा ऊंचाइयों पर उड़ना--जो लोग नीचाइयों पर बैठे हैं, उनके हृदय को बड़ी चोट पहुंचती है।

लोकतंत्र हो तो सकता था एक अद्‌भुत अनुभव मनुष्य की आत्मा के विकास का। लेकिन ऐसा हो नहीं पाया। हो गया उल्टा। नाम बड़े, दर्शन छोटे। बड़े ऊंचे-ऊंचे शब्द और पीछे बड़ी गन्दी असलियत। कहीं कोई विचार की स्वतंत्रता नहीं है। लेकिन हर आदमी को हिम्मत करनी चाहिए विचार की स्वतंत्रता की। यह मुसीबत को बुलाना है। यह अपने हाथ से बैठे-बिठाये झंझट मोल लेनी है। लेकिन यह झंझट मोल लेने जैसी है। क्योंकि इसी चुनौती से गुजरकर तुम्हारी जिन्दगी में धार आयेगी, तुम्हारी प्रतिभा में तेज आयेगा, तुम्हारी आत्मा में आभा आयेगी। दूसरों के सुन्दरतम विचार ढोते हुए भी तुम सिर्फ एक गधे हो, जिसके ऊपर गीता और कुरान और बाइबिल और वेद लदे हैं। मगर तुम गधे हो। तुम यह मत समझने लगना कि सारे धर्मशास्त्र मेरी पीठ पर लदे हैं, अब और क्या चाहिए? स्वर्ग के द्वार पर फरिश्ते बैंड-बाजे लिये खड़े होंगे, अब देर नहीं है।

अपना छोटा-सा अनुभव, स्वयं की अनुभूति से निकला हुआ छोटा-सा विचार, जरा-सा बीज तुम्हारी जिन्दगी को इतने फूलों से भर देगा कि तुम हिसाब न लगा पाओगे। क्या तुमने कभी यह ख्याल किया है कि एक छोटे-से बीज की क्षमता कितनी है? एक छोटा-सा बीज पूरी पृथ्वी को फूलों से भर सकता है। लेकिन बीज जिन्दा होना चाहिए। विचार जिन्दा होता है, जब तुम्हारे प्राणों में पैदा होता है, जब उसमें तुम्हारे हृदय की धड़कन होती है, जब उसमें तुम्हारा रक्त बहता है, जब उसमें तुम्हारी सांसें चलती हैं।

जीवन भर मेरा एक ही उपाय रहा है कि तुम्हें झकझोरूं, तुम्हें हिलाऊं, डुलाऊं; तुमसे कहूं कि तुम कब तक उधार, बासे विचारों से भरे रहोगे। शर्म खाओ। बहुत बेशर्मी हो चुकी। कुछ तो अपना हो। कोई सम्पदा तो तुम्हारी हो। और इस जीवन में अनुभूति की, स्वानुभूति की सम्पदा से बड़ी कोई सम्पदा नहीं है।

ऐसी एक मीठी कहानी है। बुद्ध का एक गांव में आगमन हुआ है। वे सुहाने दिन थे। वे दिन थे, जब इस देश ने गौरीशंकर की ऊंचाइयां देखीं। यह देश पहाड़ों पर नहीं चढ़ा, लेकिन इसने चेतना के बड़े से बड़े शिखर छुए हैं।

बुद्ध गांव में आ रहे हैं। उस देश का जो सम्राट है, उसका बूढ़ा मंत्री, वजीर उस युवा सम्राट से कहता है, आपको स्वागत के लिए जाना चाहिए। सारा गांव बुद्ध के स्वागत के

लिए जा रहा है। और यह अपमानजनक होगा हमारे लिए, कि बुद्ध हमारे गांव में आयें और सम्राट उनके स्वागत को न जाये। सम्राट ने कहा, कि क्या उल्टी बातें करते हो? क्या बुढ़ापे में सठिया गये हो? मैं सम्राट हूं, बुद्ध एक भिखारी हैं। आना होगा उन्हें, तो मिलने मुझसे चले आयेंगे मेरे द्वार पर। किस कारण मैं उनके स्वागत को जाऊं? उस बूढ़े मंत्री की आंखों से दो आंसू टपके और उसने कहा, मेरा इस्तीफा स्वीकार कर लें। अब मैं आपके नीचे काम न कर सकूंगा। इतने नीचे आदमी के नीचे काम करना ठीक नहीं है।

उस मंत्री की बड़ी जरूरत थी। वह उस राज्य का सर्वाधिक बुद्धिमान व्यक्ति था। सम्राट उसे खो न सकता था। उसने कहा, तुम भी पागल हो, इतनी-सी बात पर इस्तीफा देते हो? उसने कहा, या तो आपको पैदल चलकर बुद्ध के चरणों में सिर रखना होगा, और या मेरा इस्तीफा पत्थर की लकीर है। कोई सुनेगा तो क्या कहेगा? कैसी बदनामी होगी, कि इस देश के सम्राट को इतनी भी समझ नहीं है कि जब कोई आत्मवान, जब कोई अपनी ज्योति से ज्योतिर्मय, जब कोई अपनी सुगन्ध से सुवासित इस गांव में आया हो तो सम्राट चार कदम चलकर उसके पैर छूने भी न जा सका। तुम्हारे पास है भी क्या? जिस धन-दौलत, जिस राज्य के कारण तुम अपने को सम्राट और बुद्ध को भिखारी समझ रहे हो, इस बात को न भूल जाओ कि वह आदमी भी कभी सम्राट था, तुमसे बड़ा। उसका भी राज्य था, तुमसे बड़ा। वह उसे ठोकर मार आया है। उसका भिखारीपन उसके सम्राट होने से बहुत ऊपर है। बाद की सीढ़ी है। वह कोई साधारण भिखमंगा नहीं है। वह एक सम्राट है, जिसने साम्राज्य को लात मार दी। अभी तुम बहुत दूर हो।

सम्राट को जाना पड़ा। बात में सच्चाई थी। बुद्ध के चरणों में सिर रखना पड़ा। बुद्ध ने कहा भी कि व्यर्थ तुम परेशान हुए। मैं तो आ ही रहा था। तुम्हारे महल के पास से गुजरता ही। और फिर मैं तो भिखारी हूं, तुम सम्राट हो। लेकिन जब उसने बुद्ध को देखा तब उसे पता चला, कि कभी यों भी होता है कि भिखारी सम्राट होता है और सम्राट भिखारी होता है। सब कुछ हो तुम्हारे पास बाहर का, लेकिन भीतर की कोई अपनी अनुभूति न हो; भीतर का कोई दीया न जला हो; भीतर चिराग बुझे हों और बाहर दीवाली हो, तो तुम उस आदमी से बहुत गरीब हो जिसके भीतर सिर्फ एक चिराग जला हो, और बाहर अमावस की रात हो। क्योंकि बाहर के चिराग तो जलते हैं और बुझते हैं। और भीतर का चिराग सिर्फ जलता है, फिर कभी बुझता नहीं है।

विचार की स्वतंत्रता चाहिए, लेकिन कोई उसे तुम्हें देगा नहीं, तुम्हें उसे लेना होगा। इस भ्रांति को छोड़ दो कि सिर्फ तुमने अपने विधान को लोकतंत्र का विधान कह दिया तो

समझ लिया, कि विचार की स्वतंत्रता उपलब्ध हो गयी। क्या खाक विचार करोगे? स्वतंत्रता भी उपलब्ध हो जायेगी तो विचार क्या करोगे? जो अखबार में पढ़ोगे वही तुम्हारी खोपड़ी में घूमेगा। विचार करने के लिए विधान में तुम्हारे स्वतंत्रता की गारन्टी काफी नहीं है।

विचार की स्वतंत्रता बड़ा अनूठा प्रयोग है। सबसे पहले तो विचार से मुक्त होना होगा। क्योंकि अभी तुम्हारे पास सब दूसरों के विचार हैं। पहले यह कचरा दूसरों के विचारों का हटाना होगा। इसको हमने इस देश में ध्यान कहा है। ध्यान का अर्थ है, दूसरे के विचारों से मुक्ति। और तुम हो जाओ एक कोरे कागज; एक सादे, भोले-भोले बच्चे का मन, जिस पर कोई लिखावट नहीं है। और तब तुम्हारी अन्तरात्मा से उठने लगते हैं, जगने लगते हैं, खिलने लगते हैं वे, जिन्हें स्वतंत्र विचार कहा जाये। वे बाहर से नहीं आते, वे तुम्हारे भीतर से ऊगते हैं। और जब तुम्हारे पास अपना विचार हो, तो चाहे सरकारें लोकतंत्र की बातें करें या न करें, तुम्हारा विचार तुम्हें इतना साहस और बल देगा, कि तुम बड़ी से बड़ी सरकारों से टक्करें ले सकते हो।

अपने विचार की ताकत किसी भी न्यूक्लियर बम से कम नहीं है, ज्यादा है। आखिर न्यूक्लियर बम भी आदमी के विचार की ही पैदाइश है। उन आदमी के विचारों की पैदाइश है, जो खुद सोच सकते थे। उसकी क्षमता विचार की क्षमता से बड़ी नहीं हो सकती। वह विचार की ही पैदाइश है।

लोकतंत्र उस दिन आयेगा दुनिया में, जिस दिन ध्यान का तंत्र सारी दुनिया में व्याप्त हो जायेगा। ध्यान के तंत्र के बिना लोकतंत्र असंभव है। बातें तुम लाखों करो स्वतंत्रता की, स्वतंत्र विचार की, मगर तुम्हारे पास स्वतंत्र विचार करने की क्षमता भी नहीं है। इसलिए मैं जड़मूल से ही तुम्हें वह विज्ञान सिखाना चाहता हूं, कि चाहे दुनिया में लोकतंत्र आये या न आये, कम से कम तुम्हारे भीतर तो स्वातंत्र्य आये। और एक के भीतर दीया जल जाये तो दूसरों के भीतर उस दीये से दूसरे दीये जल जाना बहुत आसान हो जाता है।

दूसरे को विचार नहीं देना है। अगर तुम दूसरे को ध्यान दे सको, तो तुमने कुछ प्रेम दिया, तो तुमने कुछ करुणा बांटी। तो तुमने कुछ देने योग्य दिया। विचार तो फिर स्वयं उसके भीतर पैदा होंगे।

सारी दुनिया में लोकतंत्र असफल है, क्योंकि उसका पहला चरण पूरा नहीं किया गया है। पहला चरण ध्यानतंत्र है। केवल ध्यान--और केवल ध्यान। वह तुम्हारी आंखों में

वह चमक, तुम्हारी आंखों में वह गहराई और वह तेजी, तुम्हारे देखने में वह तलवार पैदा कर देता है, जो असत्यों को काट देती है। और लाख गहराइयों में छिपा हुआ सत्य हो तो भी उसे उघाड़ लेती है, खोज लेती है। और दुनिया में अगर हजारों लोग ध्यान में निष्णात हो जायें तो विचार की स्वतंत्रता होगी। उस विचार की स्वतंत्रता से लोकतंत्र पैदा होगा।

लोकतंत्र से विचार की स्वतंत्रता पैदा नहीं हो सकती। कौन करेगा पैदा? दो कौड़ी के राजनीतिज्ञ तुम्हारे संविधान बनाते हैं। फिर ये दो कौड़ी के राजनीतिज्ञ लोकतंत्र के नाम पर तुम्हारी छाती चूसते हैं। एक मजेदार खेल है जो दुनिया में चल रहा है। तुम्हारी सेवा हो रही है। मेवा... पुरानी कहावत ठीक है: जो सेवा करता है उसको मेवा मिलता है। सेवा तो कहीं दिखाई नहीं पड़ती, मगर मेवा मिल रहा है। उसी मेवे की तलाश में लोग सेवा तक करने को राजी हैं।

मैंने सुना है कि एक राजनीतिज्ञ चुनाव लड़ रहा था। द्वार-द्वार जाकर लोगों से कह रहा था कि यह मेरा चिह्न है, तुम्हारा मत मुझे ही मिलना चाहिए। एक औरत पांच-छह बच्चों के साथ बगिया में घूम रही थी, उसने सब बच्चों को चूमा; उस औरत से प्रार्थना की कि ध्यान रहे, भूल न जाये, यह मेरा चिह्न है। और बड़े प्यारे बच्चे हैं तुम्हारे। उस औरत ने कहा, क्षमा करिये, मैं इनकी नर्स हूं, इनकी मां नहीं। उस राजनीतिज्ञ ने कहा, धत तेरे की। मैं नाहक इनको चूम रहा हूं, इनकी नाक बह रही है और... मगर वोट के पीछे क्या-क्या करना पड़ता है। और तू भी एक औरत है। पहले क्यों न बोली कि ये मेरे बच्चे नहीं हैं, मैं सिर्फ नर्स हूं। नर्स भी तू गजब की है, कि छह ही बच्चों की नाक बह रही है। मगर अब जाना मत यहां से। क्योंकि मेरे पीछे और उम्मीदवार आ रहे हैं। चूमने दो एक-एक को। सब चूमेंगे, कम से कम नाक तो साफ हो जायेगी।

अमरीकी प्रेसिडेंट हूबर के संबंध में एक मजाक प्रचलित है। अमरीका में बहुत-से आदिवासी हैं, जिनका कि मुल्क है अमरीका। बड़े मजे की बात है। अमरीका कहा जाता है दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र। और जिनका यह देश है वे बेचारे रेड इंडियन्स जंगलों में कैद कर दिये गये हैं। और जो राज्य कर रहे हैं उनमें से कोई भी अमरीकी नहीं हैं। मुझसे उनकी नाराजगी यही थी। क्योंकि मैंने अमरीकी प्रेसिडेंट को यह चुनौती दी थी कि तुम मुझे अगर विदेशी समझते हो तो मैं केवल पांच साल से विदेशी हूं, तुम और तुम्हारे बाप-दादे तीन सौ साल से विदेशी हैं। बोलो कौन ज्यादा विदेशी है? और मैं हमलावर नहीं हूं। तुम और तुम्हारे बाप-दादे हमलावर हैं। अगर अपराध किसी ने किया है, तो तुमने किया है। और जिनका यह देश है, उनके साथ अमरीका ने इस तरह की चालबाजी

की है कि कल्पना के बाहर है। उनको छोटे-छोटे गिरोहों में बांटकर जंगलों में रख दिया है। और हर एक को इतनी पेन्शन दी जाती है, ताकि वे काम की मांग न करें, ताकि उन्हें शहरों में आने की जरूरत ही न पड़े। तुम पूरे अमरीका में घूम आओ, तुम्हें अमरीका के खास निवासियों का पता ही न चलेगा। जिनका देश है, वे जंगलों में शराब पीये हुए पड़े हैं। क्योंकि मुफ्त उनको पेन्शन मिलती है। तो जुआ खेलें, शराब पीयें, गुण्डागिरी करें, मारपीट करें, जेल जायें, इसके सिवाय और धन्धा भी क्या है? जब मुफ्त पैसा मिलता हो तो तुम करोगे क्या? पैसे के बल पर उनको नशे में धुत, जेलों में बन्द, अपराधों में जकड़े हुए हैं-उनको जो देश के मालिक हैं। और यह देश स्वतंत्रता का सबसे बड़ा देश है। लोकतंत्र का सबसे बड़ा देश है।

प्रेसिडेंट हूबर के संबंध में यह मजाक जारी रहा है, कि उनका चुनाव था...और वे एक रेड इंडियन आदिवासियों के समूह में वोट मांगने के लिए गये, तो जो राजनीनितिज्ञों का धन्धा है सारी दुनिया में, कि अगर तुम मुझे चुनते हो तो स्कूल खुलवा देंगे। और सारे रेड इंडियन कहते 'हू-हू-'-खिलखिला कर हंसते। उससे हूबर का और जोश बढ़ता। वे कहते, अस्पताल खुलवा देंगे। रेड इंडियन कहते, 'हू-हू।' और खिलखिलाहट की हंसी। यूं हूबर का भी जोश बढ़ता जाता है, कि तुम घबराओ मत। अगर मैं प्रेसिडेंट हो गया तो यूनिवर्सिटी भी खुलवा दूंगा। और वे कहते, 'हू-हू।' और ताली ठोंक-ठोंक कर, हंस-हंस कर 'हू-हू' की आवाज।

हूबर बड़ा प्रसन्न हुआ। जब वह सभा से बाहर निकला, तो वह इतना प्रसन्न था कि उसने रेड इंडियन का जो चीफ था, जो उनका मुखिया था, उससे कहा कि जरा मैं तुम्हारे इलाके को आसपास से घूम कर देख लूं। क्योंकि मुझे बहुत कुछ करना है तुम्हारे लोगों के लिए। बड़े प्यारे लोग हैं। उसने कहा कि और सब तो ठीक है, मुझे तुम्हें घुमाने में कोई अड़चन नहीं है। लेकिन उनकी एक खराब आदत है। तो जरा संभल कर चलना रास्ते पर, क्योंकि ये हर कहीं बैठ कर हू-हू कर देते हैं। हूबर ने कहा, 'हू-हू' कर देते हैं? उसने कहा, वह देख लो, रास्ते पर जहां देखो वहीं हू-हू का ढेर लगा है। हूबर बोला, हद हो गयी। तो ये कम्बख्त, जब मैं इनको जोर-जोर से चिल्ला-चिल्लाकर आश्वासन दे रहा था, और हंस-हंस कर 'हू, हू' कर रहे थे, तो इनका मतलब क्या था? मैं तो समझा कि मेरे नाम का पहला अक्षर--हूबर। ये हरामजादे इस हू हू की बात कर रहे थे?

उस मुखिया ने कहा, मैं क्या कहूं आपसे? हर राजनीतिज्ञ यही वचन देता है। हर साल यही होता है। न कभी स्कूल खुलता है, न कभी उस राजनीतिज्ञ के दर्शन दुबारा होते

हैं। ये सीधे-सादे लोग हैं। ये समझ गये, कि ये सब बातें 'हू-हू'! इनमें कोई मतलब नहीं है। बस उतना ही मतलब है जितना 'हू-हू' में होता है। तो आप नाराज न होना। ये कोई आपसे ही नहीं करते हैं 'हू-हू'। यहां जो भी राजनीतिज्ञ भाषण करने आता है, ये कम्बख्त ताली बजाते हैं और 'हू-हू' करते हैं। और जो भी इनकी 'हू-हू' सुनता है, प्रसन्न होता है। वह समझता है, ये अपनी भाषा में प्रशंसा कर रहे हैं। 'हू-हू' इनकी सबसे गन्दी गाली है।

लोकतंत्र कोई ऊपर से नहीं उतरेगा। विधानों में लिखो, संविधानों में चर्चा करो, फिर भी लोकतंत्र ऊपर से नहीं उतरेगा। अन्यथा अब तक उतर आया होता। मैं तुमसे कहना चाहता हूं कि लोकतंत्र आयेगा कभी तो एक ही रास्ता है उसका, वह तुम्हारे भीतर से आयेगा। जब करोड़-करोड़ जन पृथ्वी पर स्वतंत्र विचार करने की क्षमता पैदा कर लेंगे, तो उसी क्षमता का जो सामूहिक प्रदर्शन होगा, उसी क्षमता का जो आत्यंतिक परिणाम होगा, वह लोकतंत्र होगा।

तो बजाय यह कहने के कि लोकतंत्र में विचार-स्वातंत्र्य की आधारशिला रखी गयी है, यह कहना ज्यादा ठीक होगा कि स्वतंत्र विचार करो, तो लोकतंत्र की आधारशिला रखी जा सकती है। स्वतंत्र विचार लोकतंत्र से लाख गुना कीमती है। लोकतंत्र स्वतंत्र विचार का एक छोटा-सा परिणाम है। और भी हजार परिणाम होंगे। सबसे बड़ा परिणाम तो यह होगा कि तुम ईश्वर तक पहुंच जाओगे। सबसे छोटा परिणाम यह होगा कि तुम्हारे आसपास लोकतंत्र का निर्माण हो जायेगा। स्वतंत्र विचार की क्षमता अपरिसीमित है, लेकिन उससे पहले तुम्हें ध्यान के स्वास्थ्य से गुजर जाना जरूरी है।

प्रश्न : आपको ऐसा करना चाहिए और वैसा नहीं करना चाहिए, यह ठीक है और वह गलत है, ऐसी चर्चा अक्सर हम आपके प्रेमी किया करते हैं। ऐसी चर्चाओं से ऐसा लगता है, जैसे हम आपसे ज्यादा जानते हैं, और आपसे ज्यादा समझदार हैं। आप हमें अभय में प्रतिष्ठित करने में संलग्न हैं और हम अपने भय आप पर आरोपित करने का कोई मौका नहीं चूकते। भगवान इस बारे में कुछ प्रकाश डालें।

यह मामला थोड़ा जटिल है। और यह मामला मेरे और तुम्हारे बीच ही नहीं, यह उतना ही पुराना है जितना आदमी पुराना है। और चूंकि तुम्हारे तथाकथित संतों, साधुओं, महात्माओं, इन सबने तुम्हारी बातों का अनुसरण किया है, तुमने जो कहा वैसा माना। यह सौदे की बात थी। यह मामला व्यवसाय का था। साधु तुम्हारी मानकर चलता था, तो तुम

साधु को सम्मान देते थे। ज्यादा सम्मान चाहिए हो, तो ज्यादा मानकर चलो। जो मानकर नहीं चलेगा वह सम्मानित नहीं होगा। यह तुम्हारे सम्मान की कीमत थी।

और आदमी अहंकार का बड़ा भूखा है। इस दुनिया में सबसे बड़ी भूख अहंकार की भूख है, जो बुझती ही नहीं। लाख बुझाओ, तुम जो भी इस अहंकार की भूख में डालते हो, वह सब आग में डाला हुआ घी हो जाता है। लपटें और बढ़ने लगती हैं। कैसी भी बेवकूफी की बात हो, अगर सम्मान मिलता है, तो तत्काल तुम ऐसे लोग पा जाओगे, जो उसे पूरा करने को राजी हैं। तुम अपने किसी भी महात्मा के जीवन को उठा कर देख लो...।

जैनों के एक बहुत प्रतिष्ठित साधु थे। जो व्यक्ति उनके साथ पंद्रह-बीस वर्षों तक रहा, उसने उनकी जीवन-कथा लिखी। और वह उनकी जीवन-कथा मुझे भेंट करने आया था। मैं ऐसे ही पन्ने उलटकर देखने लगा। सत्तर वर्ष से ऊपर उनकी उम्र हो गयी थी। और आज से कोई पचास साल पहले, जब कि वे बीस वर्ष के रहे होंगे, तब उन्होंने अपनी पत्नी को छोड़कर संन्यास ले लिया था। वे जन्म से हिन्दू थे, सुनार थे। और सुनार शूद्रों का हिस्सा है। हिन्दू व्यवस्था में उसका कोई सम्मान नहीं है। लेकिन वे जैन हो गये। जब भी कोई व्यक्ति एक धर्म को छोड़कर दूसरे धर्म में प्रवेश करता है, तो व्यावसायिक रूप से बड़ा लाभ होता है। नये धर्म में उसको प्रतिष्ठा मिलती है जो पुराने धर्म में कभी नहीं मिल सकती थी। क्योंकि नये धर्म को उसके कारण प्रतिष्ठा मिलती है। नया धर्म कहता है, देखो, अगर न होती कोई बात हममें, अगर न होता कोई राज हममें, तो दूसरे धर्मों को छोड़कर लोग हमारे धर्मों में न आते।

इस सुनार का जैन हो जाना पर्याप्त था सम्मान के लिए। और फिर जैनों के नियमों का पालन--और जैसा कि तुम जानते हो, नया-नया मुल्ला थोड़ी ज्यादा ही नमाज पढ़ता है; थोड़ी देर तक ही नमाज पढ़ता है। तो उन्होंने जैन साधुओं को भी पीछे छोड़ दिया था। अगर जैन साधु दिन में एक बार भोजन करते हैं, तो वह केवल दो दिन में एक बार भोजन करते थे। उनकी भारी प्रतिष्ठा थी। और जब वे सत्तर साल के थे, तब उनकी पत्नी की मृत्यु हुई। इन पचास सालों में उस गरीब औरत ने चक्की पीसकर, किसी के घर बर्तन मलकर, किसी के कपड़े धोकर अपनी रोटी जुटाई। एक छोटा बच्चा ये छोड़ गये थे, उसको पाला। उस जीवन कथा में एक घटना आती है--इन साधु का नाम था गणेश वर्णी--कि जब पत्नी की मृत्यु की खबर उन्हें मिली तो उन्होंने कहा, बड़ा अच्छा हुआ, एक बोझ टला--पचास साल पहले जिस पत्नी को छोड़कर ये चले आये थे। अपराध था

वह। क्योंकि किसके सहारे इस बेसहारा लड़की को छोड़ दिया था? और कोई भी नहीं था। न इसकी कोई शिक्षा थी, न दीक्षा। और इसको एक बच्चा भी दे आये थे। और इस स्त्री ने इन पचास वर्षों में उनकी तरफ सिर्फ सम्मान से ही देखा। उसने सदा यही सोचा कि मैं कितनी ही तकलीफ उठा लूं, कम से कम वे तो अपने मार्ग पर ऊंचाइयां छू रहे हैं। कम से कम वे तो ईश्वर के निकट पहुंचे जा रहे हैं। मैं दूर ही खड़ी रहूंगी। लेकिन यह भी क्या कम सौभाग्य है कि मेरा पति, कभी जो मेरा पति था, आज इस ऊंचाई पर पहुंच गया है। वह उनके दर्शन कर भी आती थी, तो लाखों की भीड़ में दूर खड़े होकर सिर्फ देख लेती थी। इतना ही सौभाग्य बहुत था। उस स्त्री के मर जाने से...

मैंने उस लेखक को पूछा कि मेरी समझ के यह बाहर है कि जिसे पचास साल पहले यह आदमी छोड़कर भाग आया था, जिससे इसने आज्ञा भी न ली थी, जिसको इसने बताया भी नहीं था, रात के अंधेरे में सोता हुआ छोड़कर यह भाग निकला था, इसके ऊपर क्या बोझ था? और अगर पचास साल के बाद भी बोझ था, तो इसने छोड़ा क्या था? वह अब भी उसकी पत्नी थी। वह बेटा उसका, अब भी अपना बेटा था। यह छोड़ना बस ऊपर-ऊपर था। भीतर बंधन गहरे थे। और शायद किसी कोने में शर्म भी छिपी होगी, क्योंकि पलायन किया था। यह भगोड़ापन था, यह कोई संन्यास न था।

जैनों में संन्यास की पांच सीढ़ियां हैं। चार सीढ़ियां तो यह पार कर गया, पांचवीं सीढ़ी जरा मुश्किल है। मुश्किल है इसलिए कि पांचवीं सीढ़ी पर नग्न होना पड़ता है। बीमार हैं, मरने के करीब हैं। जिन्दा तो हिम्मत न कर सके। एक ही चादर रह गयी थी छोड़ने को। मरते वक्त बोलती भी बन्द होने लगी थी। कुछ कहना चाहते हैं, शिष्य समझ नहीं पाते। लेकिन यह लेखक बीस वर्षों से साथ था, उनका जीवन लिख रहा था। उसे पास बुलाकर वे समझाते हैं, यह समझ लेता है। उनकी चादर अलग करके उन्हें नग्न कर दिया जाता है। इधर वे नग्न होते हैं, उधर सांस टूट जाती है। मगर बड़े प्रसन्न-चित्त। और जैनियों में उनके सम्मान की आखिरी सीमा आ जाती है। क्योंकि वह आखिरी सीढ़ी पर त्याग की पहुंचकर, जिसके बाद पार फिर कोई और सीढ़ी नहीं है। फिर मोक्ष का द्वार ही आ गया।

अब बड़ा मजा है। शरीर खुद ही छूट गया, चादर उस पर थी या नहीं, इससे क्या फर्क पड़ता है? चादर होती तो भी छूटता, चादर न होती तो भी छूटता। लेकिन मरते वक्त भी एक वासना मन में बनी है, कि लोगों के मन की आखिरी तृप्ति और कर दूं, और अहंकार की आखिरी पूजा और हो ले। वह जो चादर हटा दी, उसको हटाने की अब हाथों में खुद ताकत भी न थी। वह भी दूसरों ने हटायी। लेकिन उसके हटते ही हजारों लोगों की

आंखों से आंसू झर रहे हैं आनंद के। लोग अहोभाव से भर गये। तुम लोगों की तृप्ति करो, चाहे तृप्ति में कोई अर्थ हो या न हो, लोग तुम्हें सम्मान देंगे।

यह सदियों से आता चला आ रहा है। अगर लोग कांटों की शैया पर सोये हुए आदमी को सम्मान देते हैं, तो कांटों की शैय्या पर सो जाओ। और मामला कोई कठिन नहीं है। न तो मरते वक्त चादर दूसरे उतार लें, यह कोई कठिन है। तुम्हारी पीठ पर, अपने घर में बैठकर पत्नी से कहना कि जरा सुई लेकर जगह-जगह चुभा। और तुम हैरान होओगे कि बहुत-सी जगह पर वह चुभायेगी और तुम्हें पता भी नहीं चलेगा। क्योंकि पूरी पीठ संवेदनशील नहीं है। पीठ पर कुछ हिस्सों पर सुई की चुभन मालूम होगी, कुछ हिस्सों पर सुई की चुभन मालूम नहीं होगी। वहां कोई संवेदना का स्नायु नहीं है। वह जो कांटों की सेज बनायी जाती है, वह इस तरकीब से बनायी जाती है, कि कांटे उन स्थानों पर पड़ते हैं, जहां चुभन नहीं हो सकती, जहां तुम्हें कांटों का पता नहीं चल सकता। देखने वालों को लगेगा कि तुम कांटों पर सोये हो। लेकिन बड़ा मजा यह है कि कांटों पर भी सो गये, तो कौन-सी उपलब्धि है? मगर हजारों की भीड़ है और पूछो कि किस बात की पूजा है? क्योंकि महाराज कांटों पर सोये हैं। महाराज नालायक हैं और ये हजारों नालायक... लेकिन ये एक-दूसरे के परिपूरक हैं।

तुमने जो पूछा है, कि हम सोचते हैं आपके संबंध में, कि आप ऐसा न कहते, ऐसा न करते...। लेकिन तुम गलत आदमी के पास आ गये हो। मुझे तो जो करना है, मैं वही करता हूं। और कभी मुझे सन्देह भी हो गया, कि तुम चाहते हो कि मैं यह न करूं, तो मैं जरूर करता हूं। शुरू-शुरू में, पहले मेरे पास भी लोग आ जाते थे कि आप यह न कहना, और मैं वह जरूर कहता था; कि आप यह न करना, और वह मैं जरूर करता था। फिर उन्होंने मेरे पास आना बन्द कर दिया कि यह तो झंझट की बात है। इससे तो बेहतर चुप ही रहना और देखना, जो करना हो करने दो। अब बेचारे क्या करें! खुद ही आपस में बैठकर विचार कर लेते हैं। मुझे पता ही नहीं चलता कि उनका क्या इरादा है। क्योंकि वे भलीभांति जानते हैं, मैं ठीक अपनी मस्ती से जीता हूं, अपनी मौज से चलता हूं। क्योंकि न मुझे फिक्र है तुम्हारे आदर की, और न मुझे चिन्ता है तुम्हारे अनादर की। सारी दुनिया मेरी प्रशंसा करे, तो मुझे फर्क नहीं पड़ता। और सारी दुनिया मेरी निन्दा करे, तो मुझे फर्क नहीं पड़ता।

मैं अपनी निजता में भरोसा करता हूं। और उसके अतिरिक्त मेरे लिए कोई और आदेश का स्रोत नहीं है। न तो किसी शास्त्र में है, न किसी व्यक्ति में है। मेरे जीवन का

सूत्र मेरे अपने मौन, मेरी अपनी शान्ति में है। इसलिए तकलीफ मैं समझ सकता हूं। मेरे पास जो लोग आये हैं; क्योंकि ये वे ही लोग हैं, जो औरों के पास भी जाते हैं। और वहां यह देखते हैं कि साधु महाराज इनकी बात मानकर चलते हैं। ये कहते हैं उठो, तो वे उठ गये। ये कहते हैं बैठो, तो वे बैठ गये। मुझसे ये कोई कवायद नहीं करवा सकते। इनकी मुसीबत यह है कि इनका आदर और इनकी निन्दा, मेरे लिए दोनों बेमानी हैं।

इसलिए धीरे-धीरे मेरे पास एक खास तरह के लोगों का जमाव अपने आप इकट्ठा होता गया है। वे लोग जो बिना अपनी टांग अड़ाये नहीं रह सकते थे, थोड़े दिन कोशिश किये, खुद की टांग में फ्रेक्चर करवाकर रास्ता पकड़ गये। मैं किसी की टांग-वांग बीच में नहीं आने देता। अब तो मेरे पास वे लोग हैं, जिनसे मेरा संबंध न तो आदर का है, न श्रद्धा का है; जिनसे मेरा संबंध प्रेम का है। पुरानी आदत है तुम्हारी। कोई हर्जा नहीं है, बैठ गये, कर ली चर्चा, जानते हुए कि बेकार मेहनत कर रहे हो। मगर अगर मजा आता है, तो कोई हर्जा भी नहीं। मुझे तो अब पता भी नहीं चलता। मुझसे कोई कहता भी नहीं। धीरे-धीरे मेरे पास केवल प्रेमियों का, पियक्कड़ों का एक समूह इकट्ठा हो गया है। यह मधुशाला है, कोई मंदिर नहीं है।

और ये साधु महात्मा और सिद्ध, इन सबकी कोटि में तुम मुझे मत रखना। मैं तो एक दीवाना हूं। तुम मुझे पागल कह लेना, वह ज्यादा ठीक, लेकिन कभी महात्मा मत कहना। क्योंकि तुमने इतने गलत लोगों को महात्मा कहा है, उस कतार में मैं खड़े होने को राजी नहीं हूं।

और यह अच्छा ही हुआ कि धीरे-धीरे वैसे लोग हट गये, छंट गये अपने आप। अब एक और तरह का रस मेरे और तुम्हारे बीच बहता है।

न हरम में न कसीदा में न बुतखाने में,
चैन अगर कहीं मिलता है तो साकी, बस तेरे मयखाने में।

यह तो मयखाना है। और मैं मानता हूं कि धर्म जब भी जीवित होता है, तो मयखाने निर्मित होते हैं। और जब मर जाता है, तो मधुशालाएं धीरे-धीरे मन्दिर बन जाती हैं, मस्जिद बन जाती हैं, गिरजे बन जाती हैं। फिर वहां गीत नहीं उठते, फिर वहां मौज नहीं, फिर वहां नाच नहीं होता, फिर वहां घूंघर नहीं बजते। फिर वहां कोई सितार नहीं छेड़ता, फिर वहां कोई बांसुरी नहीं गूंजती। फिर वहां उदास उपदेश हैं, मुर्दा वचन हैं, सड़े हुए शास्त्र हैं। उस सबमें जाकर तुम एक कब्रिस्तान के हिस्से बन जाते हो। यह कोई कब्रिस्तान नहीं है। यहां जिन्दगी परमात्मा है। यहां नृत्य प्रार्थना है। यहां दिल खोलकर

हंस लेना पूजा है। इसलिए यह तुम्हारी मर्जी है। कभी-कभी बैठ गये, कोई हर्ज नहीं है। मगर बेकार समय खराब कर रहे हो।

मैंने अपनी जिन्दगी में कभी भी कोई ऐसा काम नहीं किया, जो किसी की सलाह से किया हो। और इससे कभी कोई पश्चात्ताप नहीं होता। इससे तृप्ति होती है, एक अपूर्व तृप्ति, कि मैं अपने ढंग से जीया। और एक ऐसी भीड़ में, जहां हर आदमी चाहता था कि मैं उसके ढंग से जीऊं; जो प्रेम करते थे, श्रद्धा करते थे, आदर करते थे, मित्र थे, बुजुर्ग थे, शिक्षक थे, सबकी एक ही इच्छा थी, उनकी तरह--वे जो चाहें। इस बड़ी भीड़ में मैं अपनी तरह जी लिया, इससे मैं परम आनंदित हूं।

मेरे हिसाब में जब भी तुम किसी पराये के सहारे पर चल पड़ते हो, तभी अपने को चूकने लगते हो। जब भी कभी तुम किसी और का इशारा पकड़ लेते हो, तभी तुम अपने को खोने लगते हो। और धीरे-धीरे एक भीड़ तुम्हें हर दिशा में खींचने लगती है। तुम्हारे चीथड़े हो जाते हैं, तुम्हारी जिन्दगी कभी फूल नहीं बन पाती। अपन गीत गाओ। न तुम दूसरे के हृदय की धड़कन से धड़क सकते हो, न दूसरे की सांसों से सांसें ले सकते हो। तो फिर क्यों दूसरों के जीवन से जीवन लो?

मैं प्रत्येक व्यक्ति को उसका व्यक्तित्व देना चाहता हूं।

और अगर यह दुनिया व्यक्तियों की दुनिया हो, भीड़ न हो, भेड़ों की भीड़ नहीं, सिंहों की दुनिया हो, तो इसके सौन्दर्य का हिसाब लगाना मुश्किल हो जाये। क्योंकि एक-एक आदमी के पास ऐसा खजाना है, मगर उस खजाने तक वह पहुंच ही नहीं पाता। इतने सलाहकार हैं, उनकी इतनी भीड़ है, मुफ्त सलाह दे रहे हैं। अच्छी सलाह दे रहे हैं। मंशा उनकी कुछ बुरी नहीं, मगर परिणाम बहुत बुरा है। क्योंकि सारी दुनिया थोथी होकर रह गयी है। यहां कोई अपनी जगह नहीं है। तुम जहां हो, वहां नहीं हो। तुम जो हो, वही नहीं हो। तुम पता नहीं कहां हो, कितनी दूर निकल गये हो अपने से! और बीच में न मालूम कितने सलाहकार हैं, कितने गुरु हैं, कितने महात्मा हैं, जो तुम्हें अपने तक लौटने न देंगे।

मैं मानता हूं, धर्म एक क्रान्ति है। और क्रान्ति से मेरा अर्थ है, व्यक्ति का भीड़ से मुक्त होकर जीना। कोई फिक्र नहीं, कभी गड्ढे में भी गिरोगे। और भूल-चूक भी होगी। मगर हर गड्ढे से निकलने का उपाय है। उसे भी खुद ही खोजना, किसी दूसरे से मत पूछना। तो गड्ढे में गिरना भी एक सीख बन जायेगी। गिरोगे, उठोगे। यों ही धीरे-धीरे जीवन में परिपक्वता आती है। मगर तुम्हारे सलाहकार हैं, वे कहते हैं, हम गिरने ही न देंगे। और चूंकि वे तुम्हें गिरने ही न देंगे, वे तुम्हें कभी सीखने ही न देंगे।

मैंने सुना है, एक अमरीकी होटल के सामने एक बड़ी कार आकर रुकी। एक स्त्री कार से नीचे उतरी। होटल से चार बैरा दौड़े हुए आये, और एक दस-ग्यारह साल के लड़के को--जो आदमी का कम और हाथी का पिल्ला ज्यादा मालूम पड़ता था--उसको खींचकर बाहर निकाला। और चार बैरे उसको उठाकर चले। यह दृश्य देखने को जरा भीड़ इकट्ठी हो गयी, कि यह हो क्या रहा है। लड़का सुन्दर है, सब तरह से स्वस्थ है। किसी ने पूछ ही लिया कि इस बेचारे को हो क्या गया है? उस औरत ने कहा, इसे कुछ भी नहीं हुआ। लेकिन हमारे पास इतना धन है, कि हमारे बेटों को कोई जमीन पर चलने की जरूरत नहीं है। बड़ी भली मंशा है, मगर मार डाला इस बेटे को! यह बेटा पैदा हुआ या न हुआ, बराबर हो गया। यह इसको पैदल भी नहीं चलने देगी। और यह खा-खाकर आदमी न होकर, हाथी हुआ जा रहा है।

अमरीका में तीस मिलियन आदमी अस्पतालों में बन्द हैं। क्योंकि वे खा-खाकर इतने मोटे हो गये हैं, कि अब घरों में उनको संभालना मुश्किल है। अजीब दुनिया है। ठीक तीस मिलियन आदमी अमरीका में भूखे मर रहे हैं सड़कों पर, और तीस मिलियन आदमी अस्पतालों में बन्द हैं। डाक्टर चाहिए, नर्सें चाहिए। घर में इनको रखा नहीं जा सकता, क्योंकि किसी की यह हैसियत नहीं है, कि वे उनको खाने से रोके। ये खाने के सिवाय और कुछ जानते नहीं। सारे चार्वाक वहीं पैदा हो गये हैं।

अपनी सुनो, अपनी गुनो। कोई दूसरा सलाह दे, धन्यवाद दो, विचार करो, मगर अन्धे की तरह चल मत पड़ो। जीवन को जितनी ज्यादा निजता दे सको, उतना अच्छा है। दूसरे की सलाहें बड़ी मुश्किलों में ले जाती हैं।

एक आदमी की औरत मोटी होती जा रही है, मोटी होती जा रही है, मोटी होती...। क्योंकि आदमी के पास जैसे-जैसे तिजोड़ी बड़ी होती जाती है, वैसे-वैसे औरत मोटी होती जाती है। यह बड़ा अजीब संबंध है तिजोड़ियों में और औरतों में। आखिर वह आदमी घबरा गया। वह सूखा जा रहा है, कमा-कमाकर मरा जा रहा है। इधर औरत है, कि सब सोफे छोटे होते जा रहे हैं। और डाक्टर से उसने पूछा, मनोचिकित्सक से पूछा, क्या करें? उन्होंने कहा, तुम एक काम करो। मनोचिकित्सक ने एक बहुत खूबसूरत नग्न स्त्री की तस्वीर दी--सानुपात, सुघड़, अंग-अंग सुन्दर, कोई कमी न खोज सके। कहा, इसको जाकर तुम अपने घर में रेफ्रिजरेटर के भीतर चिपका दो। और यह रहा ग्लू। यह ग्लू ऐसा है कि एक बार फोटो चिपक गयी, तो फिर निकलती नहीं। सो जब भी तुम्हारी पत्नी फ्रिज को खोलकर देखेगी कुछ खाने के लिये, और इस नग्न स्त्री को देखेगी, शरमायेगी। मन

ही मन अपने को दोष देगी कि यह मैंने अपने शरीर का क्या कर लिया! अब यह कुछ शरीर जैसा मालूम नहीं पड़ता। अब तो ऐसा मालूम पड़ता है जैसे एक थैला है, जिसमें सामान भरा हुआ है।

पति ने कहा, बात तो पते की है। फीस चुकायी, फ्रिज में ले जाकर तस्वीर चिपकायी। कोई दो महीने बाद मनोचिकित्सक को मिल गया सुबह-सुबह बीच पर। मनोचिकित्सक ने कहा कि क्या हुआ? तुम आये नहीं। उसने कहा, क्या खाक आते। लाख उस तस्वीर को उखाड़ने की कोशिश में लगा हूं, उखड़ती नहीं। मनोवैज्ञानिक ने कहा, लेकिन तुम्हें वह तस्वीर उखाड़ने की जरूरत ही क्या है? उसने कहा, उल्टा ही सब हो गया। क्योंकि मैं उस तस्वीर को देखने जाता हूं बार-बार। और जब भी तस्वीर को देखता हूं, तो मन... आखिर आदमी का मन है। कभी यह मिठाई, कभी आइसक्रीम...। कभी भूल कर ऐसी तस्वीर किसी और को मत देना। देखते नहीं मेरी हालत? मनोवैज्ञानिक ने कहा, वह तो मैं देख रहा हूं कि दो महीने में तो तुमने गजब कर दिया। दो महीने पहले आये थे तो चूहा मालूम होते थे, और अब तो पहाड़ मालूम होते हो। मगर यह तो बताओ, पत्नी का क्या हुआ? उसने कहा, पत्नी का मत पूछो। वह दुष्ट तस्वीर की तरफ देखती ही नहीं। उसकी आंखें तो सिर्फ भोजन को देखती हैं।

सलाहें, मशविरे चारों तरफ हर कोई हर किसी को दे रहा है। मुफ्त लोग बांट रहे हैं सलाहें। जगह-जगह तुम्हें मिल जायेंगे अरस्तू, अफलातून, कि ऐसा ज्ञान दें, कि जिसकी चोट से सदा के लिए जग जाओ। मगर वे खुद ही नहीं जगे अपनी चोट से, और तुम्हें जगा रहे हैं। खुद की सलाह अपने ही काम नहीं आयी। अब वे दूसरे को बांट रहे हैं।

सुनो सबकी, समझने की भी कोशिश करो, लेकिन हमेशा निर्णय अपनी निजता का हो। और अपनी शान्ति में, अपने मौन में, उत्तरदायित्वपूर्वक जो भी तय करो--सोच कर, कि मैंने तय किया है सही होगा, गलत होगा, कोई भी परिणाम होगा, उत्तरदायी मैं हूं; किसी दूसरे पर उत्तरदायित्व को नहीं थोपूंगा। फिर तुम्हारे जीवन में भी निखार आना शुरू हो जायेगा।

तो फिजूल बैठकर तुम मेरे संबंध में चर्चा मत करो। मैं इतना बिगड़ चुका कि अब तुम्हारी चर्चा के हाथ मुझ तक पहुंच न पायेंगे। एक सीमा होती है, फिर उस सीमा के पार मुश्किल हो जाती है। सो हम तो गये। अब तुम भी कहीं चर्चा करते-करते हमारे साथ मत चले आना। अपनी सोचो। जिन्दगी छोटी है। समय बहुत कम है। कल का कोई भरोसा नहीं है। और काम बड़ा है। जिन्दगी को जगमगाना है। अमृत का अनुभव करना है। व्यर्थ

की बकवास, और बहुत लोग हैं, उन्हें करने दो। काम से काम रखो, तो राम बहुत दूर नहीं है।

प्रश्न: प्यारे भगवान, तेरह वर्ष पहले आपने मुझे संन्यासी बनाकर नया जीवन दिया। प्रभु, इस पूरे समय में आपने बहुत दिया। पूरा जीवन बदल गया। फिर भी प्यास बढ़ती जा रही है। आपके निकट रहने का भाव तीव्र होता जाता है। अब क्या करूं? इस विरह में धैर्य रख सकूं, इसके लिए आप ही शक्ति देना।

जीवन का रस जितना पीयो, उतनी प्यास बढ़ती चली जाती है। वही उसका प्रमाण है, कि जितना पाओ उतना और पाने का मन होता है। जितने पंख खोलो, आकाश और आगे, और आगे, और आगे... होता है कि इन दो पंखों में सारे आकाश को छिपा दें। लेकिन धैर्य तो रखना होगा। अधैर्य से तो जो पाया है, वह भी छूट सकता है। क्योंकि अधैर्य तो बेचैनी है। और अधैर्य में तो शिकायत है, शिकवा है। जो मिला है उसके लिए धन्यभागी बनो। उसके लिए अहोभाव अनुभव करो। जो मिला है उसके लिए अगर मन में धन्यवाद हो, तो और मिलेगा।

और एक बार यह सूत्र खयाल में आ जाये कि धन्यवाद...जिसे तुम चाहकर भी, खोजकर भी नहीं पाते, वह अचानक न मालूम किस द्वार से, झरने की तरह, न मालूम कितना अमृत बरसा जाता है।

सूफी फकीर हुआ अलहिल्लाज़ मंसूर। उसे लोगों ने सदा हंसते हुए देखा। फांसी पर भी हंसते हुए देखा। किसी ने भीड़ में से पूछा कि अलहिल्लाज़, क्या तुम पागल हो? पहले तो ठीक था कि तुम हंसते थे, प्रसन्न थे, समाधि का अनुभव कर रहे थे, मगर अब सूली पर चढ़े हो, अब किस बात की हंसी? अलहिल्लाज़ कहने लगा कि अब इस बात की हंसी, कि यह भी खूब रही। जब तक जीवन में कोई खुशी न थी, कोई फूल न थे, कोई पत्थर भी मारने न आया। और अब जब जीवन में सब कुछ है, जब कि भीतर सिवाय अहोभाव के और कुछ भी दूसरा स्वर नहीं है, तब फांसी है। खेल उसके निराले हैं। मगर वह क्या समझता है! खेल अपने भी निराले हैं। अगर वह सूली का इन्तजाम कर सकता है, तो हम मुस्कुराते हुए मर भी सकते हैं। और आखिर इन्तजाम उसी का है। ये जो मारने आये हैं, सब उसीके इशारे पर आये हैं।

लाखों लोग इकट्ठे थे, पत्थर मारने आये थे। क्योंकि हिल्लाज़ ऐसी बातें कह रहा

था, जो उन्हें लगती थीं धर्म के खिलाफ हैं, इस्लाम के खिलाफ हैं। सच तो यह है कि वह जो कह रहा था, वही इस्लाम है। और जिसे वे इस्लाम समझे हुए बैठे थे, वह केवल सड़ी-गली परम्परा है। वह जिन्दा झरना था। और वे जिस कुएं के पास बैठे थे, उसका पानी कभी का सूख चुका था। लेकिन जब हिल्लाज़ की हंसी उन्होंने देखी, तो जो हाथ पत्थर मारने को उठे थे, वे रुक गये। हिल्लाज़ ने कहा, बेफिक्र मारो, फिर मौका दुबारा न मिलेगा। और मिला भी तो हिल्लाज़ जैसा आदमी न मिलेगा। तुम पत्थर मारो। कड़ी हिम्मत कर लो, डरो मत। और हम भी देख लें अपनी हिम्मत, कि तुम्हारे पत्थरों की वर्षा में भी हंसी कायम रहती है, खो नहीं जाती। और आखिरी वचन जो हिल्लाज़ ने कहे हैं मरने के पहले, वे याद रख लेने जैसे हैं। उसने कहा, जीवन में बहुत आनंद जाना, लेकिन जो आनंद सूली पर जाना, ...अभागे हैं वे लोग, जो बिना सूली पर चढ़े मर जाते हैं।

सूली को भी धन्यवाद बना लिया। इसे भी ईश्वर का वरदान बना लिया।

तो मैं तुमसे कहूंगा, अगर संन्यास ने तुम्हारे जीवन में शान्ति दी है, आनंद दिया है, मस्ती दी है... प्यास भी आयेगी। उस प्यास को दबाना मत और उस प्यास को गलत न समझना। जब अमृत मिलता हो तो प्यास तो मिलेगी ही। और बढ़ती ही चली जायेगी। यह तो तब तक बढ़ती रहेगी, जब तक तुम मिटकर अमृत के साथ एक न हो जाओ। लेकिन अधैर्य रुकावट बन सकता है। इसलिए धैर्य रखना और धन्यवाद का भाव रखना। जो मिला है, उसके लिए धन्यवाद। जो मिलेगा, उसके लिए धन्यवाद। तुम्हारे रोएं-रोएं में केवल धन्यवाद का एक भाव रह जाये, तो बहुत मिलेगा--बिन तौला, बिन नापा; जिसका कोई छोर नहीं।

सब कुछ मिलेगा। सब कुछ हमारा है। सिर्फ हमारे जागने की जरूरत है। और पहचानने की जरूरत है। जो भी मिलता है, वह कोई पराये का नहीं है। वह तुम्हारे ही भीतर सोया था, तुम्हारे ही भीतर छिपा था। इसलिए जल्दी क्या है ? और थोड़ी-बहुत देर भी हो जाये, तो विरह का आनन्द भी लेना सीखना चाहिए। विरह की भी मिठास है। और कभी-कभी तो यूं होता है कि मिलन में भी जो मिठास नहीं होती, वह विरह में होती है। जो पाकर भी नहीं मिलता वह पाने की आकांक्षा में मिलता है।

धन्यवाद।
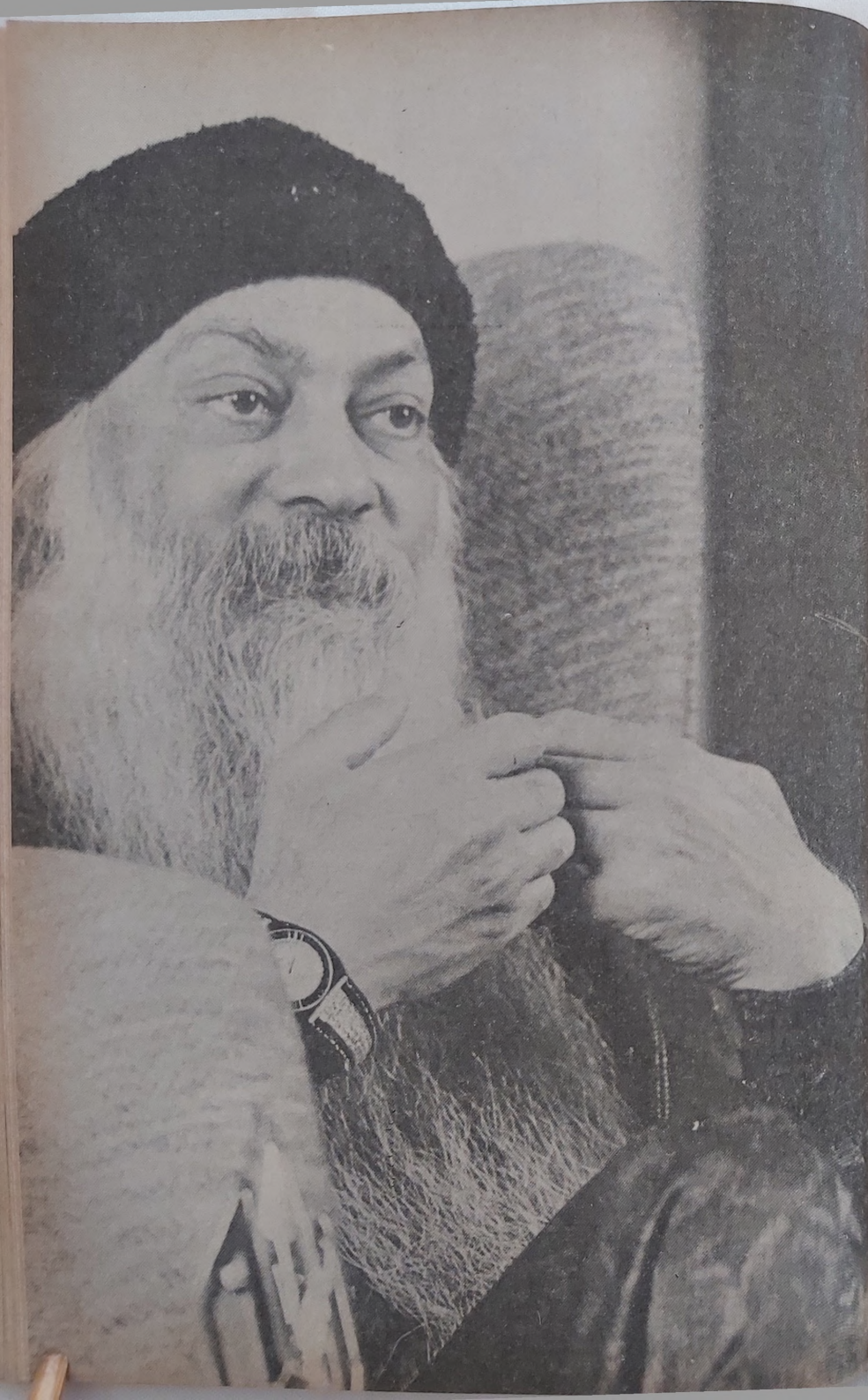
वर्तमान संस्कृति का कैंसर : महत्वाकांक्षा

दसवां प्रवचन : ८ अगस्त, १९८६, ७.०० संध्या, सुमिला, जुहू, बम्बई

प्रश्न : भगवान, आज सारी दुनिया में आतंकवाद (टेरेरिज्म) छाया हुआ है। मनुष्य की इस रुग्णता और विक्षिप्तता का मूल स्रोत क्या है? यह कैसे निर्मित हुआ? इसका निदान और इसकी चिकित्सा क्या है? क्या आशा की जा सकती है, कि कभी मनुष्यता आतंकवाद से मुक्त हो सकेगी?

मनुष्यता आज आतंक से छा गयी होती तो बात बड़ी आसान थी। मनुष्यता सदा से ही आतंक से छायी रही। इसलिए बात बहुत जटिल है। आतंक के रूप बदलते रहे हैं। विक्षिप्तता ने नये-नये रंग, नये-नये ढंग लिये हैं। लेकिन पूरे इतिहास में उंगलियों पर गिने जा सकें ऐसे थोड़े-से लोगों को छोड़कर और शेष सारे आदमी किसी न किसी तरह बीमार थे। ये बीमारियां उतनी ही पुरानी हैं, जितना पुराना आदमी है। और इसलिए इन बीमारियों की, विक्षिप्तताओं को दूर करने की जिसने भी कोशिश की है; विक्षिप्त लोगों की भीड़ ने उसे ही दूर कर दिया है।

जिन लोगों ने सुकरात को जहर पिलाया और जिन्होंने जीसस को सूली पर चढ़ाया, वे इस बात के सबूत हैं। सुकरात जो कह रहा था, आदमी को स्वस्थ करने के लिए ठीक-ठीक निदान दे रहा था। लेकिन भीड़ मानने को राजी नहीं होना चाहती कि विक्षिप्त है। और जिस आदमी को भी स्वस्थ होना हो, उसे कम से कम पहले तो यह बात माननी

ही पड़ेगी कि वह स्वस्थ नहीं है। और यहीं अड़चन खड़ी हो जाती है।

दुनिया में हजारों पागलखाने हैं, लेकिन एक भी ऐसा पागल नहीं है, जो मानने को राजी हो कि वह पागल है। हर पागल सिद्ध करने की कोशिश करता है कि सारी दुनिया होगी पागल, लेकिन मैं पागल नहीं हूं।

जिन लोगों के जीवन में क्रांति घटी है, जो रूपांतरित हुए है, वे थोड़े-से लोग वे ही थे, जिन्होंने यह स्वीकार किया कि हम विक्षिप्त हैं, हम रुग्ण हैं, हम अशान्त हैं।

जीवन के स्वास्थ्य के लिए पहला चरण अपने अस्वास्थ्य को स्वीकार करना है। लेकिन कोई भी तुमसे कहे, तुम सुन्दर हो, तो प्रीतिकर लगता है। और कोई तुमसे कहे, तुम सुन्दर नहीं हो, तो अप्रीतिकर लगता है। कोई तुमसे कहे कि तुम सही हो, तो भला लगता है, आश्वासन मिलता है, सांत्वना मिलती है। और कोई उघाड़कर तुम्हारे घावों को तुम्हें दिखाये, तो वह आदमी दुश्मन जैसा मालूम होता है। आदमी के इस अस्वस्थ होने के कारण बहुत सीधे-साफ हैं।

सबसे पहली बात, कि आदमी ने प्रकृति के स्थान पर, स्वाभाविक के स्थान पर अस्वाभाविक को जीवन का लक्ष्य बना रखा है। सहज होने की जगह, असहज पर हमारी आंखें टिकी हैं। जो आदमी जितना ही अस्वाभाविक हो जाता है, हम उसे उतना ही आदर देते हैं। वह साधु होता है, संत होता है, महात्मा होता है, सिद्ध होता है। हमारा आदर उसे और भी अस्वाभाविक होने के लिए प्रेरणा देता है। और हमारा आदर हमें भी उसका अनुसरण करने के लिए, उसके चरणों पर चलने के लिए एक प्यास बन जाता है।

क्योंकि हम देखते हैं, उस आदमी को सारी दुनिया आदर दे रही है। हम गलत हो सकते हैं, सारी दुनिया तो गलत नहीं हो सकती। लेकिन हर आदमी ऐसा ही सोचता है। इस तरह गलतियों की पूजा होती है, भ्रांतियों को सम्मान मिलता है। अस्वाभाविकताओं, श्रद्धा... और हम जाल में उलझ जाते हैं। कोई आदमी अगर उपवास करता है, तो हमारे आदर का पात्र हो जाता है। जैसे भूखे मरने से कोई अध्यात्म का संबंध हो। अगर भूखे मरने से अध्यात्म का संबंध होता, तो दुनिया के सारे भूखे आध्यात्मिक हो जाते। न तो कोई भूखे होने से आध्यात्मिक होता है, न कोई जरूरत से ज्यादा भोजन करने पर आध्यात्मिक होता है।

जीवन में समता चाहिए, संतुलन चाहिए। जीवन यूं है, जैसे कोई तलवार की धार पर चले। जरा इधर, जरा उधर, कि भटकना शुरू हो जाता है।

स्वस्थ होने का सूत्र हैः सम्यक समता। इस बात का बोध, कि जीवन में किसी भी

चीज की 'अति' न हो। 'अति' रुग्णता है। और तुम सारे धर्मों के पृष्ठों को उठाकर देखो, सारे धर्मों के इतिहास को समझो तो तुम पाओगे, 'अति' सब जगह पूज्य है। जो व्यक्ति साधारण है, सीधा-सादा है उसे तो कोई पूछता ही नहीं। साधारण होने का तो कोई सम्मान ही नहीं है। यहां असाधारण की पूजा है, असाधारण को सम्मान है। और असाधारण होने के लिए अतियों पर जाना जरूरी है।

यह सारी मनुष्यता, जो विक्षिप्त तुम्हें दिखाई देती है और यह जो आतंक छाया हुआ है सारे विश्व पर, यह सदियों की अतियों का परिणाम है।

आदमी नंगा खड़ा हो जाये, तुम पूजा देते हो। रेगिस्तानों में, अरब में, सूफी फकीर भयंकर गरमी में, जहां सूरज आग की तरह बरसता है और जहां रेत आग की तरह जलती है, वहां कम्बल ओढ़कर रहते हैं। उन्हें आदर मिलता है। यह जानकर तुम्हें हैरानी होगी, 'सूफी' शब्द का अर्थ ही कम्बल से निकला है। सूफ का अर्थ होता है ऊन। जो ऊन से बने हुए कम्बल को ओढ़े रहता है, उसको सूफी कहते हैं।

और खूब मजा है। और जब तुम पागलपन की पूजा करोगे, तो तुम इस बात की खबर दे रहे हो, कि तुम खुद भी उस पागलपन को जीना चाहते हो। माना कि आज मजबूर हो, माना कि आज इतनी हिम्मत नहीं, माना कि आज परिस्थितियां अनुकूल नहीं; तो कल सही, अगले जन्म में सही। मगर तुम्हारी पूजा तुम्हारे जीवन की दिशा बताती है और तुम्हारे भीतर की आकांक्षा बताती है।

सीधा-सादा आदमी, साधारण आदमी, जिसके जीवन में कोई अति न हो, वह तो तुम्हें दिखाई भी नहीं पड़ेगा, वह तुम्हारी नजर में ही न आयेगा। और वही स्वस्थ है। वह आनंदित होगा, शांत होगा, निश्चिंत होगा, लेकिन समादृत नहीं।

अन्य शब्दों में मैं कहूं, हमें अपने समादर के मूल्य बदलने होंगे। हमने अहंकारियों को बहुत सम्मान दिया है। और अहंकार के बड़े सूक्ष्म रास्ते हैं। और अहंकार से बड़ी कोई बीमारी नहीं है। और हम बचपन से हर बच्चे को जहर पिलाते हैं--अपने बच्चों को। और हम जो करते हैं, प्रेम के कारण करते हैं। हमारी इच्छाओं में कोई खराबी नहीं है। मैं तुम्हारी सदिच्छा पर संदेह नहीं कर रहा हूं। लेकिन हम जहर पिलाते हैं, अनजाने। हर बाप चाहता है, उसका बेटा कक्षा में प्रथम आये, विश्वविद्यालय में प्रथम आये, देश में प्रतिष्ठित हो, पद्मभूषण बने, भारतरत्न बने, नोबेल-प्राइज़ का विजेता हो।

लेकिन कोई भी नहीं सोचता कि परिवार में, विद्यालय में, पड़ोस में, सब तरफ से सम्मान अहंकारी को दिया जा रहा है, जो आगे है। फिर आगे होने की एक दौड़, एक ज्वर

यूं पकड़ लेता है कि आदमी जिंदगी भर दौड़ता ही रहता है: आगे होना है। और ऐसी गजब की भीड़ है। और तुम कहीं भी होओ, कोई न कोई तुमसे आगे है। मन को चोट पहुंचती है, मन को दुख होता है।

मैं कलकत्ते में एक परिवार में मेहमान होता था। उनके पास कलकत्ते की सबसे सुन्दर इमारत थी, बहुत प्यारा बगीचा था। कभी जब कलकत्ता राजधानी थी, तब वह गवर्नर का निवास था। उन्हें अपने मकान का बड़ा गौरव था। वह मकान के सिवाय दूसरी कोई बात ही न करते थे।

मैं कई बार उनके घर ठहरा था। मैं उनसे कहता कि मैं सब देख चुका हूं। तुम्हारे घर के इंच-इंच से परिचित हूं। अब तो मुझ पर कृपा करो। बार-बार कहां तक यह प्रशंसा सुनूं? लेकिन आखिरी बार जब मैं उनके घर मेहमान हुआ, तो मुझे बड़ी हैरानी हुई। वे एकदम चुप थे। घर की कोई बात ही न करते थे। मैंने कहा, कुछ तो घर की बात छेड़ो। कुछ अजीब लगता है। तुम, और चुप बैठे हो?

उन्होंने कहा, अब कोई घर की बात न होगी। देखते नहीं हो सामने? किसी दूसरे आदमी ने एक और महल खड़ा कर लिया है। और जब तक इस महल से ऊंचा महल खड़ा नहीं कर लिया, तब तक अब मकान की कोई बात नहीं करनी है। अब मकान से कुछ मतलब नहीं है। मैंने कहा, यह वही प्यारा मकान है, ये वही प्यारी चीजें हैं--ऐतिहासिक। और मैंने कहा, उसने मकान खड़ा कर लिया है, उसने तुम्हारे मकान को तो छुआ भी नहीं। तुम्हारा मकान वही का वही है। तुम क्यों परेशान होते हो?

संयोग की बात, जिसने मकान बनाया था वे भी मेरे परिचित थे। मैं आया हूं, तो मुझे मिलने आये और मुझे निमंत्रित किया भोजन के लिए। और मेरे साथ मेरे मेजबान को भी निमंत्रित किया। उनके हट जाने के बाद मेरे मेजबान ने कहा, मैं उस मकान में कदम नहीं रख सकता। आग लगवा दूं उस महल में; चाहे अपना जीवन भी क्यों न खोना पड़े। इसको मिटवा कर रहूंगा।

मैंने कहा, वह आदमी तो भला है। बेचारा मिलने आया। तुम्हें निमंत्रण भी कर गया। उन्होंने कहा, यह भलापन-वलापन कुछ भी नहीं है। ये शरारती बातें हैं। वह किसी भी तरह से मुझे अपने महल के अंदर की चीजें दिखाना चाहता है। क्योंकि मैं बहुत बार उसे दिखा चुका हूं। मगर मैं नजर भी न उठाऊंगा। मैं उसके मकान की तरफ देखता भी नहीं। मैंने अपने कार के दरवाजों पर परदे लगवा दिये हैं। मैंने अपने बगीचे की दीवाल ऊंची उठवा दी है। मैं किसी तरह यह भूल ही जाना चाहता हूं कि वह मकान है भी। तुम्हें

अकेले जाना हो... मुझे माफ करो, मैं तुम्हारे साथ न आ सकूंगा।

क्या पागलपन है! लेकिन हर बच्चे को दूध के साथ जहर घोल-घोल कर पिलाया जा रहा है महत्वाकांक्षा का--एम्बिशन। यूं ही न मर जाना। कुछ होकर दिखाना। इतिहास में नाम रह जाये। दुनिया याद करे, कि कभी तुम भी थे।

और तुम बड़े से बड़े पदों पर पहुंच जाओ, बहुत धन इकट्ठा कर लो, ऊंची अटारियों के निवासी बन जाओ, तब मुसीबत शुरू होती है, कि यह सब पाने के लिए जीवन भर दौड़े? जो नहीं पा सके वे तड़प रहे हैं, जिन्होंने पा लिया वे तड़प रहे हैं। जो नहीं पा सके वे तड़प रहे हैं, क्योंकि जिंदगी एक हार हो गयी। अहंकार बन भी न पाया और छिन्न-भिन्न हो गया। और जिन्होंने पा लिया वे तड़प रहे हैं, कि यह जो पा लिया, फिजूल मेहनत की। जिंदगी इसको पाने में गंवा दी। शांति का एक क्षण नहीं है। प्रेम की एक बूंद नहीं है। संगीत का एक स्वर नहीं है। भीतर सब खालीपन है, अर्थहीनता है।

सारी मनुष्यता पर एक रोग है। और वह रोग है, महत्वाकांक्षा का रोग--लड़े जाओ। यह भी चिंता छोड़ दो कि जिन साधनों से लड़ रहे हो, वह ठीक है या गलत? फुरसत किसे है? समय थोड़ा है और जिंदगी का कोई भरोसा नहीं। तो चाहे साधन सही हों या गलत, मगर तुम्हें सिद्ध करके बताना है कि तुम कुछ हो। और मजा यह है कि दोनों तरफ हार है। हारे तो हारे, जीते तो और बुरी तरह हारे।

तो स्वभावतः हर आदमी रुग्ण मालूम होता है। हर आदमी बेचैन मालूम होता है। हर आदमी के भीतर सिर्फ लपटें हैं, ईर्ष्या है, जलन है; शांति नहीं, आनंद नहीं। कोई काव्य जन्म नहीं लेता, कोई नृत्य नहीं उठता। और मौत द्वार पर आ जाती है। और तुम्हारे पास सिवाय आंसुओं के और एक हारी हुई जिंदगी के, मौत को भेंट करने को कुछ भी नहीं होता।

यह महत्वाकांक्षा की लम्बी यात्रा अपनी अंतिम घड़ी पर पहुंच गयी है। अब यूं नहीं है कि यह कोई धीमी-धीमी जलती हुई आग है, कोई कुनकुनी... अब यह भयंकर लपटों की तरह जल रही है। सारी दुनिया बुरी तरह बेचैन है। और एक ही उपाय है कि: हम मनुष्य को महत्वाकांक्षा से मुक्त कर दें। महत्वाकांक्षा बाहर दौड़ाती है और पहुंचाती कहीं भी नहीं है। ये रास्ते जो बाहर दौड़ते मालूम पड़ते हैं, ये कहीं भी नहीं जाते। चलते जाओ, चलते जाओ--इनका कोई अंत नहीं आता। तुम्हारा अंत आ जाता है। ये रास्ते यूं ही पड़े रहते हैं। ये रास्ते समाप्त नहीं होते, तुम समाप्त हो जाते हो।

महत्वाकांक्षा की जगह आत्म-अभीप्सा--अपने को जानने की आकांक्षा, अपने को

पहचानने की, अपने में डूबने की। बस, एक ही इलाज है। एक ही बीमारी है। नाम अलग-अलग होंगे, रूप अलग-अलग होंगे। इलाज भी एक ही है।

सारी शिक्षा व्यर्थ है, सारे उपदेश व्यर्थ हैं--अगर वे तुम्हें अपने भीतर डूबने की कला नहीं सिखाते। और वहां रस-धार बह रही है। तुम भिखमंगों की तरह बाहर भटक रहे हो, और तुम्हारे भीतर सम्राट होने की संभावना छिपी है। इस दुनिया में जिन थोड़े-से लोगों ने अपने भीतर झांककर देखा है, बस केवल वे ही स्वस्थ हुए हैं, बाकी सब अस्वस्थ और रुग्ण और विक्षिप्त हैं।

मैं तो एक ही बात को केवल धर्म, दर्शन, जीवन-दृष्टि, जो भी भी नाम देना चाहो--एक ही बात को मूल्य देता हूं और वह मूल्य है, स्वयं की पहचान।

और यह स्वयं की पहचान किताबों के द्वारा नहीं है। यह स्वयं की पहचान किसी और के द्वारा नहीं है। यह स्वयं की पहचान स्वयं के द्वारा है। अपने भीतर भी नहीं जा सकते, तो और कहां जाओगे? थोड़ी-सी देर को अपने भीतर भी नहीं डूब सकते हो तो और कहां, किन सागरों की यात्रा को निकले हो?

अगर हम चाहते हैं कि मनुष्यता स्वस्थ हो जाये और यह जो आतंक चारों तरफ बढ़ता ही चला जाता है, विस्फोटक होंता जाता है, हिंसात्मक होता चला जाता है, यह समाप्त हो जाये; ये आग की लपटें फूलों में बदल जायें तो एक ही रास्ता है: उस रास्ते का नाम समाधि है।

सहज बनो, समता में जीयो। और जो तुम्हारे भीतर छुपा है राज, उससे अपरिचित न रहो। उससे परिचित होते ही वह महाक्रांति घटित हो जाती है, जो मिट्टी को सोना बना देती है, जो एक साधारण व्यक्ति को बुद्ध बना देती है, जो तुम्हें जमीन से उठाकर आसमान के तारों की ऊंचाइयों पर ले जाती है।

मैं सारी दुनिया में इस एक ही बात को कहता हुआ घूमा हूं। और चकित और हैरान हुआ हूं कि लोग यह बात सुनने को राजी नहीं हैं। लोग दरवाजे बंद कर लेते हैं। राष्ट्र अपने दरवाजे बंद कर लेते हैं। क्योंकि धर्मों के धंधों का क्या होगा? धर्मग्रंथों का क्या होगा?

क्योंकि मैं तो सिर्फ एक किताब को जानता हूं--जो तुम हो।

कबीर तो कहते थे,
''ढाई आखर प्रेम का
पढ़े सो पंडित होय''

मैं तो कहता हूं, ढाई की भी छोड़ो, एक ही अक्षर, जो तुम्हारे भीतर छिपा है। उस एक अक्षर और शाश्वत को जान लो। और सारी प्रज्ञा, सारा पांडित्य तुम्हारे पैरों में है।

लेकिन तब शास्त्रों के ठेकेदार मेरे दुश्मन हो जाते हैं--चर्चों के, मंदिरों के, हिंदुओं के, मुसलमानों के, ईसाइयों के। पुरोहितों का एक जाल है जो तुम्हारी बीमारी पर जीता है। वह नाराज हो जाता है। शिक्षक, विश्वविद्यालय, शिक्षा के पंडित, वे नाराज हो जाते हैं क्योंकि उनकी सारी शिक्षा ही महत्वाकांक्षा की दौड़ पर खड़ी है। राजनीतिज्ञ नाराज हो जाते हैं क्योंकि अगर महत्वाकांक्षा बीमारी है, तो राजनीतिज्ञ सबसे बड़ा बीमार है। क्योंकि राजनीतिज्ञ होने की आकांक्षा किस बात का सबूत है? इस बात का सबूत है कि कोई प्रेसिडेन्ट होना चाहता है, कोई प्रधानमंत्री होना चाहता है। लोग भीड़ के ऊपर उठकर भीड़ के मालिक होना चाहते हैं।

जो अपने मालिक नहीं हैं, वे सारी दुनिया के मालिक होना चाहते हैं। और बीमारों की इन जमातों की पास बड़ी ताकत है, सारी ताकत है।

इसलिए बहुत आसान था सुकरात को जहर दे दो, कि जीसस को सूली पर लटका दो, कि मुझे देशों में आने से रोको, मुझे बोलने से रोको, जरूरत पड़े तो मेरी हत्या कर दो। लेकिन जब तक जिंदा हूं तब तक मैं यह तुमसे कहता ही रहूंगा, कि जो तुम्हारी बीमारी का शोषण कर रहे हैं और जो तुम्हारी बीमारी पर व्यवसाय कर रहे हैं, उन सारे निहित स्वार्थों को तोड़ना जरूरी है--अगर हम चाहते हैं एक स्वस्थ, शांत, आनंद से भरी हुई दुनिया; अगर हम चाहते हैं इस दुनिया को एक खिले हुए फूलों की बगिया की तरह--सुगंधित, सुवासित, सुंदर।

तो तुम्हें मैं जो कह रहा हूं, मेरी बात सुननी ही पड़ेगी। और अगर तुम समझ जाओ तो मामला आसान है। क्योंकि तुम्हें किसी और के पास नहीं जाना है, अपने ही भीतर जाना है। तुम्हें किसी से कुछ मांगना नहीं है। महत्वकांक्षा की किन्हीं सीढ़ियों पर नहीं चढ़ना है। बल्कि चुपचाप अपने मौन में, अपनी गहराइयों में--जिनके तुम मालिक हो, जो तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है--उसमें चुपचाप उतर जाना है बिना किसी शोरगुल के।

और अगर इस पृथ्वी पर हम हजारों लोगों को शांति का जरा-सा स्वाद भी चखा दें, अमृत की थोड़ी-सी झलक भी दिखा दें, या अपने ही भीतर की मधुशाला से थोड़ी-सी भी पहचान हो जाये, तो मनुष्य स्वस्थ हो सकता है।

आज तक यह हो न सका। क्योंकि आज तक हमने सुकरातों का साथ न दिया, मन्सूरों का साथ न दिया, सरमदों का साथ न दिया। आज तक हम गलत लोगों के हाथ में

खिलौने बने रहे।

जरा-सा जागरण, और स्वर्ग का राज्य तुम्हारा है।

प्रश्न : प्यारे भगवान, मेरा मार्ग क्या है?

मार्ग न मेरा होता है, न तेरा होता है। जो मैंने अभी-अभी कहा, वही मार्ग है।

और मार्ग एक ही है, और सबके लिए एक ही है, सब सदियों में एक है। पहले भी वही था, आज भी वही है, कल भी वही होगा। इस एक मार्ग को कोई नाम मत दो। क्योंकि यह हिंदू नहीं है। भीतर जाने से हिंदू होने का क्या संबंध? यह मुसलमान नहीं है। क्योंकि भीतर जाने से मुसलमान होने का क्या नाता? इसे बेनाम ही रहने दो। नहीं तो दुनिया में नामों के झगड़े खड़े हो गये हैं। और बड़ी छीना-झपट है, बड़ी खींचातानी है। क्योंकि हर एक का दावा है, उसका मार्ग सही है। और मार्ग एक ही है। दो भी होते तो कोई तुलना हो सकती थी, कि कौन सही है, और कौन गलत है। भीतर की तरफ जाना सही है और बाहर की तरफ जाना गलत है।

तो जो मैंने कहा, वही मार्ग है--तुम्हारा भी, मेरा भी, उनका भी--जो इतनी गहरी नींद में सोये हैं, कि उन्होंने अभी पूछा भी नहीं है कि उनका मार्ग क्या है? और शायद सोये-सोये ही कब्र में उतर जायेंगे, और स्मरण भी न आयेगा कि हम आये क्यों थे और जा क्यों रहे हैं।

और हम जीयें किसलिए? और यह जीवन क्या था? यह ऊर्जा क्या थी? यह जो भीतर हृदय में धड़क रहा था, यह जो श्वासों को ले रहा था, यह जो चैतन्य था यह कौन था?

बड़ी अजीब दुनिया है! यहां लोग भूगोल पढ़ते हैं, दूर-दूर के तारों के नाम याद करते हैं--नक्षत्रों के, और अपने को भूल ही जाते हैं!

मेरे भूगोल के शिक्षक थे, मैंने पहले ही दिन उनसे पूछा कि कुछ अपने संबंध में कहिये। वे कहने लगे, आदमी तुम कैसे हो! यह भूगोल की क्लास है, यहां मेरे संबंध में कुछ कहिये, का क्या सवाल है? मैंने कहा, आपका भूगोल? वह बोले, जिंदगी हो गयी मुझे भूगोल पढ़ाते, किसी ने मेरा भूगोल नहीं पूछा।

भूगोल दुनिया का होता है, आदमी का नहीं होता।

मैंने कहा, मैं आपसे शुरू करूंगा। और अगर आपको अपना भूगोल पता नहीं है, तो

पहले उसका पता करिये। टिम्बक्टू कहां है, इसे जानने से क्या होगा? कुश्तुनतुनिया कहां है, इसे पहचान भी लिया तो क्या होगा? और टिम्बक्टू में मरे कि कुश्तुनतुनिया में मरे--बात सब एक है। मगर तुम थे कौन?

वे मुझसे कहने लगे, देखो, भूगोल पढ़ना हो तो भूगोल की बातें करो। उल्टी-सीधी बातें नहीं...। मैंने कहा, मैं सिर्फ भूगोल की ही बातें कर रहा हूं। मैं अपना भूगोल समझना चाहता हूं, इसलिए आपका भूगोल पहले...। उन्होंने मुझसे कहा, यह बात चल नहीं सकती। तुम मेरे साथ प्रिन्सिपल के पास आओ।

वे प्रिन्सिपल से पूछे, कि अब करना क्या है? इस युवक को आपने भूगोल में भरती कर लिया है। अब या तो यह भूगोल पढ़ेगा या मैं भूगोल पढ़ाऊंगा। हम दोनों साथ एक ही कक्षा में नहीं हो सकते।

प्रिन्सिपल ने कहा, मेरी कुछ समझ में नहीं आता। बात क्या है, झगड़ा क्या है? इस शिक्षक ने कहा, तुम्हारी समझ में क्या खाक आयेगा, मेरी भी समझ में वह नहीं आ रहा है। बात भूगोल की होती तो समझ में भी आती। यह तो न मालूम कहां की बात कर रहा है। यह मुझसे पूछता है, तुम्हारा भूगोल समझाओ।

मैंने कहा, कोई फिक्र नहीं। स्कूल में नहीं समझा सकते हो, घर आ जाऊंगा। कहीं एकांत में दूर बैठकर समझाना हो, वहां चला चलूंगा। मगर पहले तुम्हारा भूगोल समझूंगा, फिर आगे बढूंगा।

प्रिन्सिपल ने मुझसे कहा, भैय्या, तुम कोई दूसरा विषय चुन लो। ये हमारे पुराने शिक्षक हैं, और हम इनको नहीं खोना चाहते। रही भूगोल की बात, सो मैं कुछ जानता नहीं, क्योंकि मैंने भूगोल कभी पढ़ा नहीं। और पता नहीं कि तुम किस भूगोल की बात कर रहे हो। तुम किसी और को सताओ, इनको छोड़ो।

मैंने कहा, जैसी मर्जी। मैं तो जिस क्लास में जाऊंगा वहीं झंझट खड़ी होने वाली है क्योंकि क्या फिजूल की बकवास...। कोई फिक्र कर रहा है चंगेज़खान की, तैमूरलंग की, नादिरशाह की, अलेक्जेंडर की और अपनी जरा भी फिक्र नहीं। और नालायकों की इस जमात से क्या लेना-देना है!

भूगोल छोड़कर मैं इतिहास में प्रवेश किया। शिक्षक सिकंदर महान के संबंध में समझा रहे थे। मैंने उनसे कहा, आपको शर्म नहीं आती, यह कहते हुए, सिकंदर महान है? यह ''महान'' शब्द को तो खराब न करो! नहीं तो बुद्ध को क्या कहोगे, सुकरात को क्या कहोगे, पाइथागोरस को क्या कहोगे?

और तुम्हें मालूम है कि जब सिकंदर मरा था, तो मरने के पहले अपने वजीरों से उसने कहा था कि मेरी वसीयत है यह। और खयाल रहे कि मेरी वसीयत में कोई बदलाहट न हो। वसीयत छोटी-सी है, कि जब तुम मेरा ताबूत मरघट की तरफ ले चलो, तो मेरे हाथ ताबूत के बाहर लटके रहने देना। लोगों ने कहा, अजीब वसीयत है। ताबूत के बाहर हाथ नहीं लटकाये जाते। यह परंपरा नहीं है। सिकंदर ने कहा, परंपरा की फिक्र छोड़ो। उसी परंपरा में मैं मरा, व्यर्थ मरा। मगर किसलिए तुम अपने हाथ बाहर लटकाना चाहते हो? उन्होंने जिज्ञासा की। सिकंदर ने कहा, इसलिए ताकि सारी दुनिया देख ले कि मैं खाली हाथ आया था, खाली हाथ जा रहा हूं। और सारी जिंदगी बेकार गयी। मेरे हाथों में कुछ भी नहीं है। मैं एक भिखमंगे की तरह मर रहा हूं।

और तुम इस आदमी को महान सिकंदर कह रहे हो, जो खुद अपने को कह गया है कि मैं एक भिखमंगे की तरह मर रहा हूं, और मेरी जिंदगी बेकार गयी? और तुम इसे महान कहकर इन सारे लोगों को, जो यहां पढ़ने आये हुए हैं, इन सबके दिमाग में जहर भर रहे हो। इन सबके दिमाग में यह सुरसुरी पैदा कर रहे हो कि ये भी महान हो जायें, ये भी सिकंदर हो जायें। न तो बाहर कुछ पाने से कोई महान हो सकता है, न बाहर कुछ जानने से कोई ज्ञानी हो सकता है।

मार्ग एक है, मेरा भी, तुम्हारा भी, सबकाः स्वयं को जानना। सुकरात का वचन हैः नो दाइसेल्फ--अपने को जानो। इसमें सारी बात आ गयी। और इससे ज्यादा कुछ और कहने को बचता नहीं।

प्रश्न : भगवान, क्या इस यात्रा का कोई अंत नहीं है?

न तो कोई प्रारंभ है इस यात्रा का, न कोई अंत है। हम अनंत के हिस्से हैं, हम शाश्वत के अंश हैं। हम सदा से हैं, और सदा रहेंगे। यह बात और है, कि लहरें बदलती हुई दिखाई पड़ती हैं, मगर समुन्दर वही है। रूप बदल जाते हैं। लगता है ऐसे कि एक यात्रा पूरी हुई, दूसरी यात्रा शुरू हुई, लेकिन वस्तुतः जो भी है, शाश्वत है। न कोई प्रारंभ है, न कोई अंत है। और इससे बड़ी आनंद की और क्या बात होगी कि तुम अनंत हो, तुम अमृत हो?

उपनिषद के ऋषि एक ही खोज में संलग्न थेः अंधेरे से कैसे प्रकाश, असत्य से कैसे सत्य और मृत्यु से कैसे अमृत...।

अंधेरे में जीयोगे तो असत्य में जीयोगे, असत्य में जीयोगे तो मृत्यु में जीयोगे। वह तीनों एक ही सरणी, एक ही तर्क के हिस्से हैं। अपने भीतर की ज्योति को पहचान लोगे, तो सत्य को भी पहचान लोगे। साथ ही साथ। तत्क्षण। और सत्य को पहचान लिया तो अमृत को भी जान लोगे। तत्क्षण। पल भर की देर नहीं होगी। वह दूसरी सरणी है। अब यह तुम्हारी मर्जी है।

एक सरणी में तुम अब तक अपने जीवन को न मालूम कितनी यात्राओं में बिताते आये हो--न मालूम कितने रूपों में, न मालूम कितने शरीरों में। बहुत देर वैसे ही हो चुकी है। लेकिन फिर भी, जिन्होंने जाना है उनका वचन है, कि सुबह का भूला अगर सांझ भी घर आ जाये, तो उसे भूला नहीं कहते। अभी भी घर आ जाओ, तो भूले न कहे जाओगे। वैसे तुम्हारी मौज है। अभी और थोड़ा भूलना हो, अभी और थोड़ा भटकना हो, अभी और यात्रा शुरू करनी हो, और यात्राएं मिटानी हों--अभी कुछ और रह गया हो रस कुटने का, पिटने का, तो मेरी मत मानना। किसी की मत मानना। कुटो, पिटो, जीयो, मरो।

इस गर्भ में नौ महीने सड़ो, उस गर्भ में नौ महीने सड़ो। और तुम्हारा क्या बिगड़ता है? मरोगे तो दूसरे चार आदमियों के बोझ बनोगे। अपनी अर्थी खुद तो उठानी नहीं पड़ती कम से कम। तुम्हारे रास्ते पर यह बड़ा फायदा है।

मैंने सुना है, एक यहूदी मरणासन्न है। बूढ़ा है, बहुत अमीर है। उसके चारों बेटे उसके पास ही बैठे हैं। सांझ हो गयी, सूरज भी डूब गया, अंधेरा भी उतरने लगा। अब बेटे विचार कर रहे हैं, कि करना क्या है? सबसे छोटे बेटे ने कहा कि इतना धन है हमारे बाप के पास... और जिंदगी भर एक इच्छा रही, कि एक रोल्स रॉयस गाड़ी खरीद लें, और न खरीद पाया। चलो, किराये की एक रोल्स रॉयस गाड़ी ले आयें और कम से कम मरघट तक तो रोल्स रॉयस में पहुंचा दें। न सही जिंदा, मुर्दा सही। मगर सवारी तो हो जायेगी रोल्स रॉयस पर। दूसरे बेटे ने कहा, तू नासमझ है। अभी बच्चा है। अरे, जब जिंदगी भर रोल्स रॉयस पर नहीं चढ़े तो मरकर क्या चढ़ना! और जब मर ही गये तो क्या फर्क पड़ता है कि रोल्स रॉयस पर चढ़े, कि एम्बेसेडर पर चढ़े? बैलगाड़ी हो तो भी काम चल जायेगा। अब मरे आदमी को कुछ पता चलता है? वह मरता हुआ बाप सब सुन रहा है। दूसरे बेटे ने कहा कि मेरा तो खयाल है, एम्बेसेडर बिलकुल ठीक रहेगी। यह बुड्ढा इसी के लायक है।

तीसरे ने कहा, एम्बेसेडर? नाहक खर्चा करने पर उतारू है! अरे अपना एक दोस्त है, जिसके पास तांगा है। हालांकि तांगा क्या है, एक नमूना है; कि अगर गर्भवती स्त्री को

बिठाकर अस्पताल ले जाओ, तो बीच में ही बच्चा पैदा हो जाता है--ऐसे दचके देता है। मगर मरे आदमी को क्या फर्क पड़ता है? और पहचान का है, सस्ते में तय हो जायेगा।

चौथे ने कहा, मैं तुमं सबकी बकवास में नहीं पड़ना चाहता। आखिर कुछ तो देना ही पड़ेगा। अपने बाप से कुछ तो सीखो। मैं अपने बाप का असली बेटा हूं--यह सबसे बड़ा बेटा था--तुम सबसे ज्यादा अपने बाप को पहचानता हूं। मरे हुए बाप की इज्जत का मुझे खयाल है। म्युनिसिपल का कचरे का ठेला रोज मरघट जाता है। भिखारी इत्यादि मर जाते हैं, उनको ले जाता है। अब बाप मर ही गया तो अब क्या बाप और क्या भिखारी! बस, बाहर कचरे-घर के पास टिकाकर रख दो। अपने आप म्युनिसिपल की गाड़ी इसको ले जायेगी।

तभी मरता हुआ बाप बोला, मेरे जूते कहां हैं? लड़कों ने कहा, अरे, आप अभी क्या जिंदा हैं?

उन्होंने कहा, तुम्हारी सब चर्चा सुन ली। सब नालायक हो, सिवाय खर्चे के कोई काम नहीं। जब देखो तब खर्चा। मेरे जूते लाओ। अभी इतनी जिंदगी है, कि मैं खुद ही पैदल चला चलता हूं। मैं ठेठ वहीं मरूंगा, मरघट पर। ले जाने, लाने का खर्चा, और झंझट...। कोई पहचान ले, तुम यहां बाहर बिठाल दो मुझे, मैं मर जाऊं... दुनिया मुझे जानती है, सारा गांव मुझे पहचानता है, ड्राइवर पहचानता होगा। कोई भी पहचान ले। और क्या सोचेंगे वे लोग? न तुम्हें बदनामी की फिक्र है, न तुम्हें खर्चे की फिक्र है। बड़ी रईसी मार रहे हो--रोल्स रॉयस, एम्बेसेडर, तांगा। कभी बाप-दादे बैठे हैं?

वैसी तुम्हारी मर्जी। जीयो। मरो। फिर-फिर जीयोगे, फिर-फिर मरोगे। मगर किसी न किसी दिन आना ही होगा राह पर। कोई चारा नहीं। कोई और राह नहीं। किसी न किसी दिन सोचना ही पड़ेगा, बहुत हो चुका। अब अंधेरे से रोशनी की तरफ चलें। अब एक शरीर से दूसरे शरीर में नहीं, बल्कि अंधेरे से रोशनी में यात्रा करनी है। अब एक रूप से दूसरा रूप नहीं, बल्कि असत्य से संत्य की तरफ चलना है। और अब एक घर को छोड़कर दूसरे घर में प्रवेश नहीं, अब मृत्यु को छोड़कर अमृत से गांठें बांधनी हैं।

फिर कोई अंत नहीं है। फिर यात्रा अनंत है। फिर यात्रा अनंत की है। फिर तुम भागीदार हो गये, हिस्सेदार हो गये। तुम लीन हो गये उसमें, जो अविनाशी है। और जब तक यह न हो जाये तब तक जानना, कि अभी समझ की किरण नहीं फूटी।

प्रश्न: भगवान, बुद्ध को तो उनके महापरिनिर्वाण के बाद भारत ने विदा किया और विश्व ने अपनाया। आपको दुनिया भर से निष्कासित किया गया, जब कि विश्व शिक्षित हो चुका है। यह सबसे बड़े दुख की बात है। तो क्या भगवान, विश्व ऐसा ही रहेगा? सुकरात से सरमद तक जो हालत की गयी, वह कब बंद होगी?

गौतम बुद्ध को हालांकि हमने जहर नहीं दिया, सूली पर नहीं चढ़ाया, लेकिन इससे यह मत समझना कि हमारे पास कोई आंतरिक रोशनी है, कि हमारा शिवनेत्र खुला है, कि हम देखने में समर्थ हैं।

हमने बुद्ध को सूली तो नहीं दी, लेकिन कुछ दिया जो सूली से भी बदतर है। पहले थोड़ी मैं उसकी बात कर लूं, ताकि हमारा यह भ्रम छूट जाये। अन्यथा इस देश के लोगों को यह भ्रम है कि यूनान ने तो सुकरात को जहर दे दिया, जूडिया ने जीसस को सूली पर लटका दिया, मुसलमानों ने अलहिल्लाज और सरमद की गरदनें काटीं। लेकिन हम... हमारी बात और है। हमने न बुद्ध की गरदन काटी, न महावीर को जहर दिया। हम आध्यात्मिक लोग हैं।

ऊपर-ऊपर ऐसा लगता है। बात कुछ और है। बात है कि हम ज्यादा बेईमान हैं, ज्यादा चालाक हैं। क्योंकि यूनान... बुद्ध अगर यूनान में पैदा होते तो जहर देता, अगर जूडिया में पैदा होते तो सूली पर चढ़ाता। इसमें कोई शक नहीं। लेकिन यूनान ने सुकरात को जहर तो दे दिया। लेकिन जिन्होंने जहर दिया था, उनमें से एक का भी नाम आज याद नहीं। और सुकरात का एक-एक वचन अमिट होकर आदमी के प्राणों पर छा गया है। जहर ने उसका शरीर तो मिटा दिया, लेकिन उसके संदेश को अमर कर दिया।

जीसस को सूली मिली। आदमी आज नहीं कल मरता ही है। मौत ने न मारा, लोगों ने मार डाला। लेकिन उसी मृत्यु के कारण ईसाइयत को जन्म मिला। आज आधी दुनिया ईसाई है। वह जो जीसस की सूली है, वह जीसस के संदेश को अमिट छाप दे गयी।

हम चालाक लोग हैं, क्योंकि हमारी कौम बड़ी पुरानी है। बूढ़े चालाक हो जाते हैं--स्वाभाविक; उस्ताद हो जाते हैं। हमारे लिए साफ थी यह बात, कि किसी को भी मारना खतरे से खाली नहीं है। अगर हम बुद्ध को मारते हैं, तो बुद्ध जो कह रहे हैं, उसको हम पत्थर की लकीर बनाते हैं। हमने कुछ दूसरा रास्ता निकाला। और रास्ता हमारा ऐसा था, कि बुद्ध के मरने के बाद इस देश में बुद्ध का नामलेवा भी न रहा।

बोधिगया में जहां बुद्ध को बुद्धत्व मिला, और जहां उनकी स्मृति में मंदिर खड़ा है, उस मंदिर का पुजारी भी ब्राह्मण है। क्योंकि उस मंदिर में पूजा करने को भी कोई बौद्ध न मिला। बुद्ध की प्रतिभा करोड़ों लोगों के प्राणों पर छा गयी। लेकिन क्या हुआ? क्या जादू, कि

बुद्ध के मरने के बाद बुद्ध ऐसे रफा-दफा हो गये, कि जैसे वे कभी हुए ही न हों?

ब्राह्मणों ने एक पुराण रचा, शिवपुराण। उस पुराण में एक छोटी-सी कथा है। वह कथा हमारी चालाकी, बेईमानी, हमारी होशियारी, हमारी बूढ़ी संस्कृति और इसके अनंत-अनंत अनुभवों का सार है। वह कथा बड़ी अद्भुत है और बहुत सोचने जैसी है। और मैं बड़ा चकित हूं कि कोई भी उस कथा पर सोचता नहीं--न कोई बौद्ध, न कोई हिंदू!

कथा है, कि परमात्मा ने जगत को बनाया, उसी समय नर्क को भी बनाया, कि जो पाप करेंगे वे नर्क जायेंगे। और शैतान को बनाया नर्क का अधिकारी। स्वर्ग भी बनाया कि जो पुण्य करेंगे, वे स्वर्ग जायेंगे। फिर सदियों पर सदियां आयीं और गयीं। स्वर्ग में भीड़-भड़क्का बढ़ता गया, बढ़ता गया। और शैतान अकेला बैठा रहा, बैठा रहा, बैठा रहा। नर्क कोई आया ही नहीं। क्योंकि किसी ने कोई पाप ही न किया। अंततः शैतान ने जाकर ईश्वर से कहा कि यह क्या पागलपन है? मुझे नाहक वहां बिठा रखा है। न कोई पाप करता है, न कोई आता है। खत्म करो यह नर्क।

ईश्वर ने कहा, मत घबड़ाओ। मैं जल्दी ही बुद्ध के रूप में भारत में अवतार लूंगा और लोगों को ऐसी बातें समझाऊंगा, कि वे अपने आप नर्क की तरफ जाने शुरू हो जायेंगे।

देखना चालाकी। एक तरफ बुद्ध को ईश्वर का अवतार स्वीकार किया और दूसरी तरफ--बुद्ध को मानकर मत चलना, नहीं तो नर्क में पड़ोगे। और तब से नर्क में ऐसी भीड़ मची कि शैतान भी घबड़ा गया है। कहां बिठाये इन लोगों को? क्योंकि जो-जो बौद्ध हो गये, वे सब नर्क गये।

इस कहानी में तुम भारतीय पुरोहितों की चालाकी देख सकते हो। बुद्ध को ईश्वर का अवतार मानना--यूं सम्मान भी दे दिया। कोई यह भी न कहेगा कि तुमने बुद्ध का अपमान किया। और यूं, बुद्ध को जो मानेगा वह नर्क में जाकर गिरेगा...। बुद्ध की शिक्षाओं पर पानी फेर दिया।

तो अगर भारत से बुद्ध-धर्म विनष्ट हो गया...सुकरात के नामलेवा तो अब भी यूनान में हैं। और जीसस के पीछे चलने वाले लोगों की कतार तो दुनिया में सबसे बड़ी है, लेकिन भारत में, जो बुद्ध की जन्मभूमि है, वहां सिर्फ बुद्ध का नाम रह गया है। वहां कोई बुद्ध की शिक्षा, बुद्ध की क्रांति--जो कि महाक्रांति थी, जिसके द्वारा कि आदमी के जीवन में रूपांतरण हो सकता था, उसको भारत के पुरोहितों ने मिटा डाला, पोंछ डाला। और इस तरकीब से पोंछ डाला कि यह किसी को पता भी न चले।

हमने भी बुद्ध को सूली दी। हमारे सूली देने का ढंग हमारा था। भारतीय ढंग से सूली

दी। शुद्ध खादी के वस्त्रों में, गांधी टोपी पहनाकर। ढंग से मारा। सोच-समझकर मारा। मगर बुद्ध जो क्रांति लाये थे, उसको हमने घटित होने नहीं दिया।

अब तुम पूछते हो कि मुझे सारी दुनिया में निष्कासित किया गया है और दुनिया अब सभ्य हो गयी है, शिक्षित हो गयी है, सुसंस्कृत हो गयी है, लोकतंत्र है, विचार की स्वतंत्रता है, आदमी की बुद्धि परिष्कृत है... तो दुख होता है यह बात जानकर तुम्हें।

तुम्हें दुख इसीलिए होता है कि तुम भ्रांति में हो। दुनिया शिक्षित हो गयी है, लेकिन उस शिक्षा ने उसकी आदमियत को कोई परिष्कार नहीं दिया है। वह शिक्षा पदार्थ की है, वह शिक्षा रसायनशास्त्र की है, भौतिकशास्त्र की है। उस शिक्षा ने आदमी को विज्ञान दे दिया है, हत्या करने के नये-नये साधन दे दिये हैं। लेकिन उस शिक्षा ने आदमी को अपनी आत्मा को आविष्कृत करने का कोई उपाय नहीं दिया है। वरन अगर कोई उपाय उसके पास थे भी, तो उन सबको धुंधला दिया है। घुप्प अंधेरा है।

अच्छी-अच्छी बातें हैं। लेकिन उन बातों के पीछे कुछ यथार्थ नहीं है। दुनिया में कहीं भी विचार की कोई स्वतंत्रता नहीं है। और न ही मनुष्य रूपांतरित होने को राजी है। और अगर मनुष्यों में से कुछ लोग रूपांतरित भी होना चाहते हैं, तो पुरोहितों का जाल है, राजनीतिज्ञों का जाल है। उनकी दीवाल है बड़ी। वे चाहते हैं कि मेरी आवाज उन लोगों तक न पहुंच पाये, जो बदल सकते हैं। वे चाहते हैं कि वे लोग मुझ तक न पहुंच पायें, जो बदल सकते हैं।

अमरीका ने दो शर्तें सारी दुनिया की सरकारों के सामने रखी हैं... जिनको मुझे हर मुल्क में...या तो उस देश के राजदूतों ने, जिनमें से कुछ मुझसे प्रभावित हैं और जो बहुत दुखी हैं इस बात से, कि मेरे साथ जो व्यवहार किया गया है वह एकदम अनुचित है, मुझे जो सूचनाएं दी हैं, वे इतने स्रोतों से मिली हैं कि गलत नहीं हो सकतीं। क्योंकि सूचनाएं वही की वही हैं। अलग-अलग देशों में मैं गया और अलग-अलग देशों में वही सूचनाएं हैं। मेरे हवाई जहाज के आगे-आगे अमरीकी हवाई जहाज चलता रहा। जिस देश में मैं उतरा, मुझसे पहले अमरीकी एजेन्ट उस देश की सरकार को सूचित करने के लिए मौजूद थे।

शर्तें क्या थीं? एक शर्त, कि मुझे हर हालत में भारत वापस भेजा जाये। मुझे भारत को छोड़कर किसी और देश में, कहीं भी, एक इंच जमीन का टुकड़ा नहीं मिलना चाहिए। और कुछ देशों के राजनीतिज्ञों ने मुझसे कहा, कि आपके आगमन से हमें कम से कम इस बात का अहसास हुआ कि हम भ्रांति में थे, कि हम स्वतंत्र हैं। क्योंकि अमरीका सिर्फ

सूचना नहीं दे रहा है, साथ में धमकी भी दे रहा है। अगर तुम इस खतरनाक व्यक्ति को अपने देश में रहने देते हो, तो हमने जितना ऋण तुम्हें दिया है--अरबों-खरबों का--वह सब वापस कर दो। और आगे के लिए हमने जो ऋण देने के वायदे किये हैं, और समझौते किये हैं, वे सब रद्द किये जाते हैं।

सारे देश इतने गरीब हैं, कि उन्होंने अरबों-खरबों का ऋण पहले लिया है। अमरीका भलीभांति जानता है, उन्हें उसे लौटाने के कोई उपाय नहीं हैं। लौटाने के उपाय ही होते, तो उन्होंने ऋण लिया ही क्यों होता? और आगे ऋण मिलना बंद हो जायेगा, तो उनके देश में भयंकर बेकारी, कारखाने बंद, नई-नई योजनाएं जो उन्होंने आगे के लिए बना रखी हैं, वे सब समाप्त...उनका भविष्य एकदम अंधकार में हो जायेगा।

तो जिस देश में मैं गया, अमरीका ने यह एक शर्त, धमकी के साथ... और साबित कर दिया कि दुनिया में केवल दो देश हैं--एक अमरीका और एक रूस। बाकी कोई देश नहीं हैं। बाकी सब गुलाम हैं। या तो इस तरफ या उस तरफ, मगर सब तरफ गुलाम ही हैं।

और भारतीय सरकार को अमरीका जोर देकर कहता रहा है, कि मुझे भारत से बाहर न जाने दिया जाये। और मेरे पास, भारत से बाहर जो हजारों, लाखों लोगों का समूह मुझसे प्रेम करता है, उसे पहुंचने न दिया जाये। उस पर रुकावटें डाली जायें। और खास कर समाचार पत्रों के प्रतिनिधियों को, टेलीविजन के प्रतिनिधियों को, रेडियो के प्रतिनिधियों को किसी भी हालत में मेरे पास न पहुंचने दिया जाये। और इसके पीछे भी धमकी वही है: चुनाव के लिए तुम स्वतंत्र हो।

यह भी सुकरात को जहर देना या जीसस को सूली देना--उससे भिन्न नहीं है। ज्यादा चालबाजी से भरा हुआ है, ज्यादा कूटनीतिज्ञता से भरा हुआ है। लेकिन अमरीका को, या दुनिया के किसी और देश को यह बात स्मरण रखना चाहिए, कि मुझे मृत्यु से कोई भय नहीं है। और ज्यादा से ज्यादा मुझे मार सकते हो। मैं अपनी बात कहना जारी रखूंगा, और भी बलपूर्वक कहूंगा। और एक बात तो सिद्ध हो गयी है कि जरूर मैं सही हूं, अन्यथा तुम्हें इतना भय नहीं होता। अमरीका की घबड़ाहट, पोप की घबड़ाहट, ईसाइयत की घबड़ाहट...।

आज ही मुझे खबर मिली है, कि पुर्तगाल की सरकार मुझे स्थायी निवास देने को राजी है। लेकिन शर्त है कि तीन साल तक मैं बोलूंगा नहीं; और तीन साल के बाद अगर मैंने बोलना शुरू किया तो मैं ईसाइयत के खिलाफ, अमरीका के खिलाफ, पुर्तगाल की

सरकार के खिलाफ, ईसाइयत के खिलाफ, इनमें से किसी विषय पर नहीं बोल सकूंगा।

मैंने उन्हें खबर भेजी है कि दो गज जमीन के टुकड़े के लिए तुम किसी की आत्मा खरीदना चाहते हो? और तीन साल मैं बोलूंगा नहीं, इसके बाद तुम्हारा क्या भरोसा है कि तुम यह नहीं कहने लगोगे, कि अब बोलो ही मत। और मैं तीन साल तक न बोलूं....ऐसी कौन-सी बात मैंने कही है, जिससे किसी को कोई नुकसान पहुंचा है? और अगर उन लोगों को नुकसान पहुंचा है, जिनसे आदमी को नुकसान पहुंच रहा है, तो उनको नुकसान पहुंचना चाहिए।

मैं किसी की कोई शर्त मंजूर करने को राजी नहीं हूं। मैं भारत सरकार की शर्त से भी राजी नहीं हो सकता। जो मुझे कहना है वह मैं कहूंगा। हालांकि वे उपाय करना शुरू कर दिये हैं। इधर मैं उतरा हूं भारत में, और मेरे पास अदालतों के सम्मन्स् आने शुरू हो गये। कि एक मुकदमा कुलू मनाली में, दूसरा मुकदमा बंगाल के छोर पर, तीसरा मुकदमा केरल में--मुझे भटकाओ इन अदालतों में, ताकि मैं कोई और दूसरा काम न कर सकूं।

ये भले लोग हैं? ये लोग हैं, जिनके भरोसे पर यह देश सोच रहा है अपने अतीत गौरव को पा लेने को, फिर से स्वर्ण-शिखर छू लेने को।

और ये सारे मुकदमे झूठे हैं। लेकिन यह कोई सवाल नहीं है। मुकदमा झूठा हो या सच, मुझे परेशान तो किया ही जा सकता है। मुझे इस कोने से उस कोने तो, इस अदालत से उस अदालत तो भेजा जा सकता है। और हर मुकदमे की जड़ क्या है? मुझ पर बहुत मुकदमे चले हैं इस बीच। हर मुकदमे की जड़ यह है कि मैंने किसी के धर्म, किसी के धार्मिक विश्वास को चोट पहुंचा दी। क्या विश्वास हैं तुम्हारे? इतने लचर, इतने जल्दी पंक्चर हो जाते हैं। तुम्हारे भीतर कुछ आत्मा जैसी चीज भी है या नहीं? शर्म आनी चाहिए कहते हुए किसी आदमी को, कि मेरे धार्मिक विश्वास को चोट पहुंचती है। अगर विश्वास गलत है तो छोड़ दो उसे। और अगर विश्वास सही है तो कैसे चोट पहुंच सकती है? सत्य को कोई चोट नहीं पहुंचती।

मैंने जीवन भर सारी दुनिया में निंदा सही है, हर तरह की निंदा सही है, लेकिन मेरे मन में एक के प्रति भी यह शिकायत नहीं है कि मुझे चोट पहुंची है। उल्टे जिन लोगों ने मेरी निंदा की है, उन लोगों ने यह सबूत दिया है कि मैं जो कह रहा हूं, उससे उनके प्राण तिलमिला उठे हैं। मुझे तो चोट नहीं पहुंच रही है। हजारों लोग मेरे खिलाफ हैं। जो मन में चाहे वह कहते हैं, जो मन में चाहे वह लिखते हैं। न तो मैं उस कचरे को पढ़ता हूं, न उस

कचरे की कोई फिक्र करता हूं।

क्योंकि मैंने जो कहा है वह मेरा अपना सत्य है, मेरा अपना अनुभव है। सारी दुनिया उसके खिलाफ खड़ी हो जाये, तो भी उसे कोई चोट नहीं पहुंच सकती। और जिनको जरा-जरा-सी बात में चोट पहुंचती जाती है, मतलब साफ है--छिछले विचार, उधार विचार, जिनकी गहराई चमड़ी से भी ज्यादा नहीं है। जरा-सी खरोंच, और खून भी आता तो ठीक था, पानी बाहर आता है। क्योंकि खून तो जीवित लोगों में होता है, मुर्दों में नहीं होता।

अहमदाबाद में मुझ पर एक मुकदमा था। आज से कोई बीस साल पहले, कि मेरे विचारों ने हिंदू धर्म को बहुत ज्यादा चोट पहुंचा दी। और जब अदालत में मैंने मजिस्ट्रेट के सामने बयान किया कि जो मैंने कहा है, यह हिंदू धर्म का सार है। और अगर इससे किसी को चोट पहुंचती है, तो उसकी धारणा गलत थी। उसे अपनी धारणा बदल लेनी चाहिए। या कि वह मेरा मुकाबला करे। और अदालत को कोई हजारों लोगों ने घेरा हुआ था। और उस आदमी ने--अदालत ने मुझे तो बरी कर दिया--और उस आदमी ने मजिस्ट्रेट से प्रार्थना की, कि मुझे पुलिस में संरक्षण की आवश्यकता है। मैंने मजिस्ट्रेट से कहा, इससे पूछो, बाहर जितने लोग हैं वे सब हिंदू हैं। पुलिस का आरक्षण मुझे चाहिए, क्योंकि मैंने हिंदू धर्म को चोट पहुंचायी है। यह तो बेचारा हिंदू धर्म की रक्षा कर रहा है। यह क्यों घबड़ा रहा है? इसे पुलिस के आरक्षण की क्या जरूरत है?

और मजिस्ट्रेट भी हैरान हुआ। उसने कहा, यह बात तो ठीक है। अगर हिंदू धर्म को चोट पहुंची है, तो बाहर तो सारे हिंदू ही हैं। खतरा मुझे हो सकता है। मैंने पुलिस आरक्षण नहीं मांगा। तुम पुलिस का आरक्षण मांग रहे हो। तुम्हारा कोई अलग हिंदू धर्म है, बाहर जो हिंदू हैं इनसे? वह बोला कि इन बातों में मत पड़िये। वे बड़े खतरनाक लोग हैं, बाहर जो इकट्ठे हैं। वे मुझे घूसे बता रहे हैं। अब दुबारा ऐसा मुकदमा न करूंगा।

मैंने कहा, फिर तुम्हारे धर्म का क्या होगा? वह जो चोट लगी है उसका क्या होगा? तुम मेरे साथ आओ और मेरे पीछे आओ। मैं उनसे कहूंगा कि यह हिंदू धर्म नहीं हैकि तुम इस बेचारे को मारो। यह तो नालायक है, अब और इसको क्या मारना! यह तो मुर्दा है, अब मुर्दे को और क्या मारना। एक तो मुकदमा हार गया, और तुम इसको घूसे बता रहे हो। और हिंदू होकर घूसे बता रहे हो, यह बात ठीक नहीं है।

उसे मुझे बचाकर उसकी गाड़ी तक पहुंचाना पड़ा। मैंने कहा, किसी तरह इसे ले जाओ, क्योंकि भीड़ का क्या भरोसा? मेरे सामने से ले जाओ।

इधर मैं उतरा हूं हवाई जहाज से, और मुझे सम्मन्स् मिलने शुरू हो गये। अभी मैंने कुछ कहा भी नहीं है और लोगों को चोटें पहुंच गयीं। इसको कहते हैं जादू!

प्रश्न: भगवान, आपने विश्व भर में इतने संन्यासियों को असीम प्रेम किया है, कि उसका कोई ऋण चुका सकता नहीं। फिर भी कितने ऐसे संन्यासी हैं जो आपकी कृपा के बहुत नजदीक थे, लेकिन वे ही अब जुदास की तरह आपसे वर्तन कर रहे हैं। जुदास की यह परंपरा क्या कभी बंद न होगी? और इसका क्या राज है?

जुदास की परंपरा बंद तो होनी चाहिए, मगर शायद बंद कभी भी नहीं होगी। राज बहुत सीधा-सादा है। जीसस के खास शिष्यों में जुदास एक था। और जुदास जीसस के शिष्यों में सबसे ज्यादा शिक्षित था। अकेला शिक्षित था, बाकी तो सब अशिक्षित, गांव के गंवार थे। खुद जीसस अशिक्षित थे, बेपढ़े-लिखे थे। एक बढ़ई के बेटे थे। जुदास मात्र मध्यवर्गीय, सुशिक्षित, संस्कारों में पला हुआ व्यक्ति था। स्वभावतः, वही जहर जिसकी मैंने तुमसे बात कही--महत्वाकांक्षा का जहर, उसके भीतर था। उसके मन में यह था कि जीसस के बाद में जीसस का प्रतिनिधि, उनकी सारी आध्यात्मिक संपदा का अधिकारी होने ही वाला हूं। इसमें कोई शक-शुबहा नहीं था। लेकिन यह तभी हो सकता है, जब जीसस की मृत्यु हो। जब तक जीसस जिंदा हैं, तब तक जुदास लाख परिष्कृत हो, लाख शिक्षित हो, उसकी वाणी में वह जादू नहीं, उसके शब्दों में वह निखार नहीं, उसकी आंखों में वह चमक नहीं, उसकी जिंदगी में वह चमत्कार नहीं, जो जीसस की जिंदगी में था।

और जीसस की उम्र जुदास से कम थी। यही मुश्किल थी। जीसस को जब फांसी की सजा मिली, तब उनकी उम्र केवल तैंतीस वर्ष थी। जुदास के पास एक ही रास्ता था कि किसी तरह जीसस को दुश्मनों के हाथों बेच दे। तो बाकी जो शिष्य थे, वे तो बेपढ़े-लिखे, गंवार थे। उनको अपने पीछे चला लेना, कोई कठिन न होगा। और जीसस के साथ रहते-रहते जीसस की सारी बातें, जैसे कोई तोता रट लेता है, ऐसी ही जुदास को भी रट गयी थीं। कोई ज्यादा बातें भी न थीं, थोड़ी-सी बातें थीं। अगर जीसस मौजूद न हों तो जुदास के लिए संभावना है कि वह भी अपने को प्रोफेट, पैगम्बर, मसीहा, घोषणा करवा दे। यह लोभ... इस लोभ के कारण उसने तीस चांदी के टुकड़ों में जीसस को दुश्मनों के हाथ में बेच दिया। मगर अचेतन आदमी से और ज्यादा आशा नहीं की जा

सकती।

यह वह कर तो गुजरा, लेकिन उसने परिणाम इतना भयंकर न सोचा था, कि छाती पर यह पत्थर बहुत भारी पड़ेगा, कि जिस आदमी ने सिवाय प्रेम के मुझे कभी कुछ न दिया, उसको मैंने सिर्फ तीस चांदी के टुकड़ों में बेच दिया। जीसस की सूली के बाद जुदास का पश्चाताप इतना गहन हुआ, कि उसने चौबीस घंटे के भीतर आत्महत्या कर ली।

ईसाई इस बात का उल्लेख नहीं करते। क्योंकि यह उल्लेख जुदास के निंदा करने में बाधा पड़ेगा। चौबीस घंटे के भीतर जुदास ने अपनी आत्महत्या कर ली एक झाड़ से लटककर--इस पश्चाताप में कि मैंने जो किया है, उसकी सिवाय इसके और कोई सजा नहीं हो सकती, कि मैं अपने को समाप्त कर दूं।

जुदास आदमी बुरा न था। आदमी भला रहा होगा। महत्वकांक्षा के भूत ने एक भूल करवा दी। लेकिन फिर भी होश आ गया, जल्दी होश आ गया। और जो दाग खून के उसके ऊपर पड़े थे, उसने आत्महत्या करके उन दागों को धो डाला। लेकिन ईसाई इसकी बात नहीं करते। क्योंकि इसकी बात करेंगे तो जुदास के भीतर भी एक जागरण की किरण थी, यह स्वीकार करना पड़ेगा। जरा देर से उसे होश आया, मगर होश आया।

वह जो महत्वाकांक्षा का जहर है, वह हर जगह है। और उन लोगों में ज्यादा होगा, जो सद्‌गुरु के बहुत करीब होंगे। क्योंकि उनको एक आशा है कि हम इतने करीब हैं, कि अगर सद्‌गुरु समाप्त हो जाये तो हम उसकी जगह पर बैठ सकते हैं।

ऐसी एक घटना घटी, कि मुझे एक विश्व हिंदू सम्मेलन में आमंत्रण मिला। जिस शंकराचार्य ने उस सम्मेलन को बुलाया हुआ था, वह मुझसे अलग से भी मिलना चाहता था। उसने मेरे बाबत बहुत कुछ सुन रखा होगा भला-बुरा। वह मुझे देखना चाहता था।

जब मैं वहां गया तो उस कक्ष में कोई पचास लोग होंगे। शंकराचार्य तख्त पर, अपने सिंहासन पर बैठे थे। तख्त के पास एक छोटा तख्त, उस पर एक बूढ़ा संन्यासी बैठा हुआ था। और भी संन्यासी थे, और दर्शक इकट्ठे हो गये थे कि मेरे और उनके बीच क्या वार्ता होती है।

लेकिन वार्ता शुरू होने से पहले ही उन्होंने मुझसे कहा, इसके पहले कि हम बातचीत करें, मैं आपका परिचय करा दूं। ये जो मेरी बगल में बैठे हैं, ये कोई साधारण आदमी नहीं हैं, ये उत्तर प्रदेश की हाइकोर्ट के चीफ जस्टिस थे, और रिटायर होने के बाद संन्यस्त हो गये। लेकिन इनका विनय भाव ऐसा है कि मैं इनसे लाख कहता हूं कि मेरे तख्त पर ही बैठ जाओ--'तख्त पर'। वे तख्त पर रखे हुए सिंहासन पर बैठे हैं--मैं इनसे लाख कहता

हूं कि तख्त पर ही बैठ जाओ, मगर इनकी विनम्रता का भाव ऐसा है, ये कहते हैं कि नहीं, मैं तो इस छोटे तख्त पर ही अच्छा हूं। आपकी कृपा है।

मैंने कहा, यह बड़ा अजीब मामला है। आपने शुरूआत ही अजीब ढंग से करवा दी। जबकि दूसरे संन्यासी फर्श पर बैठे हुए हैं, तो इनको छोटे तख्त की क्या जरूरत है? ये भी सबके साथ नीचे बैठ सकते हैं, जैसे सब बैठे हैं। यह छोटा तख्त जरा खतरनाक है। तो शंकराचार्य बोले, क्यों? मैंने कहा, आप मतलब नहीं समझते। ये छोटे तख्त पर बैठे-बैठे यही सोच रहे हैं कि कब आप लुढ़को। और इसीलिए ये आपके तख्त पर बैठते नहीं हैं। इनको बैठना सिंहासन पर है। क्या तख्त पर बैठना! तब तक छोटे तख्त पर प्रतीक्षा करने में कम से कम विनम्रता है, समादर है।

और आप खुद इनकी जो इतनी प्रशंसा कर रहे हैं कि वे चीफ जस्टिस थे, कभी आपने ख्याल न किया होगा कि यह खुद आप अपनी प्रशंसा कर रहे हैं, कि यह जो मेरा शिष्य है, कोई साधारण शिष्य नहीं है, यह हाइकोर्ट का चीफ जस्टिस था। और ऐसा विनम्र है कि छोटे-से तख्त पर बैठा है। और मैं पक्का कहता हूं इस आदमी को देखकर, कि यह रास्ता देख रहा है कि तुम कब लुढ़को। तुम लुढ़के, और यह बैठा। इसीलिए छोटे तख्त पर बैठा है, क्योंकि बिलकुल पास में है, एक ही कदम ऊपर रखना है। और तुम जल्दी अगर न लुढ़के तो यह तुम्हें लुढ़कवा देगा। यह चीफ जस्टिस रह चुका है। ये कानून जानने वाले लोग और कानून तोड़ने वाले लोगों में बहुत ज्यादा फर्क नहीं होता। और कानून जानने वाले लोग बड़ी तरकीब से कानून तोड़ते हैं, कि उनको पकड़ना भी बहुत मुश्किल होता है।

मैंने कहा, इससे छोटा तख्त छीन लो। इसे फर्श पर ही बैठने दो। यह छोटा तख्त बिलकुल हटा ही दो यहां से। शंकराचार्य तो बड़े हैरान हुए। वे कहने लगे, कैसी बातें करते हो? मैंने कहा, कैसी बातें नहीं कर रहा हूं मैं। अगर इस आदमी में थोड़ा भी ईमान है, और इसकी नीयत में थोड़ी भी सफाई है तो मैं कहता हूं, उतर आओ अपने छोटे तख्त से नीचे और बैठो फर्श पर।

मगर वह आदमी न उतरा। मैंने कहा, आप देखते हैं विनम्रता? न यह ऊपर के तख्त पर चढ़ता है, न यह नीचे उतरता है। यह विनम्रता नहीं है। यह सीढ़ी लगाये हुए बैठा है।

यह महत्वाकांक्षा का रोग है, यह हमेशा जुदास पैदा करवाता रहेगा। जब तक कि जमीन महत्वाकांक्षा से खाली नहीं हो जाती, उस दिन कोई जुदास पैदा नहीं होगा। कोई जरूरत भी न होगी। तुम्हें किसी जीसस के उत्तराधिकारी होने की जरूरत नहीं है। तुम खुद

अपने भीतर के परमात्मा को जगा सकते हो। तुम्हारी खुद की संपदा इतनी है कि तुम किसी और की संपदा लेकर क्या करोगे? नाहक का बोझ। ये तो भिखारी हैं जो दूसरों की संपदा की वसीयत का ख्याल रखते हैं।

मैं एक दुनिया चाहता हूं जहां हर आदमी अपने खजाने का मालिक हो, जहां उसे दूसरे के खजाने पर नजर न रखनी पड़े, जहां कोई आदमी किसी और की वसीयत लेने के लिए उत्सुक न हो, उस दिन जुदास पैदा होने बंद होंगे। जब तक महत्वाकांक्षा का यह ज्वर उतर नहीं जाता, तब तक जुदास पैदा होते ही रहेंगे। कुछ किया नहीं जा सकता।

दुनिया के जो बड़े राजनीतिज्ञ हैं, जिनके हाथ में बड़ी ताकत होती है, वे किसी को अपने पास नहीं आने देते, वे एक फासला रखते हैं।

हिटलर के संबध में यह कहा जाता है कि उसका कोई दोस्त न था। पूछे जाने पर, "क्यों?" हिटलर ने कहा, 'दोस्त बनाने का मतलब है, एक संभावित दुश्मन। दोस्त बनाने का मतलब है, उसे इतने करीब आने देना कि कल अगर उसे मौका मिल जाये तो गर्दन घोंट देगा।

ताकत, अधिकार, सत्ता, ऐसी भूख है। तुम हैरान होओगे जानकर कि हिटलर ने शादी नहीं की। बड़ा महात्मा था, बालब्रह्मचारी। यूं कई स्त्रियों से शादी करना चाहता था क्योंकि उतनी बड़ी ताकत... कई स्त्रियों से उसे भी प्रेम था, लेकिन उसने कभी किसी स्त्री को बहुत करीब न आने दिया। वह अपने कमरे में हमेशा अकेला सोया भीतर से ताला बंद करके। उसके कमरे में कभी जिंदगी में कोई भी नहीं सोया।

इतना बड़ा अधिकार, इतनी बड़ी सत्ता, इतना बड़ा भय भी साथ रहेगा। क्योंकि किसी को भी मौका देना कमरे में, रात में कोई छुरा भोंक दे और कल मालिक हो जाये।

और जानकर तुम हैरान होओगे कि मरने के तीन घंटे पहले, जब जर्मनी हार ही चुका और बर्लिन पर भी बम गिरने लगे, और जब बमों के धड़ाके जमीन के नीचे छिपे हुए उसके मकान तक पहुंचने लगे, तब उसने कहा, जल्दी से बुलाओ किसी पादरी को, मैं विवाह करना चाहता हूं। उसके सेनापतियों ने कहा, अब विवाह का क्या करोगे? उसने कहा, देर मत करो, बातचीत मत करो, जल्दी कोई भी पुरोहित पकड़ लाओ।

कोई पुरोहित पकड़कर लाया गया और उसने विवाह करवाया। और विवाह करने के बाद जो दूसरा काम हिटलर ने किया, वह था, दोनों ने जहर खा लिया। पेट्रोल दोनों ने अपने ऊपर डाल लिया और आग लगवा दी। इतनी-सी देर के लिए विवाह। यह स्त्री बहुत पीछे पड़ी थी, उसने वायदा किया था, कि तुझसे विवाह करूंगा। मरते-मरते भी,

मगर तुझसे विवाह करूंगा। घबड़ा मत। आश्वासन पूरा करना था इसलिए विवाह किया। मगर विवाह तब किया, जब सब हाथ से खो ही जा चुका था। अब कुछ बचा भी न था सिवाय मौत के। उसके बड़े से बड़े सेनापति भी उससे मीलों फासले पर थे।

जुदास का डर...। किसी को भी करीब लेना खतरे से खाली नहीं है। जिसको भी करीब लो, वही धोखा दे सकता है।

पश्चिम के बहुत बड़े राजनीतिशास्त्री मैक्यावेली ने... और तुम्हें जानकर हैरानी होगी, कि मैक्यावेली की नातिन मेरी संन्यासिनी है। मैक्यावेली पश्चिमी चाणक्य है। उसने पश्चिम की राजनीति के सारे सूत्र लिखे हैं। उन सूत्रों में एक सूत्र यह भी है, कि हर राजनेता को ध्यान रखना चाहिए, कि वह बात अपने दोस्त से न कहे, जो वह अपने दुश्मन से नहीं कहना चाहता। वह बात दुश्मन के संबंध में भी किसी से न कहे, जो वह अपने दुश्मन के संबंध में कहना चाहता है। क्योंकि जो आज दोस्त है, कल दुश्मन हो सकता है। और जो दुश्मन है, कल दोस्त हो सकता है। तब मुश्किल होगी। इसलिए राजनेता को बहुत सोच-समझ कर बोलना चाहिए। और इस ढंग से बोलना चाहिए कि उसके हर बोलने का दोहरा मतलब हो सके। कि जब जैसी जरूरत पड़े, गिरगिट की तरह वह रंग को बदल ले।

यूरोप के सारे राजकुमार और सारे राजा मैक्यावेली के पास राजनीति सीखने आते थे, लेकिन कोई भी उसको अपना मुख्यमंत्री बनाने को राजी नहीं था। वह बड़ा हैरान था। उसको गुरु बनाने को राजी थे, मुख्यमंत्री बनाने को राजी नहीं थे। उसने पूछा कि बात क्या है? उन्होंने कहा कि आपकी बातों को सुनकर, समझकर इतनी अक्ल तो आ गयी है कि आपको उतने करीब आने देना बहुत खतरनाक है। गुरु की तरह आप ठीक। चरण छुएं और नमस्कार आपको करें, यह ठीक। मगर अगर आप मुख्यमंत्री बनकर, वजीर बनकर पास में बैठ गये, तो ज्यादा देर न लगेगी कि आप तख्त पर होंगे और हम कब्र में होंगे।

और उनका कहना ठीक था। मैक्यावेली को जिंदगी भर कोई नौकरी नहीं मिली। कौन उसे नौकरी देगा? आदमी अद्भुत था। उसकी मस्तिष्क की धार बड़ी तेज थी, लेकिन वह जुदास साबित होता। किसी के भी पास, वह किसी की भी गर्दन काटता।

आशा कर सकते हैं हम, कि कभी दुनिया में वह दिन होगा जब महत्वाकांक्षा का ज्वर चला जायेगा, तो जुदास पैदा नहीं होंगे। लेकिन यह आशा ही है। दुनिया बड़ी है, भीड़ बहुत है, बीमारी पुरानी है, नस-नस तक फैली है। थोड़े-से लोगों की भी हट जाये, तो बहुत।

मैं कोई निराशावादी नहीं हूं, लेकिन अगर एक बड़ा अंश भी दुनिया का बदल जाये, तो भी बड़ी क्रांति हो जायेगी। क्योंकि जो लोग पीछे रह जायेंगे इस क्रांति में, जिनको दिखाई पड़ने लगेगा और लोगों का आनंद, जिनको सुनाई पड़ने लगेगा नया संगीत, ढोलक पर पड़ी हुई नयी थाप, उनमें से भी लोग धीरे-धीरे इस नये जीवन और नये मनुष्य के साथ सम्मिलित हो सकते हैं।

लेकिन तुम अपने से शुरूआत करो। तुम इसकी फिक्र छोड़ो, कि दुनिया बदलेगी कि नहीं बदलेगी। ऐसे बहुत लोग हैं जो दुनिया का हिसाब लगाते रहते हैं, कि दुनिया बदलेगी कि नहीं बदलेगी। और यह भूल ही जाते हैं कि अपने संबंध में क्या ख्याल है। सोचो पहली बात अपने बदलने की। तुम्हारा बदलना दुनिया के बदलने की शुरूआत है।

धन्यवाद।
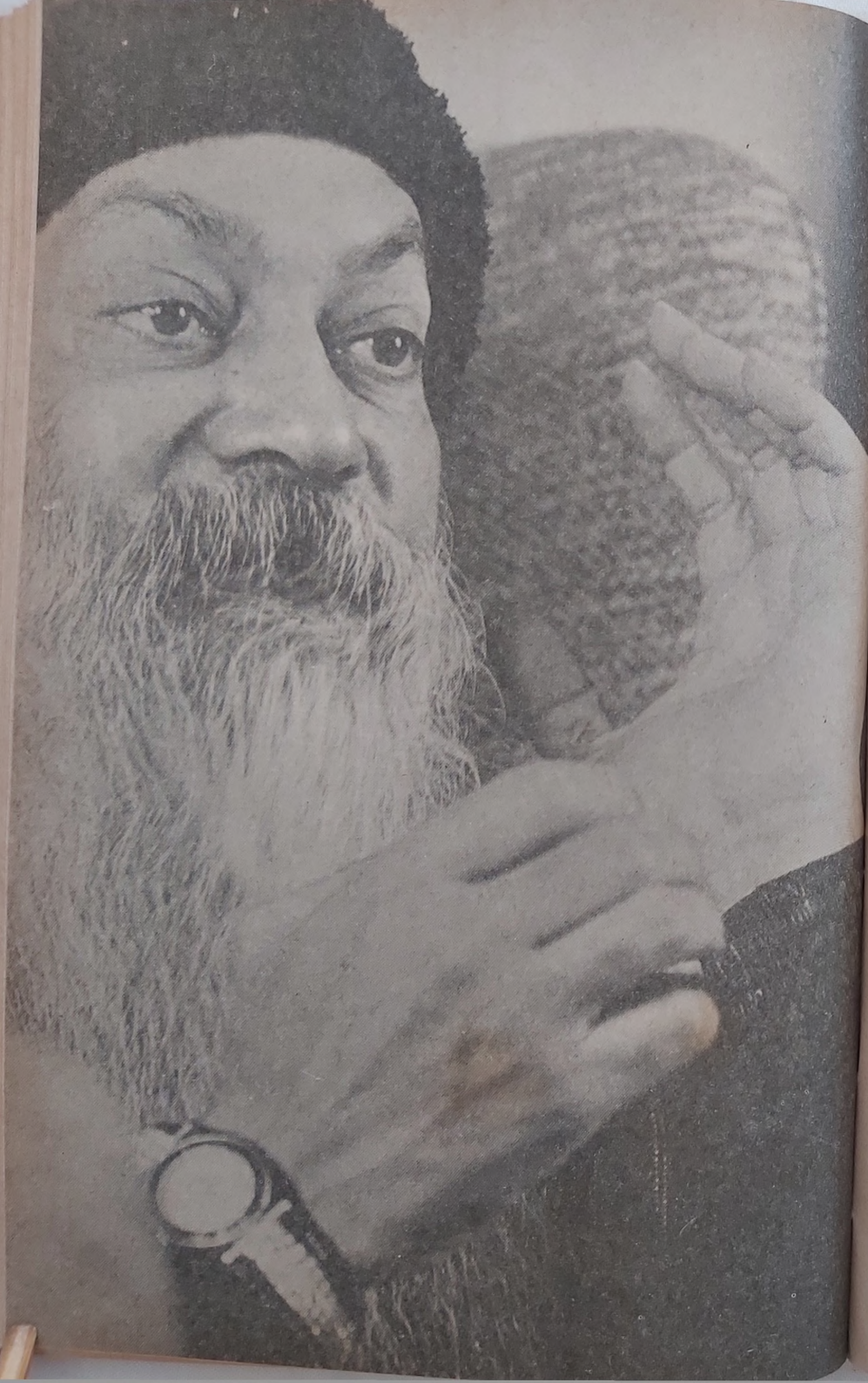
प्रेम का जादू सिर चढ़कर बोले

ग्यारहवां प्रवचन : ९ अगस्त, १९८६, ७.०० संध्या, सुमिला, जुहू, बम्बई

प्रश्न : भगवान, हमें जो आपमें दिखाई पड़ता है, वह दूसरों को दिखाई नहीं पड़ता। ऐसा क्यों है भगवान? क्या जन्मों-जन्मों में ऐसा कुछ अर्जन करना होता है?

एक-एक व्यक्ति की अलग-अलग यात्रा है, अलग-अलग रुझान है, अलग-अलग दृष्टि है। किसी को संगीत प्यारा लगता है, और किसी को केवल शोरगुल मालूम होता है। किसी के पास सौंदर्य को अनुभव करने की क्षमता होती है, और किसी के पास सिवाय पत्थर के, और हृदय में कुछ भी नहीं होता। ऐसे ही कोई प्रेम के झरने से भरा होता है और कोई सूखा।

दो व्यक्ति समान नहीं हैं। हो भी नहीं सकते। लेकिन हमारी अनजाने यह चेष्टा होती है कि हम सबको एक जैसा अनुभव हो, एक जैसी प्रतीति हो। यह असंभव है। और जितनी ऊंचाई होगी अनुभूति की, उतना ही और असंभव हो जायेगा। नीचे तल पर शायद तालमेल बैठ भी जाये, बाजार के तल पर शायद सहमति हो भी जाये, लेकिन आकाश की ऊंचाइयों में हमारी निजता और प्रत्येक व्यक्ति की अनूठी क्षमता भरपूर प्रकट होती है।

तो जो तुम्हें मुझमें दिखाई पड़ता है, वह जरूरी नहीं है कि दूसरे को भी दिखाई पड़े। निश्चित ही, तुमने जन्मों-जन्मों में कुछ अर्जित किया होगा। अपनी आंखों को निखार

दिया होगा, अपनी पहचान को सम्हाला होगा, तो आज तुम्हें कुछ दिखाई पड़ता है। घने अंधेरे में भी रोशनी की किरण तुम पहचान लेते हो।

पर दूसरे को दिखाई न पड़े, इससे न तो परेशान होना, न ही दूसरे पर नाराज होना। क्योंकि यही हमारी सामान्य प्रक्रिया है। अगर दूसरे को भी दिखाई नहीं पड़ता वही, तो हमें शक होने लगता है कि कहीं हम गलती में तो नहीं हैं? और अगर भीड़ दूसरों की ज्यादा हो, तो संदेह और गहरा हो जाता है। क्योंकि हम अकेले पड़ गये हैं। हम अकेले कैसे सही हो सकते हैं? जहां इतने लोगों की भीड़ है, वहां निश्चित ही हम गलत होंगे, भीड़ ही सही होगी।

मैं तुमसे कहना चाहता हूं, भीड़ न कभी सही हुई है और न कभी सही हो सकती है। सत्य का अनुभव वैयक्तिक है। उसका भीड़ से कोई भी नाता नहीं है। कितने लोग थे, जिनको वही दिखाई पड़ता था, जो गौतम बुद्ध को दिखाई पड़ा? सत्य की यात्रा में आदमी अकेला, और अकेला होता चला जाता है। और एक घड़ी आती है कि सारा संसार एक तरफ, और तुम बिलकुल अकेले। इसलिए भीड़ से मत घबड़ाना।

यह शुभ सूचना है कि तुम अकेले होने लगे हो। यह सौभाग्य की घड़ी है, कि तुम्हारी निजता प्रकट होने लगी है। तुम भीड़, और भीड़ के संस्कारों से मुक्त होने लगे हो। तुम्हारी आंखों पर बंधी हुई परंपरा की पट्टियां उतरने लगी हैं। और तुम्हारे प्राणों में तुम्हारे अपने स्वर गूंजने लगे हैं, बाजार और शेअर मार्केट की आवाजें नहीं।

इस जगत में बड़े से बड़ा धन है: निजता को उपलब्ध हो जाना। सो घबड़ाना मत। ठीक राह पर हो। अभी और अकेले हो जाओगे। अभी धीरे-धीरे और भी बहुत कुछ दिखाई पड़ेगा, जो औरों को दिखाई नहीं पड़ेगा। अंधों की इस दुनिया में आंखें बड़े सौभाग्य से मिलती हैं।

और दूसरी बात, नाराज मत होना औरों पर। उनका कोई कसूर नहीं है। उनका कोई दोष नहीं है। उनको ऐसे ही ढाला गया है, जन्मों-जन्मों से। उन्हें इसी तरह संस्कारित किया गया है, कि वे भीड़ के साथ ही जी सकते हैं। भीड़ से ज़रा अलग हुए कि उनके प्राण छटपटाने लगते हैं।

इसलिए तो दुनिया में भीड़ें हैं--हिंदूओं की, मुसलमानों की, ईसाइयों की, जैनों की। और इन भीड़ों से भी मन ही नहीं भरता तो लोग और भीड़ें बनाते हैं: रोटरी क्लब, लायन्स क्लब। राजनैतिक पार्टियां बनाते हैं।

कोई भी अकेला नहीं होना चाहता। अकेले होते डर लगता है। इसलिए राजनीति हो,

तो कोई पार्टी का साथ हो। धर्म हो तो किसी चर्च का, किसी संगठन का हिस्सा बनो। सब करो, मगर खुद अकेले खड़े होने की कभी कोशिश मत करना।

तो दूसरों पर करुणा करना, नाराजगी नहीं। और उनको सहारा देना कि वे भी अकेले हो सकें। मैं तो उसी को सद्गुरु कहता हूं जो तुम्हें अकेला होना सिखा दे, जो तुम्हारे भीतर एकांत के द्वार खोल दे। क्योंकि उन एकांत के द्वारों के भीतर है वह, जो एक है, वह जो सदा से एक है, उसका निवास है। अकेले होकर तुम मंदिर बन जाते हो उस एक के। भीड़ में खोकर तुम सिर्फ एक अंशमात्र रह जाते हो, जैसा कि सैनिकों का सारी दुनिया में हाल होता है। उनके नाम छिन जाते हैं। नामों की जगह उन्हें नंबर मिल जाते हैं। ऊपर से देखने में कुछ फर्क नहीं मालूम पड़ता, मगर भीतर गहरे अर्थ छिपे हैं।

जब तुम सांझ को तख्ती पर पढ़ते हो कि बारह नंबर शहीद हो गया, तब तुम्हें यह ख्याल भी नहीं आता कि बारह नंबर के छोटे-छोटे बच्चे होंगे। नंबरों के कहीं बच्चे होते हैं? या कि बारह नंबर की औरत भी होगी, जो घर राह देख रही है। और जिसकी प्रार्थनाएं सिर्फ इसी प्रतीक्षा से भरी हैं कि कब बारह नंबर घर लौट आये। मगर बारह नंबर की कहीं कोई पत्नियां होती हैं? नंबर शादी वगैरह करते ही नहीं। बारह नंबर के कोई बूढ़े मां-बाप होते हैं?

बारह नंबर तुम्हारे भीतर ये सारी बातें नहीं उठाता। अगर वहां असली आदमी का नाम लिखा होता, तो बात कुछ और होती। तुम्हारे मन में न मालूम कितनी भावनाएं उठतीं, न मालूम कितने विचार उठते। मगर बारह नंबर तुम तख्तियों पर पढ़ लेते हो, और आराम से गुजर जाते हो। कोई लकीर भी दुख की तुम्हारे भीतर नहीं उठती। और बड़ी सुविधा है बारह नंबर में। क्योंकि कल किसी दूसरे को बारह नंबर दे दिया जायेगा।

आदमी एक खो जाये, तो फिर दुबारा वैसा ही आदमी खोजना मुश्किल है। उसकी जगह अब खाली है, और सदा खाली रहेगी। उसे भरा नहीं जा सकता। वह रिक्त स्थान, वह घाव अब सदा ही हरा रहेगा। लेकिन सुविधापूर्ण है। यह किसी की भी छाती पर चिपका दो...यूं नंबर गिरते जाते हैं, नंबर बदलते जाते हैं, लेकिन बारह नंबर जिंदा रहता है। आदमी मरते रहते हैं, सड़ते रहते हैं, लेकिन बारह नंबर नये आदमियों पर जुड़ता चला जाता है।

भीड़ में भी तुम एक नंबर हो जाते हो। व्यक्तित्व तुम्हारा खो जाता है, तुम्हारी निजता छिन जाती है। तुम नहीं तो कोई और तुम्हारी जगह ले लेगा। क्लर्क हो, कोई और क्लर्क हो जायेगा। स्कूल में मास्टर हो, कोई और मास्टर हो जायेगा, लेकिन तुम जैसा तो कोई

भी नहीं है। ठीक तुम्हारी जगह भरने का कोई उपाय नहीं है। तो जिनको दिखाई न पड़ता हो तुम्हारे जैसा, उन पर प्रेम बरसाना, उन पर करुणा करना, उनकी तरफ दोस्ती का हाथ बढ़ाना। उन्हें भीड़ के बाहर लाना है। उन्हें भी अकेलेपन का रस और स्वाद दिलाना है। उन्हें उनकी खोयी निजता वापस मिल जाये। तो अब तक वे एक मुर्दा थे, अब जिंदा हुए। अब उनका पुनर्जन्म हुआ। अब तक खाली थे, अब एक आत्मा बने।

जार्ज गुरजिएफ पश्चिम का एक बहुत अनूठा सिद्ध-पुरुष, एक बड़ी अजीब-सी बात कहा करता था, जो कभी किसी और साधु ने, किसी और सिद्ध ने, किसी और बुद्ध ने नहीं कही। वह कहता था कि सभी के पास आत्माएं नहीं होतीं। कुछ लोग अगर खोज करें, मेहनत करें, श्रम करें तो शायद उनके भीतर आत्मा पैदा हो जाये।

उसकी बात थोड़ी अजीब लगती है, मगर एक गहरा अर्थ लिये है। आत्माएं तो सभी के पास होती हैं। मगर होने से ही क्या होगा? तुम्हें उनकी याद भी तो होनी चाहिए। तुम्हें अपनी निजता का कोई बोध ही नहीं है। तो लाख आत्मा तुम्हारे भीतर पड़ी रहे, इस गहरे अंधेरे और इस नींद में उसका होना, न होने के बराबर है। यही गुरजिएफ कह रहा था, कि सभी के पास आत्मा नहीं होती।

और जो भीड़ में एक अंग बन गये हैं--कोई हिंदू बन गया है, कोई मुसलमान बन गया है, कोई ईसाई बन गया है--इनके पास कोई आत्मा नहीं होती। स्वयं बनना होगा।

तुम्हें अगर कुछ दिखाई पड़ने लगा है तो धन्यवाद दो अस्तित्व को, और अपने सौभाग्य को बांटो। कम से कम उनमें तो बांटो, जिन्हें तुम प्रेम करते हो। कम से कम उन्हें तो खींचो और जगाओ, जो तुम्हारे मित्र हैं।

और इस दुनिया में अगर कोई किसी का कोई भी किस्म का भला कर सकता है, तो वह एक ही भला है: कि उस व्यक्ति को उसकी आत्मा की याद आ जाये; और वह अपने व्यक्तित्व को, अपनी निजता को भीड़ से अलग कर ले।

भीड़ से अलग होते ही आदमी भेड़ नहीं रह जाता, आदमी बनता है। भीड़ भेड़ों की। फिर नाम उसका कुछ भी हो।

अकेले आदमी का कोई नाम नहीं। जो अपनी निजता में डूब गया, उसकी कोई और पहचान नहीं है, सिवाय उसके आनंद के, सिवाय उसके उल्लास के, सिवाय उसकी अंतर्दृष्टि के। उसे फूलों में वे रंग दिखाई पड़ने लगते हैं जो औरों को दिखाई नहीं पड़ते। उसे जगत में उस सौंदर्य का अनुभव होने लगता है, जहां से दूसरे यूं गुजर जाते हैं जैसे कुछ भी नहीं हो रहा है। वही पुराना जगत, वही धूल जमी हुई चीजें, लेकिन जिस व्यक्ति

को अपनी निजता का बोध होता है--एक स्वच्छता, एक ताजगी चारों ओर उसके फैल जाती है। और तब उसे भी वही दिखाई पड़ना शुरू हो जायेगा, जो तुम्हें दिखाई पड़ता है। उसे भी वही अनुभव शुरू हो जायेगा, जो तुम्हें आज हो रहा है।

लेकिन तुम उसे समझाना मत। तुम उसे समझाने चलोगे तो न समझा पाओगे। किस अंधे को कौन समझा पाया है कि रोशनी है? किस बहरे को कौन समझा पाया है कि संगीत भी है? समझाना मत। उसे भी खींचकर उसी दशा में ले आओ--उसी ध्यान में, उसी मौन में, उसी शांति में, जिसमें तुम आये और तुम्हारी आंखें खुलीं। उसे भी उसी खिड़की पर ले जाओ, जहां से तुमने तारों को देखा, और खुला आकाश देखा। उसे भी दिखाई पड़ेगा। जो है वह दिखाई पड़ने वाला है ही; बस आंख खुली होना चाहिए।

समझाने का सवाल नहीं है। और समझा तुम न पाओगे। अंधों के भी बड़े तर्क होते हैं। और कुछ बातें हैं, जिन्हें तर्कों से सिद्ध किया जा सकता नहीं। रोशनी को क्या तर्क दोगे, कि अंधे आदमी को भरोसा आ जाये कि रोशनी है? न तो अंधा उसे छू सकता है, न अंधा उसे चख सकता है, न अंधा उसे बजाकर सुन सकता है, न अंधा उसकी गंध ले सकता है।

अंधे के पास आंख ही नहीं है, तो तुम्हारा तर्क क्या करेगा? कुछ बातें हैं, और वे ही बातें जीवन की सर्वाधिक मूल्यवान बातें हैं--जो तर्कातीत हैं, जो तर्क के पार हैं। और तुम अगर समझाने चले, तो खतरा यह है कि अंधा कहीं तुम्हारे पैर न डगमगा दे। और अंधों की भीड़ है। सारे मत उनके साथ हैं और तुम अकेले हो।

मैंने सुना है, एक आदमी को यह पागलपन छा गया कि वह मर गया है। पागलों को भी एक से एक सूझें उठती हैं। अब क्या गजब का ख्याल है! क्या अनूठी सूझ है! क्या प्रतिभा!

पहले घर के लोगों ने समझा कि वह मजाक कर रहा है। लेकिन थोड़ी ही देर में समझ में आया कि वह मजाक नहीं कर रहा है, तो चिंता बढ़ी। बहुत समझाया कि कैसी बातें करते हो? अच्छे भले हो, भले-चंगे हो। बोलते हो, उठते हो, बैठते हो। उसने कहा, वह सब ठीक है। लेकिन किसने तुमसे कहा कि मुर्दे नहीं चलते? अब मैं मुर्दा हूं और मैं जानता हूं कि मुर्दे चलते हैं, बोलते हैं, शादी-विवाह तक करते हैं। घर के लोगों ने कहा, हद कर दी। कम से कम इतनी दूर तो न जाओ। और दुकान का वक्त हो रहा है। उसने कहा, दुकान भी चलेगी। मगर यह ध्यान रहे कि मैं मर चुका हूं। मुर्दे दुकान भी चलाते हैं।

दिन-दो दिन, चार दिन, सारे मोहल्ले, गांव, आसपास के गांवों में खबर फैल गयी

कि इस आदमी को यह भ्रांति हो गयी है कि यह मर गया है। खाता-पीता है, दुकान भी चलाता है, उठता-बैठता भी है...और तर्क में जो कुशल थे, पंडित थे, वे भी उसे समझाने आये, मगर सब हारकर लौटे। क्योंकि क्या समझाओ उसे? वह सब बातें मानने को राजी है। मगर वह कहता है कि मुर्दे ये सब बातें करते हैं। अब तुम मुर्दे हो नहीं, तो तुम जानोगे क्या खाक! पहले मुर्दा बनो। अब हम जब मुर्दा बने तब हमें पता चला कि क्या गजब हो रहा है दुनिया में।

आखिर मजबूरी में उसको एक मनोवैज्ञानिक के पास ले गये, कि किसी तरह कुछ करो, इसकी यह भ्रांति तोड़ो। मनोवैज्ञानिक ने कहा, घबड़ाओ मत। तोड़ देंगे। उसे बिठाया। उस आदमी से पूछा, कि तुम सोचते हो कि तुम मर गये हो?

उसने कहा, हद हो गयी। इसमें सोचने का सवाल कहां है? क्या तुम सोचते हो कि तुम जिंदा हो? अरे तुम्हें मालूम है कि तुम जिंदा हो, इसी तरह हमें मालूम है कि हम मर गये। सोचने की बात ही कहां आती है? क्या तुमने सोच-सोच कर तय किया है कि तुम जिंदा हो? न हमने सोचा है। अनुभव की बात है।

मनोवैज्ञानिक ने कहा, बात तो तुम बड़ी ऊंची कर रहे हो। सोचा तो हमने भी कभी नहीं। मगर तुम बोल रहे हो, और गजब के तर्क दे रहे हो। कुछ करना होगा। तुमने यह सुना है--जब तुम जिंदा हुआ करते थे, तब की बातें कर रहे हैं--तब तुमने कभी यह सुना है, कि अगर मुर्दे को हाथ में चोट पहुंच जाये, तो खून नहीं निकलता?

उसने कहा, जरूर सुना है। जब जिंदा थे, तब जैसे तुमने सुना, हमने भी सुना था कि मुर्दे के हाथ में चोट लगे, तो खून नहीं निकलता।

मनोवैज्ञानिक ने कहा, तब ठीक है। उसने चाकू निकाला और इस पागल के हाथ में थोड़ा-सा काटा। खून छलककर बहने लगा। उसे मनोवैज्ञानिक ने कहा, अब क्या इरादे हैं?

उसने कहा, इरादे क्या हैं! कहावत गलत है। किसी नालायक ने कभी कहावत की परीक्षा नहीं की। अब सिद्ध हो गया कि मुर्दे भी जब काटे जाते हैं तो खून बहता है। कहावत बदल दो।

पागलों के भी तर्क होते हैं। समझाना मत। कुछ बातें हैं, जो समझाने से बिगड़ जाती हैं, उलझ जाती हैं। फुसलाना। यही मेरा धंधा है। आहिस्ता-आहिस्ता फुसलाकर उस झरोखे पर ले आना, जहां से दूर के चांद-तारे दिखाई पड़ते हैं, जहां से खुले आकाश का अनुभव होता है। फिर तुम्हें कुछ कहना नहीं पड़ता। फिर बिना कुछ कहे वह व्यक्ति तुम्हें

धन्यवाद देगा। जीवन भर तुम्हारा अनुगृहीत रहेगा। तुम्हारे प्रति उसके मन में कृतज्ञता होगी।

क्योंकि वह सोया था और तुमने उसे जगाया है। वह आंखें बंद किये सूरज के सामने खड़ा था और तुमने उसकी आंखें खोलीं। और इस ढंग से खोलीं कि उसे पता भी न चला।

जिसके जीवन में अध्यात्म की कोई किरण उतरने लगे, उसे बहुत सम्हलकर, जिनको वह प्रेम करता है, उनको इस अनुभव में भागीदार बनाना चाहिए। मगर बहुत सम्हलकर, फूंक-फूंक कर पैर रखना कि आवाज भी न हो।

तुम्हें जो दिखाई पड़ रहा है, अगर उससे तुम्हारे जीवन में आनंद आया है--तुम्हारे जीवन में आनंद आया है, तुम्हारे जीवन में वसन्त उतरा है, तो सत्य की और कोई कसौटी नहीं है। और जिसे नहीं दिखाई पड़ रहा है, वह दुख में जी रहा है, नर्क में जी रहा है। सत्य की और कोई पहचान नहीं है।

लेकिन बड़ी कुशलता चाहिए। क्योंकि लोग अपने दुखों से भी बड़ा मोह बांध लेते हैं। उन्हें भी छोड़ने का उनका मन नहीं होता। वह भी उनकी संपदा बन जाती है। और तुम भलीभांति जानते हो, कि लोग जब देखो, तब अपने दुखों की चर्चा करते हैं। और बढ़ा-चढ़ाकर करते हैं।

सभी को मालूम है। क्योंकि तुम भी वही करते हो, और भी वही करते हैं। जरा-सा फोड़ा-फुन्सी हो जाये, तो कैन्सर हो जाता है। क्योंकि क्या फोड़ा-फुन्सी! होगा तो कैन्सर ही होगा। यहां हर चीज़ में दौड़ है और हर चीज़ में होड़ है। और हर चीज़ में आगे होना है, यहां किसी से पीछे नहीं रहना है। दूसरे कम्बख्त कैन्सर लिये घूम रहे हैं, और तुम फोड़ा-फुन्सियों में उलझे हो।

लोग अपने दुख को भी यूं पकड़ते हैं कि जैसे वह संपदा हो। किसी को उसके दुख के बाहर निकालना बड़ी कला की बात है; और बड़े धीरज की और बड़े प्रेम की।

तो जिन्हें दिखाई नहीं पड़ता हो, उनकी बात सुन लेना और कहना कि हो सकता है, तुम सही हो। हो सकता है कि मैं जो देख रहा हूं, वह भ्रम है। इसीलिए तो तुम्हें दिखाई नहीं पड़ रहा है। मगर और जरा करीब आओ, जरा किसी और कोण से देखें। शायद किसी और कोण से, मन की किसी और दशा में, चित्त की किसी और शांति में तुम्हें भी दिखाई पड़ जाये।

तो बहुत आहिस्ता-आहिस्ता फुसलाना। मगर यूं छोड़ मत देना। क्योंकि वैसा करना

बड़ी कठोरता होगी, बड़ी क्रूरता होगी। यह मत सोच लेना कि ठीक है, नहीं दिखाई पड़ता है तो भीड़ में जाओ। नहीं, तुम्हारी अंतर्दृष्टि अगर खुल रही है, तो तुम्हारी करुणा उसे खोलने में और सहयोगी बनेगी।

अगर तुम चार व्यक्तियों में अपने प्रेम और करुणा को बांट सको तो तुम्हारी आंख और भी साफ हो जायेगी, दृष्टि और भी प्रखर हो जायेगी। जितना तुमने देखा है, उससे और भी ज्यादा देखने की क्षमता तुममें पैदा होगी। बांटो। अपने अनुभवों को बांटो। मगर बांटना बहुत प्रेम से, प्रसाद-रूप।

तर्क का लट्ठ लेकर मत किसी के पीछे पड़ जाना। आहिस्ता से, लोरी गाकरः कि दूसरे को यह ख्याल भी न हो कि तुम उसकी मनोदशा को बदले दे रहे हो। उसे ख्याल भी आ गया कि तुम उसकी मनोदशा को बदल रहे हो, कि वह ऐंठ जायेगा।

लोगों के बड़े अजीब अहंकार हैं। दुख भी है तो अपना है। और आनंद भी है तो क्या लेना-देना है? दूसरे का है। अंधापन है, तो भी अपना है। आदमी अपने अहंकार से सब कुछ जोड़ लेता है।

और जिन व्यक्तियों के जीवन में यह सौभाग्य घटित होता हो, कि कहीं से इस अहंकार में दरार पड़ जाती हो और जीवन के सत्य का थोड़ा-सा अनुभव होता हो, उन्हें करुणा से भर जाना चाहिए, प्रेम से भर जाना चाहिए।

प्रेम के अतिरिक्त किसी दूसरे को बदलने का और कोई उपाय नहीं है। प्रेम कीमिया है। प्रेम ही एकमात्र औषधि है, जो समाधि तक ले जा सकती है। व्याधि से लेकर समाधि तक की यात्रा प्रेम के सहारे हो सकती है।

तो जिसको दिखाई न पड़ता हो उसे प्रेम दो, सहारा दो। पांडित्य नहीं, सिद्धान्त नहीं, समझाने की चेष्टा नहीं; बल्कि आहिस्ता-आहिस्ता, अपनी भावदशा में डुबकी लगाने का एक अवसर। एक दिन उसे भी दिखेगा। क्योंकि जो तुम्हें दिखाई पड़ा है, वह कोई भ्रम नहीं है।

प्रश्न : फरिश्तों के हरम में सब हूर को हैरत हो
शेर पेश करूं खुद मैं, बयां तेरी ही सूरत हो।
चुप साज हो, जन्नत के गाने की भी फुरसत हो
बेताब नगमों को तेरी आवाज की जरूरत हो
मौसम-ए-बारिश की लकीर तिरछा हुआ खंजर हो

नहलाने को तू आये, तेरे प्यार का मंजर हो
बंदा कोई गाता हो और तेरी ही रुबाई हो
तू ही खुदा हो और यह फन तेरी खुदाई हो

मेरे प्यारे-प्यारे भगवान, आपसे मैं मुहब्बत करती हूं। मेरी भौतिक देह ही सिर्फ पुरुष की है। बाकी तो मैं हृदय से, मन से आपकी प्रेमिका हूं।

मेरे संन्यासी-मित्र मुझ पर दबाव डालते हैं कि मैं किसी लड़की से शादी कर लूं। भगवान, मैं उन्हें कैसे समझाऊं कि एक स्त्री दूसरी स्त्री से कैसे शादी कर सकती है? मेरी तो शादी आप से ही हो चुकी है, और मुहब्बत भी।

मेरे प्रेम की नाजुक कली को स्वीकार करें। मेरे महबूब, वंदन। मार्गदर्शन करें।

तुम्हारा प्रश्न बहुतेरे महत्वपूर्ण सवालों को जन्म देता है। सबसे महत्वपूर्ण सवाल तो यह है कि प्रेम सचमुच, चाहे पुरुष का हो चाहे स्त्री का, व्यक्ति को स्त्रैणता दे देता है। क्योंकि प्रेम स्त्रैण है।

पुरुष शब्द परुष से बना है। परुष का अर्थ है कठोर। पुरुष के प्राणों में प्रेम के झरने दबे होते हैं, प्रकट नहीं। उसकी सारी ऊर्जा उसके विचारों में, उसकी बुद्धि में संलग्न होती है। उसका हृदय छूंछा ही रह जाता है। यूं वह कभी प्रेम भी करता है, तो वह यूं ही होता है -- बूंद-बूंद। घनघोर वर्षा नहीं हो पाती। वह प्रेम भी करता है, पछताता भी बहुत है। प्रेम करके पछताता ही है, कि कहां की झंझट में पड़ गया।

इन्हीं पुरुषों ने दुनिया में उस अधकचरे संन्यास को जन्म दिया कि भागो, संसार त्यागो। संसार तो केवल शब्द था। उसमें छिपा था, 'भागो स्त्री से'। स्त्री ही संसार है। छोड़ो घर-द्वार। यूं कहने को घर-द्वार, लेकिन मतलब साफ था। कहते भी हम स्त्री को घरवाली है। बड़ा मजा है, घर होता है पुरुष का, मगर स्त्री होती है घरवाली।

संसार हो कि घर हो कि स्त्री हो -- अगर हम इस सबका निचोड़ ठीक से समझें, तो यह पुराना जीवन-विरोधी संन्यास वस्तुतः प्रेम-विरोधी संन्यास था। प्रेम को छोड़ो। तुम्हारे जीवन में प्रेम की एक बूंद न रह जाये, सुखा डालो। तुम केवल बुद्धि रह जाओ -- पांडित्य। तुम्हारा सारा होना तुम्हारी खोपड़ी के भीतर हो। तुम्हारा हृदय सिर्फ खून को शुद्ध करने की मशीन रह जाये। वहां कोई प्रेम, वहां कोई काव्य, वहां कोई रस -- इसकी संभावना भी न बचे।

तुम्हारा प्रश्न इसलिए महत्वपूर्ण है, कि स्पष्ट रूप से तुम्हें एक बात का दर्शन हो गया

है, कि जबसे तुम मेरे प्रेम में डूबे हो, तुम्हें यूं लगने लगा है कि तुम एक स्त्री हो। आधुनिक मनोविज्ञान, विशेष कर कार्ल गुस्ताव जुंग की मनोविज्ञान की खोजें, पूरब में खोजी गयी हजारों वर्ष पुरानी परंपरा को पुनः सिद्ध करती है।

तुमने अर्धनारीश्वर की प्रतिमा देखी होगी, जिसमें शिव आधे पुरुष हैं, आधे स्त्री हैं। कार्ल गुस्ताव जुंग के पहले यही समझा जाता रहा कि यह सिर्फ एक पौराणिक कथा है। आधा पुरुष होना, आधा स्त्री होना -- क्या पागलपन की बात है? लेकिन कार्ल गुस्ताव जुंग के जीवन भर का अनुसंधान इस बात को वैज्ञानिक आधारों पर सिद्ध करता है, कि प्रत्येक व्यक्ति आधा पुरुष है, आधा स्त्री है। स्त्री भी, पुरुष भी। क्योंकि तुम मां-बाप से पैदा हुए हो। न अकेली मां से, न अकेले बाप से। तुम्हारे भीतर तुम्हारे पिता की भी आवाज है और तुम्हारी मां की भी। तुहारे भीतर तुम्हारे पिता की भी छवि है और तुम्हारी मां की भी। तुम दोनों का जोड़ हो। हो सकता है, तुम पुरुष हो तो तुम्हारा स्त्री का रूप नीचे दबा रहेगा। लेकिन जब भी तुम प्रेम करोगे तब वह उभर कर आ जायेगा। क्योंकि पुरुष प्रेम नहीं कर सकता। वह उसकी क्षमता नहीं है।

वह वैज्ञानिक हो सकता है, कवि नहीं। वह गणितज्ञ हो सकता है, संगीतज्ञ नहीं। वह दार्शनिक हो सकता है, लेकिन एक कलाकार नहीं। क्योंकि कलाकार होने के लिए, संगीतज्ञ होने के लिए, मूर्तिकार होने के लिए, नर्तक होने के लिए, चित्रकार होने के लिए जिस कोमलता की जरूरत है, वह पुरुष में नहीं है। पुरुष में तलवार की धार हो सकती है लेकिन फूलों की कोमलता नहीं। और यह बड़ी अड़चन और दुविधा की बात है। क्योंकि तुम दोनों हो, इसलिए बड़ी परेशानी है। तुम्हारे भीतर ही द्वंद्व है।

जापान से मेरे एक मित्र ने मुझे बुद्ध की एक मूर्ति भेजी थी। मैं हैरान हुआ। मूर्ति पुरानी थी। कोई तीन सौ, चार सौ वर्ष पुरानी। लेकिन मूर्ति सिर्फ बुद्ध की मूर्ति ही न थी, उसमें कुछ और भी था। बुद्ध के एक हाथ में तलवार थी और एक हाथ में दीया। और मित्र ने मुझे पत्र लिखा था कि जब आप मूर्ति को देखें तो कृपा कर तेल भरकर, दीये को जलाकर, तभी मूर्ति को देखना। क्योंकि इस मूर्ति की खूबी यही है।

दीये को जलाकर जब मैंने मूर्ति को देखा तो मैं सच में चकित हो गया। जिस हाथ में तलवार थी, दीये की रौनक में वह तलवार चमक रही थी। और उस तरफ बुद्ध का चेहरा जो था, वह यूं था जैसे तलवार की धार हो। और जिस हाथ में दीया था, उससे बुद्ध के चेहरे का दूसरा हिस्सा भी चमक रहा था। लेकिन वह ऐसे लग रहा था, जैसे दीये की लौ, या कोई खिला हुआ गुलाब का फूल। वैसी मृदुता! वैसी मधुरिमा! वैसी मिठास!

उसने अपने पत्र में लिखा था कि जिस चित्रकार ने यह मूर्ति बनायी है, वह कोई साधारण मूर्तिकार या चित्रकार नहीं था। वह एक अनुभवसिद्ध फकीर था।

जुंग ने इस सत्य को बहुत वैज्ञानिक आधारों पर सिद्ध करने की कोशिश की। और आज यह एक स्वीकृत सत्य है कि प्रत्येक व्यक्ति के भीतर दोनों हैं। इन दोनों के बीच द्वंद्व है, संघर्ष है। तलवार और गुलाब के फूल के बीच बनती नहीं, ठनती है।

और इसीलिए आदमी दुखी है और परेशान है। उसे किसी तरह का सामंजस्य खोजना जरूरी है। उसे इन दोनों के बीच कोई सेतु बनाना जरूरी है। ये दोनों विरोधी न रह जायें, एक-दूसरे के परिपूरक हो जायें, तो व्यक्ति के जीवन में शांति का अवतरण होता है।

तुम्हारा मेरे प्रति प्रेम, अगर तुम्हें सिर्फ स्त्री बनाकर छोड़ दे तो बात पूरी न हुई। मेरा प्रेम तुम्हारे पुरुष को भी जगमगा दे, तो ही बात पूरी हुई। मेरा प्रेम तुम्हारे भीतर के पुरुष को मार डाले तो यह हत्या हो गयी। मैं इस हत्या के पक्ष में नहीं हूं। मैं चाहूंगा कि मेरा प्रेम तुम्हारे भीतर जो द्वंद्व है, वह जो तुम्हारे भीतर दो हैं, उन्हें जोड़े।

तुम कहते हो, मेरी तो आपसे शादी हो गयी है। अब मुझे तो न उलझाओ। बामुश्किल बच पाया हूं। और बेवक्त तुम आ गये। तुम्हारी स्त्री की शादी तुम्हारे पुरुष से होनी चाहिए, मुझसे नहीं। मुझे क्षमा करो। क्योंकि मेरी भी शादी हो चुकी है। अब दो-दो शादी के जुर्म में मुझे मत फंसवाओ। वैसे ही मुझ पर मुकदमों की कमी नहीं है। मेरा पुरुष तो मेरे भीतर की स्त्री से शादी कर चुका है। शादी ही नहीं कर चुका है, वह द्वन्द्व, वह विरोध, वह दूरी, जो उन दोनों में होती है, सब समाप्त हो गयी है।

मैं कठोर से कठोर भी हो सकता हूं तलवार की तरह, और मैं कोमल से कोमलतर भी हो सकता हूं एक फूल की तरह। और मैं एक ही साथ तलवार और फूल, दोनों भी हो सकता हूं। और तुमने इसे कई बार अनुभव भी किया होगा।

तो भैया, इतनी कृपा करो।अब तुम्हें भैया कहूं या बहन कहूं? जो भी तुम ठीक समझो। शादी होने दो, मगर तुम्हारे भीतर ही होने दो।

तुम्हारे भीतर भी दोनों मौजूद हैं। और परम संन्यास इस आंतरिक सम्मिलन का नाम ही है, जब तुम्हारे भीतर के पत्थर फूल हो जाते हैं; और तुम्हारे भीतर के फूल पत्थरों की तरह मजबूत हो जाते हैं; जब तुम्हारे भीतर का जहर अमृत बन जाता है और तुम्हारे भीतर का अमृत जहर से कोई दुश्मनी नहीं रखता, जब तुम्हारे भीतर दुई नहीं बचती, जब तुम्हारे भीतर एक का ही साम्राज्य हो जाता है।

संन्यासी मित्र तुमसे कहते हैं, विवाह कर लो। तुम्हारी कठिनाई मैं समझता हूं, कि

अब एक स्त्री दूसरी स्त्री से कैसे विवाह करे? और करना भी मत। क्योंकि पुरुष भी स्त्री से विवाह करके इतनी झंझटों में पड़ता है। स्त्री स्त्री से विवाह करके तो समझो, कि नर्क ही नर्क है। लेकिन विवाह जरूर करो। तुम्हारे भीतर की स्त्री और तुम्हारे भीतर का पुरुष, दोनों संयुक्त हों। और तुम्हारा वर्तुल पूरा हो जाये, अधूरा न रहे।

यही मनुष्य की पूर्णता की धारणा है। तुम अपने को स्त्री मानकर मत बैठ रहना। क्योंकि तुमने कहीं अपने पुरुष को दबाया होगा। वह कहीं आस ही पास दबा होगा। तुमने काली की प्रतिमाएं देखी हैं, जो शिव की छाती पर खड़ी हैं? ये सारी प्रतिमाएं पौराणिक कहानियां नहीं हैं, यह मनोवैज्ञानिक सत्य भी है।

तुम भूल गये कि तुम्हारा पुरुष कहां है। वह तुम्हारे ही पैरों के नीचे दबा हुआ पड़ा है। उस गरीब को छुटकारा दो। यूं बेमौत न मारो। और तुम उसे मारकर अधूरे ही रहोगे। उसका दमन कर, उसे अंधेरे में फेंककर तुम कभी पूरे न हो पाओगे। उसकी तलाश करो, उसे कहां दबाया है। उसकी खोज करो। शांत बैठो और तलाश करो। तुम अपने ही भीतर दोनों को पाओगे। क्योंकि हर एक के भीतर दोनों हैं।

और दोनों मित्रता से भी रह सकते हैं ओर दोनों शत्रुता से भी रह सकते हैं। आमतौर से उन्होंने शत्रुता चुनी है, क्योंकि शत्रुता सस्ती बात है। उसे बुद्धू से बुद्धू आदमी कर सकता है। आमतौर से लोगों ने मित्रता नहीं चुनी। क्योंकि वह महंगा सौदा है। शत्रुता में छीन-झपट है, हिंसा है। मित्रता में देने के सिवाय लेने की कोई आकांक्षा नहीं है। वहां प्रेम है और करुणा है और अहिंसा है।

तुम आज की रात शादी हो ही जाने दो। तुम घर अकेले मत जाना। और अब, जब कोई तुमसे शादी करने को कहे, तो कहना कि हो गयी शादी। और वह जो तुम्हारे भीतर पुरुष छिपा है, उससे शादी करके तुम मेरे और भी निकट आ जाओगे। क्योंकि उससे शादी करके तुम और भी शांत हो जाओगे। एक झील बन जाओगे, जिसमें लहर भी नहीं उठती। एक संगीत बन जाओगे, जिसमें न कोई स्वर है, न कोई आवाज है -- बस सन्नाटा है।

तुम अपने भीतर एक हो जाओ, तो तुम मेरा हृदय जीत लिये; तो तुमने वह काम पूरा कर दिया है, जो संन्यासी को पूरा करना है, हर संन्यासी को करना है।

प्रश्न : प्यारे भगवान, अभिमान और स्वाभिमान में क्या भिन्नता है?

स्वाभिमान अभिमान नहीं। भिन्नता ही नहीं है, विरोध है। अभिमान दूसरे से अपने को श्रेष्ठ समझने का भाव है। अभिमान एक रोग है। किस-किस से अपने को श्रेष्ठ समझोगे? कोई सुन्दर है ज्यादा, कोई स्वस्थ है ज्यादा, कोई प्रतिभाशाली है, कोई मेधावी है।

अभिमानी जीवन भर दुख झेलता है। जगह-जगह चोटें खाता है। उसका जीवन घाव और घाव से भरता चला जाता है। दूसरे से तुलना करने में अभिमान है। और मैं दूसरे से श्रेष्ठ हूं, ऐसी धारणा में अभिमान है।

स्वाभिमान बात ही और है। स्वाभिमान अत्यंत विनम्र है। दूसरे से श्रेष्ठ होने का कोई सवाल नहीं है। सब अपनी-अपनी जगह अनूठे हैं। यह स्वाभिमान की स्वीकृति है कि कोई किसी से न ऊपर है, और कोई किसी से न नीचे है। एक छोटा-सा घास का फूल और आकाश का बड़े से बड़ा तारा, इस अस्तित्व में दोनों का समान मूल्य है। यह छोटा-सा घास का फूल भी न होगा तो अस्तित्व में कुछ कमी हो जायेगी, जो महातारा भी पूरी नहीं कर सकता।

स्वाभिमान इस बात की स्वीकृति है कि यहां प्रत्येक अनूठा है। और कोई दौड़ नहीं है, कोई प्रतिस्पर्धा नहीं है, कोई महत्वाकांक्षा नहीं है। हां, यदि कोई दूसरा तुम पर आक्रामक हो . . . स्वाभिमान में कोई आक्रमण नहीं है, लेकिन अगर कोई दूसरा तुम पर आक्रामक हो तो स्वाभिमान में संघर्ष की क्षमता है -- दूसरे को छोटा दिखाने के लिए नहीं, दूसरे का आक्रमण गलत है, हर आक्रमण गलत है यह सिद्ध करने को।

स्वाभिमान की कोई अकड़ नहीं है। सीधा-सादा है। लेकिन बड़ी से बड़ी शक्ति दुनिया की स्वाभिमानी व्यक्ति को नीचा नहीं दिखा सकती। यह बड़ा अनूठा राज है। स्वाभिमानी व्यक्ति विनम्र है, इतना विनम्र है कि वह खुद ही सबसे पीछे खड़ा है। अब उसको और कहां पीछे पहुंचाओगे?

अब्राहम लिंकन के संबंध में एक उल्लेख है कि एक विशेष वैज्ञानिकों के सम्मेलन में उन्हें निमंत्रित किया गया। वे गये भी। लेकिन लोग उनकी राह देख रहे थे उस द्वार पर, जो मंच के निकट था। क्योंकि देश का राष्ट्रपति आये तो मंच पर, सबसे ऊंचे सिंहासन पर उनके बैठने की जगह थी।

लेकिन वे आये भी उस द्वार से, जहां से भीड़ आ रही थी आम लोगों की -- जिनका न कोई नाम है, न कोई ठौर है, न कोई ठिकाना है। और बैठे रहे वहीं, जहां लोग जूते छोड़ जाते हैं।

देर होने लगी सभा के होने में। संयोजक घोषणाएं करने लगे की बड़ी मुश्किल है, हमने अब्राहम लिंकन को आमंत्रित किया है और वे अभी तक पहुंचे नहीं। और उनकी बिना मौजूदगी के सम्मेलन को हम शुरू करें, यह जरा अपमानजनक है। और देर होती जा रही है।

अब्राहम लिंकन के पास में बैठे हुए आदमी ने उन्हें टिहुनी से धक्का दिया कि महाराज, खड़े होकर साफ-साफ कह क्यों नहीं देते कि तुम मौजूद हो, सम्मेलन शुरू हो? अब्राहम लिंकन ने कहा कि मैं चाहता था चुपचाप ... क्योंकि यह वैज्ञानिकों का सम्मेलन है। इसमें मेरे प्रधान होने का कहां सवाल उठता है?

लेकिन तब तक दूसरे लोगों ने भी देख लिया। संयोजक भी भागे आये और उनसे कहा, यह आप क्या कर रहे हैं? यह हमारे सम्मेलन का सम्मान नहीं, अपमान हो रहा है कि आप वहां बैठे हैं, जहां लोग जूते छोड़ जाते हैं। अब्राहम लिंकन ने कहा, नहीं, मैं वहां बैठा हूं, जहां से और पीछे न हटाया जा सकूं।

यह बात, कि मैं वहां बैठा हूं, जहां से और पीछे न हटाया जा सकूं -- बड़े स्वाभिमानी व्यक्ति की बात है। स्वाभिमानी किसी को नीचे तो दिखाना नहीं चाहता, और न ही किसी को मौका देगा कि कोई उसे नीचे दिखा सके।

अभिमान बहुत सरल बात है। रोग आम है, स्वाभिमान का स्वास्थ्य बहुत मुश्किल है। और कभी जब किसी व्यक्ति में पैदा होता है, तो पहचानना भी मुश्किल होता है। क्योंकि उसका कोई दावा नहीं। लेकिन चमत्कार तो यही है कि स्वाभिमान का कोई दावा नहीं, यही उसका दावा है। स्वाभिमानी व्यक्ति किसी के ऊपर अपने को रखना नहीं चाहता, और किसी को कभी अपने ऊपर गुलामी लादने न देगा।

इसलिए बात थोड़ी जटिल हो जाती है और भूल-चूक हो जाती है।

भारत में इस भूल-चूक का बड़ा बुरा परिणाम हुआ है। दो हजार साल तक हम गुलाम रहे। हमारी गुलामी का कारण क्या था? भारत अकेला देश है सारी दुनिया के इतिहास में, जिसने किसी पर भी कोई हमला नहीं किया। क्योंकि सदियों से इस देश के ऋषियों ने, द्रष्टाओं ने, प्रबुद्ध पुरुषों ने एक बात सिखायी है -- अनाक्रमण, अहिंसा, करुणा, प्रेम। लेकिन यह बात कुछ अधूरी रह गयी। भारत यह तो सीख गया कि आक्रमण नहीं करना है, लेकिन यह न सीख पाया कि आक्रमण होने भी नहीं देना है। वह जो दूसरा हिस्सा छूट गया, उसकी वजह से हम दो हजार साल गुलाम रहे। यह तो भारत सीख गया कि हिंसा नहीं करनी, लेकिन यह बात भूल ही गयी कि हिंसा होने भी नहीं देनी

है। इससे क्या फर्क पड़ता है कि मैं हिंसा करता हूं किसी और की, या किसी और को हिंसा करने देता हूं अपने ऊपर? दोनों हालत में मैं हिंसा करने दे रहा हूं।

अगर बात को ठीक से समझा गया होता, तो यह देश दो हजार साल तक गुलाम न रहता। और बात अभी भी समझी नहीं गयी है। अभी भी हम उन्हीं पुरानी परम्पराओं, पुराने ख्यालों में दबे हुए हैं।

जितनी ऊंची जीवन-अनुभूतियां हैं, वे सब ऐसी हैं जैसी तलवार की धार पर चलना। बहुत सम्हल कर। जरा-सी चूक ... न बायें - न दायें, ठीक मध्य में। वैसा स्वाभिमान है। न तो किसी पर अपने अहंकार की छाप छोड़नी है, और न किसी को यह हक देना है कि वह अपने अहंकार की छाप तुम पर छोड़ सके।

इसलिए स्वाभिमानी होना एक आध्यात्मिक प्रक्रिया है। अभिमानी होना एक सांसारिक बीमारी है। स्वाभिमान में न तो स्व है और न अभिमान है। यही भाषा की मुश्किल है, यहां जो कचरा है उसे प्रकट करने के लिए तो हमारे पास शब्द होते हैं लेकिन जो हीरे हैं, उनको प्रकट करने के लिए हमारे पास शब्द भी नहीं होते। तो हमें शब्द बनाने पड़ते हैं।

अभिमान ठीक-ठीक प्रकट करता है उस दशा को, जो अहंकारी की होती है। लेकिन स्वाभिमान खतरनाक शब्द हो गया है। क्योंकि इसमें अभिमान आधा है। डर है कि तुम कहीं स्वाभिमान की परिभाषा अभिमान से न कर लो। कहीं तुम अभिमान को ही स्वाभिमान न समझने लगो। और इसमें हमने "स्व" भी जोड़ दिया है। कहीं स्व का अर्थ अहंकार न हो जाये।

जोड़ा है स्व जिनने, बहुत सोचकर जोड़ा है। मगर जोड़ने वाले से क्या होता है? जिन्होंने इसमें स्व जोड़ा है, उनका अर्थ है कि स्वाभिमानी केवल वही हो सकता है, जो स्वयं को जानता हो, जिसने स्वयं को पहचाना हो। ऐसे व्यक्ति में अभिमान हो ही नहीं सकता। और ऐसा व्यक्ति किसी दूसरे को भी अपने ऊपर अभिमान थोपने का मौका नहीं दे सकता। न खुद गलती करेगा, न दूसरे को करने देगा।

लेकिन भाषा की कमजोरियां हैं। अभिमान भी गलत शब्द है और स्व के साथ भी खतरा है, कि उसका कहीं अर्थ तुम अहंकार न समझ लो। आमतौर से स्वाभिमान में और अभिमान में कोई फर्क नहीं है। आमतौर से मेरा मतलब है, तुम्हारे मनों में -- दोनों में कोई फर्क नहीं है। इतना ही फर्क है कि तुम अपने अभिमान को स्वाभिमान कहते हो, और दूसरे आदमी के स्वाभिमान को अभिमान कहते हो। बस इतना ही फर्क है। लेकिन अगर

मेरी बात तुम्हारी समझ में आ गयी हो तो बारीक जरूर है, मगर समझ में न आये इतनी असंभव नहीं है।

प्रश्न : भगवान, सन १९७१ में पहली बार आपको देखा और आपका प्रवचन सुना था, तब से आपके प्रेम में हूं। उसके बाद मैंने आपको पढ़ना और सुनना जारी रखा। दुर्भाग्यवश मेरे परिवार और रिश्तेदारों में से एक भी व्यक्ति आपमें रुचि नहीं रखता। वरन् वे सब मतांधता से आपके विरोधी हैं। दिन-प्रतिदिन मैं आपके निकट आता गया हूं। और वे लोग बिना मेरी किसी गलती के, लगातार दूरी बढ़ाते चले गये हैं। फिर दिसम्बर ८३ में मैं संन्यास में दीक्षित हुआ।

अब परिस्थिति ऐसी है कि केवल मेरी पत्नी और दो बेटियों के सिवाय और कोई मुझसे बात तक नहीं करता। सब एकजुट हो गये हैं मुझे अकेला छोड़ने में। पांच वर्षों से ऐसा चल रहा है लेकिन भगवान, मैं चुपचाप इस सबको साक्षीभाव से देख रहा हूं।

भगवान, क्या यह कभी समाप्त होगा? या कि यह मेरे पूरे जीवन जारी रहेगा? कृपया मेरे इस अंधेरे साक्षीभाव पर कुछ प्रकाश डालें।

यह तुम्हारी अकेले की मुसीबत नहीं है, यह मुश्किल आम है।

तो पहले तो हम इसकी मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि समझ लें। इसका किन्हीं व्यक्तियों से कोई संबंध नहीं है -- न तुमसे, न तुम्हारे परिवार से।

तो पहले तो बिलकुल एक सीधे सिद्धान्त की तरह परिस्थिति का मनोवैज्ञानिक अर्थ ख्याल में ले लें। फिर बात जरा आसान हो जायेगी। जो लोग भी तुम्हें प्रेम करते हैं -- परिवार के हों, परिचित हों, वे कोई भी न चाहेंगे कि अचानक तुम्हारे प्रेम की सारी धारा किसी एक अजनबी आदमी की तरफ बह जाये। क्योंकि उन्हें यूं लगता है कि जैसे कोई लुटेरा आ गया। उन्हें यूं लगता है कि जो प्रेम हमें मिलता था, जिसके हम हकदार थे -- क्योंकि कोई बाप है, कोई मां है, कोई भाई है, कोई काका है, कोई मामा है, कोई कोई है।

एक अजनबी आदमी को, जो तुम्हारा कोई भी नहीं है, न जो तुम्हारे धर्म का है, न तुम्हारे जाति का है, अचानक तुम दीवाने हो उठे और सारे प्रेम की गंगा उसी की तरफ बहने लगी। इन सारे लोगों के मन में ईर्ष्या जगती है, विरोध जगता है।

क्योंकि जिसे हम प्रेम समझते हैं वह प्रेम नहीं है। अगर वह प्रेम हो तो ईर्ष्या के पैदा होने का कोई सवाल नहीं है। अगर ये सारे लोग तुम्हें प्रेम करते होते तो तुम्हारे नये प्रेम में इन सबने तुम्हें बधाई दी होती। ये सब भी तुम्हारे नये प्रेम से परिचित होना चाहते। तुम्हें प्रेम करते थे तो तुम किसी और को प्रेम करने लगे हो, इससे इन्हें कोई अड़चन न आती। प्रेम कोई चीज थोड़े ही है कि बांटी जा सके : कि एक को दे दी अब दूसरे को कैसे दें? प्रेम तो भाव है; वस्तु नहीं, गुण है। और जितना बांटो उतना बढ़ता है।

मगर इनमें से किसी को प्रेम का कोई अनुभव नहीं है। ये तो वही दुनिया के साधारण अर्थशास्त्र को जानते हैं, जहां रुपया अगर तुम्हारे पास है, बांटो तो घटता है। जो भी बांटो वही घटता है। ये केवल उसी दुनिया से परिचित हैं, जहां बांटने से चीजें घटती हैं। इनके जीवन में ऐसा एक भी अनुभव नहीं है, जहां बांटने से चीजें बढ़ती हों। ये भी बेचारे क्या करें। ये सब दया के पात्र हैं। ये सब भिखारियों की दुनिया का हिस्सा हैं। इन्हें प्रेम जैसे अलौकिक अनुभव का कोई पता नहीं है। अगर ये तुम्हें सच में प्रेम करते होते तो ये आनंदित होते। इन्होंने उत्सव मनाया होता। क्योंकि तुम्हारा प्रेम इस ज्योतिर्मय रूप में कभी इन्होंने देखा न था। तुम्हारा प्रेम इतना सुगंधिपूर्ण हो सकता है, इन्होंने कभी देखा न था। तुम्हारे प्रेम में ऐसा संगीत जग सकता है, इसका उन्हें अनुभव न था।

और अब यह वर्षा उन पर भी तो होगी। जब बादल बरसता है तो यह थोड़े ही देखता है कि खेत किसका है। यह थोड़े ही पता पूछता है कि यह छत किसकी है। जब बादल बरसता है तो सिर्फ बरसता है।

एक बार बरसना आ जाये . . . तुम्हारे परिवार के ये सारे लोग व्यर्थ ही परेशान हो रहे हैं। क्योंकि मेरे प्रति तुम्हारा प्रेम, इनके प्रति तुम्हारे प्रेम में कोई कमी नहीं लाने वाला है। बल्कि यह मौका था कि इनके प्रति भी तुम्हारा प्रेम अनंत गुना होकर बरसता। मगर ये दूर हट गये।

फिर भी तुम सौभाग्यशाली हो, कि कम से कम तुम्हारी पत्नी और तुम्हारी दो बच्चियां तुम्हारे साथ हैं। क्योंकि मेरे पास न मालूम कितने संन्यासियों के पत्र आते हैं, कि हम आपके प्रेम में क्या पड़ गये हैं, पत्नी हमारी जान लिये लेती है। पत्नियों के पत्र आते हैं, हमारे पति हैं कि बंदूक में एकदम गोली ही भरे रहते हैं। यह घर अखाड़ा हो गया है। पति प्रेम में पड़ते हैं, पत्नी घबड़ाती हैं, कि गये हाथ से।

और आमतौर से पत्नियां जीत जाती हैं। क्योंकि पति बेचारा कमजोर जीव! ऐसे बाहर जब निकलता है घर के, तो बड़ा शेर की तरह निकलता है। और जब घर आता है तो यूं, कि बिलकुल चूहे की तरह। घर में आकर खटर-पटर भी नहीं करता, चुपचाप अखबार पढ़ता है -- जिस अखबार को वह सुबह से कई बार पढ़ चुका है। अखबार पढ़ता है कि

कहीं पत्नी दिन भर की भरी बैठी है, टूट न पड़े। और दिन भर का थका-मांदा आदमी, दफ्तर की मुश्किलें, व्यापार की झंझटें, हजार तरह के चक्कर। सोचता है, घर जाकर किसी तरह थोड़ी देर शांति मिल जाये।

तो उधर पत्नी तैयार है। वह दिन भर से तलवार पर धार रख रही है। उसे दूसरा कोई काम नहीं है। बच्चे गये स्कूल, पति गये दफ्तर, पत्नी धार रख रही है। बच्चों के लौटने पर पिटाई करेगी और पति के लौटने पर खूब धुलाई करेगी। थका-मांदा आदमी। एक कप चाय मिल जाये, इसकी भी आशा नहीं। भोजन वगैरह तो दूर। नौकर-नौकरानियों से पता चलता है कि घर में आज चूल्हा नहीं जला। पत्नी से कुछ पूछे, यह मुश्किल। क्योंकि उसे छेड़ना ही युद्ध का आवाहन समझो।

सो बेचारा सोचता है, छोड़ो ध्यान वगैरह। छोड़ो संन्यास। पहले ही शांति थी। हम और शांति की तलाश में गये? जितनी थी, उतनी ही बहुत है।

पत्नियां संन्यास लेती हैं तो मैंने पाया है कि वे मजबूत साबित होती हैं। पतियों के हाथ-पैर तो उखाड़ देती हैं। उनको तो रास्ते पर लगा देती हैं। लेकिन पति नहीं लगा पाते उनको। दुनिया के हजार काम हैं, वे पहले निपटाएं कि अब इन देवी से झगड़ा करें। और इनसे झगड़ा करने का मतलब, जिन्दगी हो गयी हराम। आराम की फिर कोई जगह न रही।

पत्नियां संन्यास ले लेती हैं तो टिकती हैं; पतियों के पैर उखाड़ देती हैं। थोड़े दिन गड़बड़ करते हैं। अनुभव मेरा यह है कि औसतन पत्नी मजबूत साबित होती है। क्योंकि जोर-जोर से चिल्लाती है। पति कहता है, बाई, धीरे बोल। मोहल्ले वाले न सुनें। बातचीत, संवाद तो असंभव है। तुम कुछ कहो, पत्नी कुछ कहती है। अल्लबल्ल बकती है। और मोहल्ले वालों का डर, इज्जत का डर। किसी को कुछ पता न चल जाये। बच्चे क्या कहेंगे। क्योंकि वे भी आंख खोल-खोलकर देख रहे हैं कि क्या हो रहा है। कि पिताजी की धुलाई हो रही है। तो हो जाने दो।

तो मेरे अनुभव में यह आया है कि पति तो भाग खड़े होते हैं। दो-चार दिन में ही हाथ-पैर उनके ढीले हो जाते हैं। मगर झगड़ा क्या है? क्योंकि अगर कोई ध्यान करने लगे या संन्यस्त हो जाये, या घड़ी भर आंख बंद करके बैठने लगे, तो परेशानी क्या है? पति को परेशानी क्या है? ईर्ष्या। प्रेम का तो कोई अनुभव नहीं है। पत्नी को इस बात की परेशानी है कि मैं तुम्हारे सामने बैठी हूं और तुम अपने गुरु का ध्यान कर रहे हो? निकालो माला। उतारो वस्त्र। यह इस घर में नहीं चलेगा। हर घर में झगड़ा होता है।

और मैंने सुना है कि एक सरदारजी के घर में हमेशा हंसी की आवाज आती थी। लोग बड़े हैरान थे, कि और घरों में से तो लड़ाई-झगड़े की आवाज आती है। औरत चिल्ला रही है, पति चिल्ला रहा है, मगर सरदारजी के घर से कभी कोई झगड़ा नहीं, झांसा नहीं। खिलखिलाहट की आवाज आती है।

आखिर सारे पड़ोसियों ने तय किया कि पूछ ही लेना अच्छा है। यह बात बड़े रहस्य की है। ऐसा कभी न देखा, न सुना। ऐसा कभी हुआ नहीं इतिहास में। जो इनके घर में हो रहा है।

सरदारजी को दफ्तर से आते हुए पकड़ लिया कि पहले राज बताना पड़ेगा। सरदारजी ने कहा, कैसा राज! किस बात का राज?

पूछा, कि इस बात का राज, कि हर घर में झगड़ा होता है। बाकी मोहल्ले के लोग मजा लेते हैं। तुम्हारा मजा लेने का मौका ही नहीं मिलता। जब देखो तब हंसी की आवाज आती है। इससे दिल पर हमारे जो चोट पहुंचती है, वह हम ही जानते हैं। आज बताना ही होगा।

सरदारजी ने कहा, अब क्यों बेइज्जत करते हो गरीब आदमी को? सच्चाई यह है कि पत्नी मेरी चीजें फेंक-फेंककर मुझे मारती है। लोग बोले, चीजें फेंक-फेंककर मारती है? तो फिर हंसते क्यों हो? फिर हंसी की आवाज क्यों आती है? तो सरदारजी ने कहा कि हंसी की आवाज ... जब उसका निशाना ठीक नहीं बैठता तो मैं खिलखिलाकर हंसता हूं। और जब उसका निशाना ठीक बैठ जाता है, तब वह खिलखिलाकर हंसती है। मगर भैया, किसी और से मत कहना। बात मोहल्ले की है, मोहल्ले में ही रहने देना।

और मैंने सुना है कि इसी सरदार ने पचास साल की उम्र में अदालत में जाकर दरख्वास्त दी, कि मैं डाइवोर्स चाहता हूं, तलाक चाहता हूं। मजिस्ट्रेट ने कहा कि कितने दिन हुए शादी हुए?

''हो गये होंगे कोई तीस एक साल''।

''तलाक लेने का कारण?''।

तो उन्होंने कहा कि, ''कारण यह है कि मेरी पत्नी हर चीज फेंक-फेंककर मुझे मारती है। चीजें टूटती हैं सो अलग। और अब यह नहीं सहा जाता। बहुत हो गया।''

जज ने कहा, ''हद हो गयी। तीस साल से सह रहे हो, अब होश आया? पहले क्यों न आये?'' सरदार ने कहा, ''अब यह मत पूछो। पहले वह कभी-कभी निशाना चूक भी जाती थी, अब अभ्यास ऐसा हो गया है, कि मुझे खिलखिलाने का मौका ही नहीं मिलता।

जब देखो तब वही खिलखिलाती है। यह नहीं देखा जाता। चीजें टूटें, फूटें, मगर कम से कम खिलखिलाने का मौका आरी-बारी मिलता रहे, गाहे-बगाहे मिलता रहे। और अब इसकी संभावना नहीं है, उसका अभ्यास बड़ा पक्का हो गया है। कहीं भी खड़े रहो, कैसे भी खड़े रहो ... और ऐसी चोट देती है! और फिर खिलखिलाकर हंसती है। पहले हम भी हंसते थे, तब तक बात ठीक थी।

जिसको हम शादी कहते हैं, वह लड़ाई-झगड़ा ज्यादा मालूम होता है। उसमें प्रेम सिर्फ शब्द है। और इसीलिए ईर्ष्या जगती है। अगर पति प्रेम करने लगा मुझे, तो ईर्ष्या जगती है। अगर पत्नी प्रेम करने लगी, तब तो पति की छाती पर सांप लोट जाता है। यह बरदाश्त के बाहर है कि उसके रहते, पतिदेव के रहते ...।

एक स्त्री कुछ ही दिन पहले मुझसे कह रही थी कि मेरे पति कहते हैं, कि पति परमेश्वर है। और मैं उनकी धुनायी भी कर देती हूं। और फिर भी उनको अकल नहीं आती। फिर भी वे कहे चले जाते हैं कि पति परमेश्वर है। शास्त्रों में लिखा है। और मेरे जीते जी तू किसी और के पैर छुएगी? फांसी लगाकर मर जाऊंगा।

तो मैंने कहा, लेकिन तू तो संन्यासी है कोई तीन साल से। अभी तक मरे नहीं? वह बोली, हिम्मत वह भी नहीं है। मरने को निकलते हैं और थोड़ी देर में लौट आते हैं, कि बाहर वर्षा हो रही है। कभी कहते हैं, भूख लगी है, पहले खाना खालूं। कभी कहते हैं, कपड़े कहां हैं धुले-धुलाये? रेलवे की पटरी पर जाकर लेटूंगा, इन कपड़ों को देखकर लोग क्या कहेंगे? सो मरने का मौका नहीं आ पाता। तीन साल हो गये। बातें करते हैं, मरने-वरने वाले नहीं हैं।

और उनका कहना यह है कि पति परमेश्वर है, सो उसकी मौजूदगी में किसी और के पैर छूना, यह बरदाश्त के बाहर है। क्या पागलपन है! आदमी भी नहीं हो अभी, और परमेश्वर होने का ख्याल -- किताब में लिखा है, वह तुमने पढ़ लिया है। और वह पत्नी कह रही है, कि मैं इनकी धुलाई भी कर देती हूं, फिर भी ये कहते हैं कि मैं परमेश्वर हूं।

और एक बार तो मैंने इनको इस तरह से ठिकाने लगाया है कि पैर छुआकर छोड़ा। मगर फिर भी कहते हैं, शास्त्रीय वचन तो शास्त्रीय वचन हैं। अब यह तो घर की बात है, कौन देखता है? छू लिये, कौन झंझट को बढ़ाये! आधी रात कौन मोहल्ले को जगाये! मगर शास्त्र का वचन गलत नहीं जाता : पति परमेश्वर है।

तुम्हारी पत्नी कम से कम तुम्हारे साथ है। तुम सौभाग्यशाली हो। तुम्हारी बच्चियां तुम्हारे साथ हैं, तुम सौभाग्यशाली हो। छोटे-छोटे बच्चे हैं...।

एक स्त्री ने अभी चार दिन पहले ही मुझसे कहा कि मैं तो आना चाहती हूं, संन्यास भी लेना चाहती हूं, लेकिन मेरा छोटा बच्चा विरोध में है। हद हो गयी। इस छोटे बच्चे को क्या विरोध होना है? मगर बच्चों की भी ईर्ष्याएं हैं। उनकी मां किसी और को प्रेम करे, इतना प्रेम करे कि दिन रात उनकी याद करे, तो उनके भीतर भी आग जलती है।

मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि तो यह है कि इस जगत में हमें प्रेम करना सिखाया ही नहीं जाता। और सब सिखाया जाता है : गणित, भूगोल, इतिहास; सब कचरा खोपड़ी में भरा जाता है। मगर प्रेम? उसकी कोई बात नहीं है, उसकी कोई चर्चा नहीं है, उसका कोई शिक्षण नहीं है। और प्रेम ही जीवन है।

तो चूंकि प्रेम नहीं है हमारे जीवन में, जिस थोथी चीज को हम प्रेम कहते हैं, वह सिर्फ ईर्ष्या के ऊपर छाया हुआ ढंकना है। इसलिए जरा-जरा से मौके पर ईर्ष्या फूट पड़ती है, घृणा बाहर आ जाती है। प्रेम की दुश्मनी बनने में देर नहीं लगती।

तुम्हारे परिवार के लोग सामान्य जन हैं, जैसे और सारे लोग हैं। कुछ बुरे नहीं, कुछ दुष्ट नहीं, कोई राक्षस नहीं। सिर्फ उन्हें इस बात की भ्रांति है कि वे जानते हैं कि प्रेम क्या है। और वे प्रेम के प्यासे हैं। तुमने मुझे प्रेम दिया है, ऐसा प्रेम तुम उनको देते, यही बात उनके मन में खटक रही है।

तुमसे बन सके और तुम उन्हें प्रेम दे सको ... भला ही वे तुम्हें गालियां ही देते रहें, भला वे तुम्हें पत्थरों से ही क्यों न मारते रहें, मगर तुम उन्हें प्रेम देते रहना। वह सब प्रेम की आकांक्षा है, जिसने उन्हें तुमसे दूर कर रखा है।

मैं तो केवल बहाना हूं। मेरे बहाने उनकी प्यास जाहिर हो गयी है। तो चिंता न लो। तुम तो कम से कम प्रेम करो। उन्हें दूर-दूर जाने दो, तुम तो उनके पीछे-पीछे जाओ। वे तुम्हारे पीछे न आयें, कोई फिक्र नहीं है। तुमसे तो जो कुछ भला बन सके उनका, करो। तुम्हारा संन्यास निखरेगा। तुम्हारे जीवन में नये दीये जलेंगे। और शायद तुम उनको भी रूपांतरित करने में सफल हो जाओगे।

और यह बात महत्वपूर्ण नहीं है कि तुम सफल होओ या नहीं, महत्वपूर्ण यह है कि तुम कोशिश करो। तुम प्रेम दो -- उनको भी, जो तुम्हें घृणा दे रहे हैं। और मैं नहीं मानता कि अंतिम विजय घृणा की हो सकती है, या असत्य की हो सकती है, या अंधकार की हो सकती है। अंतिम विजय तो प्रेम की ही है, सत्य की ही है, प्रकाश की ही है।

और तुम ठीक रास्ते पर हो, प्रकाश के रास्ते पर हो। निर्भय होकर तुमसे जितना बन सके, उस तरह करो। आज नहीं कल तुम उनके हृदय को छू लोगे। आदमी आखिर

आदमी ही है। आज नहीं कल उनकी आंखों में तुम्हारे लिए प्रेम के आंसू होंगे। और वह दिन तुम्हारे लिए बड़े सद्भाग्य का दिन होगा।

लेकिन तुम अभी जो कर रहे हो, मैं उससे राजी नहीं हूं। तुम केवल साक्षी बने हो। तुम कह रहे हो कि मैं सिर्फ देख रहा हूं, जो हो रहा है। इससे मामला हल न होगा। तुम्हारा साक्षी होना उन्हें लगेगा कि तुम उपेक्षा कर रहे हो। कि तुम्हें कोई मतलब नहीं है, भाड़ में जाओ। दूर होना है तो हो जाओ, क्या बिगाड़ लोगे? कि तुम पास हो कि दूर, कोई अंतर नहीं पड़ता। तुम्हारा साक्षी होना उन्हें कठोर मालूम होगा।

नहीं, साक्षी होने से काम नहीं चलेगा। यह मौका साक्षी होने का नहीं है तुम्हारे लिए। यह मौका तो है कि तुम और भी प्रेमपूर्ण हो जाओ, और भी करुणा से भर जाओ। एक मौका दिया है उन्होंने, उनको जीतने के लिए। तुम अपने प्रेम को दांव पर लगा दो।

तुम्हारे साक्षी होने से उनके जीवन में कोई अंतर नहीं पड़ेगा। तुम्हारे साक्षी होने से तुम्हारे जीवन में अंतर पड़ सकता है। इसलिए तुम्हारे लिए यह सूत्र मैं देता हूं : उनके प्रति प्रेम से भरो और तुम्हारे प्रेम के उत्तर में वे जो कुछ भी करें, उसके साक्षी रहो। वे पत्थर मारें, गालियां दें, वे तुम्हें घर से निकाल बाहर करें, इसके साक्षी रहो। वे जो कुछ करें, इसके साक्षी रहो, लेकिन तुम्हारा प्रेम उनके प्रति जारी रहे।

ज्यादा देर नहीं लगेगी। आदमी का हृदय बहुत पास है, बहुत दूर नहीं है। जरा टटोलो। अंधेरे में लगता होगा कि बहुत दूर है, लेकिन बहुत दूर नहीं है। और आदमी बड़ी जल्दी पसीजता है। जरा-सी कोशिश तो करो। और प्रेम की कोशिश कभी भी व्यर्थ नहीं जाती। प्रेम का जादू सिर चढ़कर बोलता है।

धन्यवाद।

कोंपलें फिर फूट आईं शाख पर

बारहवां प्रवचन : १५ अगस्त, १९८६, ७.०० संध्या, सुमिला, जुहू, बम्बई

प्रश्न : इस देश में ध्यान को गौरीशंकर की ऊंचाई मिली। शिव, पतंजलि, महावीर, बुद्ध, गोरख जैसी अप्रतिम प्रतिभाएं साकार हुईं। फिर भी किस कारण से ध्यान के प्रति आकर्षण कम होता गया?

मैं अभी-अभी मेंहदी हसन की एक गजल सुन रहा थाः

कोंपलें फिर फूट आईं शाख पर,
कहना उसे न वो समझा है, न समझेगा, मगर कहना उसे...
कोंपलें फिर शाख पर फूट आईं।

संन्यास का यह प्रवाहः कोंपलें फिर शाख पर फूट आईं।

इस देश में ध्यान कभी मरा नहीं। कभी भूमि के ऊपर और, कभी भूमि के भीतर, मगर उसकी गंगा बहती रही सतत, सनातन, आज भी बहती है, कल भी बहेगी और यही एक आशा है मनुष्य की। क्योंकि जिस दिन ध्यान मर जाएगा, उस दिन आदमी भी मर जाएगा। ध्यान में ही आदमी के प्राण हैं। चाहे तुम्हें पता हो या न पता हो, या चाहे तुम जानो या न जानो, ध्यान तुम्हारी अंतरात्मा है। तुम्हारी श्वासों के भीतर जो छिपा है और तुम्हारी धड़कनों के भीतर जो छिपा है, तुम जो हो, वह ध्यान के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं।

लेकिन प्रश्न महत्वपूर्ण है।

इस देश ने जगत को अगर कुछ दिया है, इसका अगर कोई अनुदान है तो वह सिर्फ ध्यान है। फिर चाहे पतंजलि में, चाहे महावीर में, चाहे बुद्ध में, चाहे कबीर में, चाहे नानक में-- नाम बदलते रहे होंगे, लेकिन दान नहीं बदला। अलग-अलग लोगों से, अलग-अलग आवाजों में एक ही पुकार, एक ही अजान हम जगत को देते रहे हैं, और वह ध्यान की। इसलिए स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि गौरीशंकर की ऊंचाइयों को छू लेने के बाद, गौतम बुद्ध की ऊंचाइयों को पहचान लेने के बाद, फिर ध्यान के प्रति इतनी अरुचि भारत के जनमानस में क्यों फैल गई?

देखने में विरोधाभास मालूम होता है। लेकिन मनुष्य का मनोविज्ञान ऐसा है। जो चीज पा ली जाती है, साधारण मनुष्य के मन में उसकी चुनौती समाप्त हो जाती है। अहंकार को चुनौती है उसमें, जो पाया नहीं जाता, जिसे पाना बड़ा मुश्किल है। समझना, थोड़ा बारीक है। हमने देखे महावीर, हमने देखे बुद्ध, हमने देखे पार्श्वनाथ, कबीर और नानक और फरीद और हजारों फकीर। जनमानस में एक बात अचेतन में प्रविष्ट हो गई कि यह ध्यान तो कुछ ऐसी चीज है, कोई भी पा लेता है। इसे पा लेना कोई बहुत बड़ी बात नहीं है। यह फरीद ने पा ली, यह कबीर ने, जुलाहे ने पा ली, यह रैदास चमार ने पा ली। अहंकार को चुनौती मिट गई। धन मुश्किल मालूम पड़ता है, ध्यान आसान मालूम पड़ने लगा। लोग धन के पीछे दौड़ने लगे, लोग पद के पीछे दौड़ने लगे, लोग प्रतिष्ठा के पीछे दौड़ने लगे, जो मुश्किल है उसमें चुनौती है, उसमें अहंकार को भरने की क्षमता है। जो सहज है, जो सुगम है अहंकार के लिए, उसमें कोई आकर्षण नहीं रह जाता। अनेक लोगों के ध्यान के जगमगाते ज्योतिर्मय व्यक्तित्वों ने आम जनता के मन से ध्यान की चुनौती छीन ली। और यूं लगा कि आज नहीं कल पा लेंगे, और कल नहीं तो अगले जन्म में पा लेंगे, ऐसी कोई जल्दी नहीं है। जीवन के क्षणभंगुर सुख पता नहीं कल मिलें न मिलें; जवानी आज है, कल भी होगी, इसका कोई भरोसा नहीं। भरोसा तो इसी का है कि कल नहीं होगी। ध्यान कल भी कर लोगे तो चलेगा। यह तो जवानी, ये जो जवानी की उठती हुई तरंगें-- इन्हें तो आज पूरा कर लो। और ध्यान तो उनको भी मिल जाता है, जिनके पास कुछ भी नहीं।

नग्न महावीर के पास तुमने ध्यान की ज्योति देखी, जूते सीते हुए रैदास के पास हमने ध्यान की आभा देखी। लोगों के मन से ध्यान का आकर्षण जाता रहा। ऐसा लगा कि यह तो कुछ बात ऐसी है कि कभी भी पा लेंगे। लेकिन धन, पद, प्रतिष्ठा -- इस जगत की जो

अनेक-अनेक महत्त्वाकांक्षा की दौड़ें हैं, ये इतनी आसान नहीं। बड़ी प्रतियोगिता, बड़ी गलाघोंट प्रतियोगिता है। इंच-इंच लड़ना, तब कहीं कोई एक व्यक्ति जाकर करोड़ों व्यक्तियों में देश का राष्ट्रपति बन सकेगा। अहंकार का मजा यही है -- कि मैं सबके ऊपर उठ जाऊं। और ध्यान की मुश्किल यह है कि ध्यान कहता है, जो मजा सबके पीछे बैठे रहने में है, वह सबके ऊपर उठ जाने में नहीं। वहां कोई प्रतियोगिता नहीं, वहां कोई तुम्हें धक्का देकर ध्यान में तुमसे आगे नहीं निकल सकता, क्योंकि बात बाहर की नहीं है, बात भीतर की है। वहां तुम बिलकुल अकेले हो। न कोई प्रतियोगिता है, न कोई संघर्ष है, न कोई छीना-झपटी है। अहंकार को कोई मजा नहीं। अहंकार को मृत्यु का डर है। अगर ध्यान में फूल लगे तो अहंकार मरा।अगर ध्यान की ज्योति जली तो अहंकार का दीया बुझा। ये दोनों चीजें एक साथ घटित नहीं हो सकतीं। इनका कोई सह-अस्तित्व नहीं है। या अहंकार या ध्यान। और ध्यान तुम्हारे भीतर है और अहंकार का विस्तार यह सारे जगत में है। अहंकार के बड़े प्रलोभन हैं। ध्यान का प्रलोभन भी क्या?

अहंकार बड़े आश्वासन देता है, पूरे कभी नहीं करता, कर सकता नहीं। अहंकार बिलकुल नपुंसक है।

मैंने एक कहानी सुनी है। एक आदमी को शिव की पूजा करते-करते और रोज शिव का सिर खाते-खाते... क्योंकि पूजा और क्या है, सिवाय सिर खाने के। एक ही धुन, एक ही रट कि हे प्रभु, कुछ ऐसी चीजें दे दो कि जिंदगी में मजा आ जाए। एक ही बार मांगता हूं। मगर देना कुछ ऐसा कि फिर मांगने को ही न रह जाए। परेशानी में, हैरान होकर, क्योंकि सुबह देखे न सांझ यह आदमी, न देखे रात, जब उठे तभी, आधी रात शिव के पीछे पड़ जाए। आखिर इसे वरदान में एक शंख शिव ने उठाकर दे दिया जो उन्हीं के पूजास्थल में इसने रख छोड़ा था। और इससे कहा इस शंख की आज से यह खूबी है कि तुम इससे जो मांगोगे, तुम्हें देगा। अब तुम्हें कुछ और परेशान होने की जरूरत नहीं और पूजा-प्रार्थना की जरूरत नहीं। अब मुझे छुट्टी दो। जो तुम्हें चाहिये, वह इससे ही मांग लेना। यह तत्क्षण देगा। तुमने मांगा और मौजूद हुआ। उसने मांगकर देखा, सोने के रुपये और सोने के रुपये बरस गये। धन्यभाग हो गया। शिव न भी कहते तो भूल जाता। भूल-भाल गया शिव कहां गये, क्या हुआ, उन बेचारों पर क्या गुजरी, इस सबकी कोई फिक्र भी न रही। फिर न कोई पूजा थी, न कोई पाठ। फिर तो यह शंख था और जो चाहिये।

लेकिन एक मुसीबत हो गई। एक महात्मा इसके महल में मेहमान हुए। महात्मा के

पास भी एक शंख था। इसके पास जो शंख था बिलकुल वैसा, लेकिन दोगुना बड़ा। और महात्मा उसे बड़े संभाल कर रखते थे। उनके पास कुछ और न था। उनकी झोली में बस एक बड़ा शंख था। इसने पूछा कि आप इस शंख को इतना सम्हाल कर क्यों रखते हैं? उन्होंने कहा, यह कोई साधारण शंख नहीं, महाशंख है। मांगो एक, देता है दो। कहो, बना दो एक महल– दो महल बनाता है। एक की तो बात ही नहीं। हमेशा।

उस आदमी को लालच उठा। उसने कहा यह तो बड़े गजब की बात है। उसने कहा एक शंख तो मेरे पास भी है मगर छोटा-मोटा। आपने नाहक मुझे दीन-दुखी बना दिया। मैं गरीब आदमी हो गया। जरा देखूं चमत्कार।

उन्होंने कहा, इसका चमत्कार देखना बड़ा मुश्किल है। रात के सन्नाटे में जब सब सो जाते हैं, तब निश्चित मुहूर्त में, अर्धरात्रि के सन्नाटे में इससे कुछ मांगने का नियम है। तुम जागते रहना और सुन लेना।

महात्मा ने शंख से ठीक अर्धरात्रि में कहा, दे दे कोहिनूर। उसने कहा, एक नहीं दूंगा, दो दूंगा। महात्मा ने कहा, भला सही दो दे दे। उसने कहा, दो नहीं चार। किससे बात कर रहा है, कुछ होश से बात करो! महात्मा ने कहा, भई चार ही दे दे। वह महाशंख बोला, अब आठ दूंगा। उस आदमी ने सुना, उसने कहा, हद हो गई, हम भी कहां का गरीब शंख लिये बैठे हैं! महात्मा के पैर पकड़ लिये। कहा आप तो महात्मा हैं, त्यागी, व्रती हैं। इस गरीब का शंख आप ले लो, यह महाशंख मुझे दे दो।

महात्मा ने कहा, जैसी तुम्हारी मर्जी। हम तो इससे छुटकारा पाना ही चाहते थे। क्योंकि इस बेईमान ने हमें परेशान कर रखा है। मांगो कुछ, बकवास इतनी होती है, रात-रात गुजर जाती है। फिर भी वह न समझा कि मामला क्या है? कि वह सिर्फ महाशंख था, कि वह सिर्फ बातचीत करता था, देता-वेता कुछ भी नहीं था। हमेशा संख्या दोहरी कर देता था। तुम कहो चार तो वह कहे आठ, तुम कहो आठ तो वह कहे सोलह। तुम कहो सोलह सही, वह कहे बत्तीस। तुम बोले संख्या कि उसने दो का गुणा किया। बस उसको दो का गुणा करना ही आता था। और उसको कुछ नहीं आता था।

महात्मा तो सुबह चले गये। जब इसने उस शंख से दूसरी रात्रि ठीक मुहूर्त में कुछ मांगा तो उसने कहा, अरे नालायक! क्या मांगता है एक? दूंगा दो। उसने कहा, भई दो दे दो। उसने कहा, दूंगा चार। चार ही दे दो। उसने कहा, दूंगा आठ। सुबह होने लगी। संख्या लम्बी होने लगी। मोहल्ले के लोग इकट्ठे हो गये कि यह हो क्या रहा है? सारा मोहल्ला जग गया कि मामला क्या है। संख्या बढ़ती जाती है, लेना-देना कुछ भी नहीं।

आखिर उस आदमी ने पूछा, भई दोगे भी कुछ कि बातचीत ही बातचीत।

उसने कहा, हम तो महाशंख हैं। हम तो गणित जानते हैं। तुम मांगकर देखो। तुम जो भी मांगो, हम दोगुना कर देंगे।

इसने कहा, मारे गये। वह महात्मा कहां है?

उसने कहा, वह महात्मा हमसे छुटकारा पाना चाहता था बहुत दिन से। मगर वह इस तलाश में था कि कोई असली चीज मिल जाए। वह ले गया असली चीज। अब ढूंढ़ने से न मिलेगा। हम मिला दे सकते हैं। पैर तो नहीं शंख के। मगर फिर भी पैरों को पकड़कर सिर रखकर कहा कि किसी भी तरह महात्मा से मिला दो। कहा, दो से मिलाएंगे। कहा कि हद हो गई। नालायक से पाला पड़ गया। चार से मिलाएंगे। फिर वही बकवास। दो-चार दिन में उस आदमी को पागल कर दिया। शंख ने उससे पूछा कि अरे कुछ मांग। वह आदमी इधर-उधर देखे कि कुछ बोले कि यह दुष्ट फंसाया अपने चक्कर में। बोले कि फंसे। फिर उससे छूटना मुश्किल। फिर पीछा करता आएगा--बत्तीस लेगा? चौंसठ लेगा? लेना-देना बिलकुल कुछ होता ही नहीं।

ध्यान और अहंकार के बीच वही संबंध है। अहंकार महाशंख है। कितना ही मिल जाए और चाहिये। संख्या बढ़ती जाती है। दौड़ बढ़ती जाती है। और आदमी कभी उस जगह नहीं पहुंचा, जहां वह कह सके–आ गई मंजिल। मंजिल हमेशा मृग-मरीचिका बनी रहती है। दूर की दूर। यात्रा बहुत, पहुंचता कहीं भी नहीं। मगर दौड़-धाप बहुत होती है। और चूंकि सारी दुनिया दौड़-धाप कर रही है, इसलिए संघर्ष भी बहुत है। और यह भी मानने का मन नहीं होता कि इतने सारे लोग गलत होंगे। ध्यान के लिए तो कोई कभी बैठता है।

तुमने ख्याल किया एक शब्द पर--बुद्धू? वह बुद्ध से बना है। जो लोग आंख बंद करके बैठ जाते हैं लोग उनको कहते हैं, देखा इस बुद्धू को। बुद्ध बनने चले! बुद्ध बनने चले, बुद्धू बनकर रह जाते। और अपने को पा भी लोगे अगर... अहंकार बहुत तर्कनिष्ठ है। पूछता है अपने को पा भी लोगे तो क्या खाक पा लिया। अरे तुम अपने को तो पाये ही हुए हो। पाना उसे है, जो दूर है। उसे क्या पाना, जो तुम हो ही? और बात तर्क की है। बुद्धि को समझ में आती है। जो मिला ही है, जो जन्म से ही है, जो स्वभाव ही है, उसे क्या खाक पाना! नाहक समय गंवाना। उसे पाने चलो जो दूर है। चांद पर चलो। एवरेस्ट पर चढ़ो।

एवरेस्ट पर चढ़ने का मजा क्या होगा? एडमण्ड हिलेरी को एवरेस्ट की चोटी पर

खड़े होकर क्या मजा मिला होगा ?

मैंने तो कहानी सुनी है, भरोसे योग्य तो नहीं हैं, लेकिन मन करता है कि भरोसा कर लूं कि जब एवरेस्ट पर एडमण्ड हिलेरी, तेनसिंग और अपनी फौज को लेकर पहुंचे तो वहां देखा कि एक साधु महाराज पहले से ही चिलम फूंक रहे हैं। अपनी खोपड़ी ठोंक ली एडमण्ड हिलेरी ने कि मर गये। हिलेरी के पहले कम से कम सौ यात्रीदल मर चुके थे। जिनका कोई पता भी न चला कि वे कहां गये, किन बर्फीले तूफानों में खो गये। यात्रा कठिन थी। बामुश्किल किसी तरह पहुंच पाया यह आदमी और इधर ये महाराज चिलम पी रहे हैं! हद हो गई। पास बैठकर गौर से देखा कि आदमी है कि कोई भूतप्रेत है कि -- क्योंकि न कोई साज-समान है, जो एवरेस्ट पर पहुंचने के लिए जरूरी है, सिर्फ एक चमीटा गड़ा रखा है। चिलम हाथ में है, और धुन में ऐसे हैं कि आंख बंद है। सोचा कि कोई बहुत बड़े महात्मा हैं, सिद्ध पुरुष हैं। शायद सिद्धि के बल पर यहां पहुंच गया हो। एडमण्ड हिलेरी उसके पैरों पर गिर पड़े। पैरों पर गिर पड़े तो महात्मा की जरा झपकी खुली। उन्होंने आंख खोली। जरा गौर से देखा। मामला क्या है ? हिलेरी की चमकती हुई घड़ी पर नजर पड़ी। कहा, ''बच्चा, घड़ी के क्या लेगा ? बहुत दिन से तलाश थी एक अच्छी घड़ी की। वक्त पर आ गया।''

एडमण्ड हिलेरी ने कहा, '' महाराज घड़ी यूं ही ले लें मगर यह तो बताएं कि आप यहां पहुंचे कैसे ?''

उस साधु ने जो कहा.... उसने कहा मैं कैसे पहुंचा ? यही बात तो मैं तुमसे पूछने वाला था कि तुम यहां कैसे पहुंचे ? मुझे तो लोग बुद्धू कहते थे, गांव का गंवार कहते थे। मैं तो यह सिद्ध करने पहुंचा था यहां कि लो एवरेस्ट पर चढ़ने वाला मैं पहला आदमी हूं। इतिहास बनाता हूं। न सही, इतिहास पढ़ा नहीं पढ़ा, मगर इतिहास बनाया। तुम कैसे पहुंचे ?

एडमण्ड हिलेरी ने कहा कि तुमने तो मेरे राज की बात कह दी। यही तो भाव अपना भी है। इतिहास बनाया -- सबसे पहला आदमी। भैया तुम किसी और को मत बताना कि तुम पहले से चमीटा गाड़े दम मार रहे थे।

तो उसने कहा, ''तुम फिकर मत करो। ऐसे कई आये और गये। हम तो यहीं चमीटा गाड़े और दम मारते रहते हैं। और किसको याद रहती है इस दम के मारे कि कौन आया कौन गया। अब घड़ी दे दो और रास्ता लगो।

एवरेस्ट पर चढ़ने का क्या रस हो सकता है ? एवरेस्ट पर चढ़ने की सारी कठिनाई

आदमी उठा सकता है, लेकिन अपने भीतर जाने की जरा-सी कठिनाई उठाने को तैयार नहीं। चांद पर जा सकता है, जिन्दगी को हाथ में लेकर। अभी-अभी जो अंतरिक्ष में जा रहे थे, सात लोग बीच में ही समाप्त हो गये। लेकिन अपने भीतर जाने की बात अहंकार को रुचती नहीं।

तुमने पूछा है-- भारत ने ऊंचाइयां छुई हैं ध्यान की, फिर क्या हुआ, फिर कौन सी दुर्घटना घटी, फिर भारत के मानस में ध्यान के प्रति क्यों अरुचि हो गई ?

उन शिखरों को छू लेने के कारण ही। जब इतने लोगों ने शिखर छू लिए, तो भारत के अहंकार को अब उस दिशा में जाने के लिए कोई आकांक्षा न रही। इसलिए भारत जिस बुरी तरह भौतिकवादी हो गया आज, जमीन पर कोई भी देश इतना भौतिकवादी नहीं है। यूं हम लाख बातें अध्यात्म की करते हों, लेकिन हमारा सारा अध्यात्म सिर्फ बकवास है। महाशंख की बकवास। यथार्थ में हम निपट भौतिकवादी हैं। पांच वर्ष पश्चिम के सारे देशों में घूमने के बाद अब मैं यह बात अपने अनुभव के आधार पर कह सकता हूं कि इतना भौतिकवादी समाज दुनिया में और कहीं भी नहीं है। जिस जोर से तुम पैसे को पकड़ते हो, उतने जोर से पैसे को कोई भी नही पकड़ता। लोग पैसे को खर्च करते हैं, पकड़ते नहीं। लोग पैसे को जीते हैं, जकड़ते नहीं। लोग पैसे का उपयोग करते हैं, तुम तिजोड़ियों में बन्द करते हो। पैसा तिजोड़ियों में बन्द है या तिजोड़ी खाली है, इससे क्या फर्क पड़ता है। तुम कभी उसका उपयोग तो करोगे नहीं।

मैंने सुना है-- एक आदमी के पास दो सोने की ईंटें थीं। उसने बगीचे में उनको गड़ा रखा था। गड़ा तो रखा था, लेकिन जान वहीं लगी रहती थी। दिन में दो-चार बार वहां चक्कर लगा आता था। रात भी नींद नहीं आती थी। पत्नी बहुत बार कहे कि मामला क्या है जी ? जब देखो तब चले-- और उसी कोने में मरते हो! वहीं तुम्हारी कब्र खुदवा दूंगी। और क्या देखने जाते हो ? मुझको तो वहां कुछ दिखाई पड़ता नहीं। अब वह बोले भी तो क्या बोले ? वह तो गड़ी हुई ईंटें देखने जाता था। किसी ने उखाड़े तो नहीं। कोई गड़बड़ तो नहीं, कोई आशंका तो नहीं। आखिर पत्नियां भी तो कोई पत्थर तो नहीं हैं, कब तक यह खेल रोज देखती ?

एक दिन भैया छुट्टी पर गये थे। क्या खाक छुट्टी पर गये होंगे। खयाल तो ईंटों का ही बना था। पत्नी ने मौका देखकर खुदाई करवायी--दो सोने की ईंटें! उसने कहा, अरे! राज हाथ में आ गया। ईंटें तो उसने निकाल लीं। दो साधारण ईंटें उनकी जगह रखकर गड्ढा पुरवा दिया। ठीक-ठीक, जैसा था वैसा ही स्थान बनवा दिया।

पतिदेव लौट भी आये। अब भी दिन में चार चक्कर लगाना! रात में कितने चक्कर लगाना-- वह चलता रहा। और जब भी वह जाएं तो पत्नी हंसे। उन्हें बड़ी हैरानी हुई, क्योंकि पहले तो वह बहुत नाराज होती थी, गालियां बकती थी। उल्टी-सीधी बातें कहती थी--"तुम्हारी खोपड़ी तो दुरुस्त है? तुम काहे के लिए वहां जाते हो? उस कोने तुम्हारे बाप-दादा गड़े हैं?" अब देखो चुप रहती है और सिर्फ मुस्कुराती है! हंसी को दबाती है! कुछ राज समझ में आता नहीं।

यह कुछ महीने चला। एक दिन शक हुआ कि मामला कुछ ज्यादा ही है। क्योंकि पत्नी अब बात ही नहीं करती उस कोने की। छह दफे जाओ, बारह दफे जाओ, रात भर वहीं बैठे रहो, वह मजे से सोती है। सो उसने खोद कर देखा। ईंटें तो मिलीं, मगर सोने की न थीं। तब राज समझ में आया। लौटकर अन्दर आया और पत्नी से कहा, "क्यों... ईंटें कहां हैं?"

पत्नी ने कहा, "तुम्हें क्या फर्क पड़ता है? खर्च तो करनी नहीं। गड़ाकर रखनी हैं। सो सोने की हैं कि मिट्टी की हैं -- क्या भेद? तुम्हें तो चक्कर लगाने हैं, सो लगा आओ। रही सोने की ईंटों की बात, सो खर्चा हो चुका।"

स्त्रियां खर्चा करना जानती हैं। पतिदेव को देखो तो लगता है कि भीख मांगते हैं या क्या करते हैं। पत्नी को देखो तो राजरानी बनी है। दोनों को साथ देखो तो साफ समझ में आ जाता है कि इनके कारण ये भिखमंगे हो रहे हैं, इनके कारण यह राजरानी बनी है। यह समझौता है। ऐसे दोनों चक्के साथ-साथ चलते हैं। बैलगाड़ी चल रही है।

लेकिन उस आदमी को बड़ा बोध हुआ। यह सोच कर कि वह महीनों से मिट्टी की ईंटों के चक्कर काट रहा है! बात सिर्फ मान्यता की थी। समझता था सोने की हैं। उस रात चक्कर काटना चाहा, लेकिन काटने का कोई मतलब न रहा।

इस देश में लोग पैसे को दबाकर रखते हैं और सोचते हैं, अध्यात्मवादी हैं, क्योंकि खर्चा नहीं करते। पश्चिम में लोग जो कमाते हैं, नरक में सड़ेंगे। और तुम, तुम अपनी भारी तिजोड़ी लिए एक दम स्वर्ग में चले जाओगे। तुम यहां भी सड़ रहे हो, वहां भी सड़ोगे। वे कम से कम यहां तो मजा ले रहे हैं। आगे की आगे देखी जाएगी। अभी इतनी जल्दी भी क्या है?

भारत ने ध्यान के शिखर छुए। यही भारत का दुर्भाग्य हो गया। कभी-कभी सौभाग्य दुर्भाग्य बन जाता है। मुझसे पश्चिम में वैज्ञानिकों ने, डाक्टरों ने, सर्जनों ने, संगीतज्ञों ने, साहित्यकारों ने, न मालूम कितने लोगों ने यह पूछा कि जब भी हम भारत आपसे मिलने

आये तो भारतीय लोगों ने, जो हमसे परिचित थे, जिनके यहां हम मेहमान हुए थे, हमारी हंसी उड़ाई, खिल्ली उड़ाई-- क्या तुम ध्यान के पीछे पड़े हो! क्या रखा है ध्यान में? सारा पूरब तो पश्चिम जा रहा है सीखने विज्ञान। और तुम भी एक छटे पागल हो -- तुम्हें धुन चढ़ी है ध्यान की! और हमने इस देश में ध्यान के बड़े-बड़े शिखर भी देखे तो क्या फायदा हुआ? लोग तो भूखों मर रहे हैं। तुम्हें भी भूखों मरना है? अभी भी लौट जाओ। कुछ बिगड़ा नहीं।

भारत के मन में -- वह जो विशाल भारत की जनता है उसके मन में -- ध्यान की जगह और चीज़ों ने ले रखी है। धन में उसे रस है, पद में उसे रस है, प्रतिष्ठा में उसे रस है। और आज पश्चिम में ध्यान के प्रति विराट रस पैदा हुआ है।

संन्यासियों ने जो कम्यून अमरीका में खड़ा किया था, उसको अमरीका की सरकार के मिटाने के पीछे और कोई राज नहीं, सिर्फ एक राज था। और वह राज यह था कि कम्यून अमरीका की प्रतिभा को अपनी ओर आकर्षित कर रहा था। जितने प्रतिभाशाली लोग थे, वे किसी न किसी रूप में कम्यून के प्रति आकर्षित हो रहे थे। और कम्यून--एक भय अमरीका की सरकार के मन में पैदा करने लगा कि अगर लोग इस तरह बैठकर शांत ध्यान करने लगे तो तीसरे महायुद्ध का क्या होगा? अगर लोग ध्यान से भर कर प्रेम से भर गये तो वह जो अमरीका का साम्राज्य सारी दुनिया में फैला हुआ है, उसका क्या होगा? अगर लोगों के मन में पद, प्रतिष्ठा और धन की दौड़ न रही, तो अमरीका की जो आज ताकत है, डालर, वह हवा में विलीन हो जायगा। एक छोटी सी कम्यून पांच हजार लोगों की, उनके लिए इतनी ज्यादा कष्टप्रद हो गई कि उसे हर हालत में मिटाना है, उसे बिलकुल नेस्तनाबूद कर देना है। बुलडोजर चलवा कर, जहां कम्यून था वहां पुराना रेगिस्तान वापिस ले आना है। रेगिस्तान को हमने पांच साल मेहनत करके एक मरूद्यान बना दिया था। उस मरूद्यान को मिटा देना है।

जिस दिन मैं कम्यून में पहले दिन पहुंचा था, वहां एक पक्षी नहीं था। ऐसा प्रतीत होता है कि पक्षी और जानवर आदमी से ज्यादा समझदार हैं। धीरे-धीरे पक्षी आने शुरू हो गये। धीरे-धीरे हिरणों के झुण्ड के झुण्ड आने शुरू हो गये। और हिरण तुमने भी देखे होंगे। मैंने भी देखे हैं। लेकिन कम्यून में हिरणों ने जो समझ दिखलाई, वह हैरानी की थी। बीच रास्ते पर खड़े होंगे, तुम कार का हार्न बजाए जाओ, वे हटने वाले नहीं। उन्हें मालूम है कि ये उन लोगों की जमात है, जो किसी को चोट नहीं पहुंचाते। उतरो नीचे गाड़ी से, धक्के दो उनको, तब वे रास्ता छोड़ेंगे। और चूंकि अमरीका में हिरणों को मारने के लिए

हर साल दस दिन के लिए छुट्टी मिलती है। उन दस दिनों में जितने हिरण तुम्हें मारने हो, मार सकते हो। तो आसपास जितने दूर-दूर से हिरण आ सकते थे, वे सब कम्यून में आ गये। कम्यून के पास जगह थी। कोई 126 वर्गमील जगह थी। हजारों हिरण अपने आप चले आये। जैसे कोई आंतरिक संदेश है कि यहां कोई फिक्र नहीं। यहां उन्हें कोई पत्थर भी मारने वाला नहीं है। यहां उन पर गोली नहीं चलेगी।

कम्यून ने अमरीका का कोई भी नुकसान नहीं किया था। सिर्फ एक मरुस्थान को जीवित मरूद्यान बनाया। लेकिन यही तकलीफ की बात हो गई, क्योंकि जो लोग वहां थे, वे ध्यान के लिए इकट्ठे हुए थे। और अगर ध्यान अमरीका की प्रतिभा को पकड़ ले-- और निश्चित पकड़ लेगा, कम्यून के मिटने से कोई फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि अमरीका ठीक उस अवस्था में है, जो हमसे उल्टी है। उन्होंने धन के शिखर छू लिए हैं। अब धन में वहां आकर्षण नहीं है। इसलिए ऊपर से तुम्हें दिखाई पड़ता है कि उनके पास इतना धन है। लेकिन धन में वहां किसी को आकर्षण नहीं है। कम्यून में ऐसे संन्यासी थे, जिन्होंने एक करोड़ रुपया दान दे दिया, जो कि उनकी पूरी सम्पत्ति थी। एक पैसा भी पीछे नहीं बचाया कि कल क्या होगा। दो सौ करोड़ रुपये कम्यून के बनाने में सिर्फ संन्यासियों ने दिये। हमने किसी और के सामने हाथ नहीं फैलाया और न किसी से भीख मांगी। दो सौ करोड़ रुपये देते वक्त किसी ने किसी से कोई आग्रह नहीं किया... लोगों के पास पैसा है। और यह भी समझ में आ गया कि पैसे से जो भी खरीदा जा सकता है, वह दो कौड़ी का है। कुछ और भी है, जो पैसे से नहीं खरीदा जा सकता है। और अब उसी की तलाश है, उसी की प्यास है, उसी की खोज है, उसी की अभीप्सा है। ध्यान उस सबका इकट्ठा नाम है। उसमें प्रेम जुड़ा है। उसमें करुणा जुड़ी है। ध्यान तो एक मंदिर है, जिसके बहुत द्वार हैं। उसमें वह सब जुड़ा है, जो पैसे से नहीं खरीदा जा सकता।

पश्चिम में अपूर्व रूप से ध्यान के प्रति आकर्षण है, क्योंकि पश्चिम ने कभी भी ध्यान के शिखर नहीं छुए -- न कोई गौतम बुद्ध, न कोई कबीर, न कोई रैदास। पश्चिम की आत्मा खाली है। हाथ भरे हैं, प्राण शून्य हैं। इस स्थिति ने पश्चिम के मन में धन के प्रति एक विकर्षण पैदा कर दिया और भारत में ध्यान के प्रति एक विकर्षण पैदा कर दिया।

जिन्दगी का चक्र बहुत अद्‌भुत है। इस बात का बहुत डर है कि पूरब पश्चिम हो जाए और पश्चिम पूरब हो जाए।

भारतीय पार्लियामेण्ट में विरोधी पार्टी के नेता के द्वारा पूछे गये प्रश्न के उत्तर में संबंधित मंत्री ने जवाब दिया था कि भगवान को या उनके किसी संन्यासी को भारत आने

से नहीं रोका जाएगा। यह अफवाह कि उनके संन्यासियों को भारत आने से रोका जाएगा, झूठी है। मैंने कुछ संन्यासियों को अलग-अलग देशों में भारतीय राजदूतावासों में भेजा। एथेन्स में राजदूतावास में पूछा गया कि भारत किसलिए जाना चाहते हो? तो जो संन्यासिन वहां गई थी, उसने कहा ध्यान करने के लिए। और तुम हैरान होओगे कि उत्तर राजदूत ने यह दिया कि ध्यान, योग इत्यादि के लिए अब भारत में कोई स्थान नहीं। हमें इस तरह के यात्री नहीं चाहिये।

जो युवती गई थी, उसे मैंने खबर की कि तुम राजदूत से कहो कि हमें लिखित उत्तर चाहिए। यह जो तुम कह रहे हो, वह लिखित दो। मगर भारत की नपुंसकता ऐसी है कि लिखने की हिम्मत भी नहीं, कि यह लिखकर हम नहीं देंगे! क्योंकि मैं चाहता था कि लिखित उत्तर हो तो हम साबित कर सकेंगे कि पार्लियामेण्ट में जो मिनिस्टर बोला, वह झूठ बोला। यहां रोज पुलिस सुबह से लेकर शाम तक चक्कर मार रही है। दिन में चार-चार, पांच-पांच बार व्यर्थ सूरज प्रकाश को परेशान कर रहे हैं-- कि यहां कितने विदेशी ठहरे हुए हैं? अगर तुम्हें विदेशियों को मेरे पास आने देने से कोई एतराज नहीं है, यह तुम पार्लियामेण्ट में कहते हो तो कुछ तो ईमान रखो। फिर यहां पुलिस भेजने की क्या जरूरत? और विदेशियों से तुम्हें इतनी घबड़हट क्या है? अगर वे ध्यान सीखने भारत आ भी रहे हैं तो तुम्हारी तो उनके धन पर नजर होनी चाहिये। तुम्हें तो ध्यान से कुछ लेना-देना नहीं है। आ रहे हैं तो कुछ धन खर्च करके ही जाएंगे। तो भारत के भिखमंगों की झोली में कुछ पैसे डालकर ही जाएंगे।

लेकिन नहीं। कारण यह है कि अमरीका जोर दे रहा है कि भारत किसी को भी ध्यान सीखने के लिए न आने दिया जाए। क्योंकि पश्चिम में एक घबड़ाहट है और वह घबड़ाहट यह है कि अगर लोग ध्यान में उत्सुक हो जाएं तो वह जो फिजूल के कामों में उनको लगा रखा है, उनमें उनकी अरुचि हो जाएगी। एक अजीब हालत है दुनिया की। पश्चिम की आकांक्षा है कि ध्यान की यात्रा करे। वहां की सरकारें उस आकांक्षा को रोकने की पूरी चेष्टा कर रही हैं। यहां पूरब ने ध्यान के आकाश को छुआ है, वह हमारी वसीयत है। सरलता से हम उसे वापिस उपलब्ध कर सकते हैं। लेकिन हम अपनी वसीयत को इन्कार कर रहे हैं! हम जैसे अंधों की दुनिया और दूसरी शायद ही हो। और खास कर मेरे पास किसी को आने से रोकना निहायत अपराध है। क्योंकि मैं संन्यास को संसार-विरोधी नहीं मानता और न ही ध्यानी को चाहता हूं कि घर-द्वार छोड़कर हिमालय भाग जाए।

मेरी चेष्टा इतनी भिन्न है पुरानी चेष्टाओं से कि शायद भारत के राजनीतिक नेता, या पश्चिम के राजनीतिक नेता उसे समझने में समर्थ भी नहीं हैं। मेरी चेष्टा है कि तुम दोनों यात्राओं पर एक साथ जा सकते हो। क्योंकि दोनों यात्राएं एक-दूसरे की दुश्मन नहीं हैं। ध्यान तुम्हें भीतर ले जाता है और जितने तुम भीतर जाते हो, उतनी ही तुम्हारी प्रतिभा निखरती है। और जितनी तुम्हारी प्रतिभा निखरती है, उतनी तुम बाहर की दुनिया में सफलता की यात्रा कर सकते हो। मैं बाहर और भीतर को दुश्मन नहीं मानता। वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इसलिए न तो भारत की सरकार को मुझसे डरने की जरूरत है और न अमरीका या यूरोप की सरकारों को मुझसे डरने की जरूरत है। मुझसे तो उन्हें बिलकुल निर्भय होना चाहिए। सच तो यह है कि अगर वे मुझे रोकते हैं तो वे अपनी-अपनी कौम और अपने-अपने राष्ट्र के साथ गद्दारी कर रहे हैं। और उन लोगों के हाथों में उन्हें धकेल रहे हैं, जो जीवन-विरोधी हैं। वे जो चाहते हैं, उससे उलटा ही परिणाम होगा। उन्हें मेरी अनूठी और अद्वितीय जीवन-शैली का कोई अंदाज नहीं। मैं यह कह रहा हूं कि ठीक संसार में रहते हुए तुम ईश्वर के मंदिर बन सकते हो और फिर मंदिर जितना सुंदर बन सके, सोने का बन सके, हीरे-जवाहरातों से जड़ा हुआ बन सके, उतना अच्छा।

मेरे भीतर कोई विरोध नहीं है बाहर और भीतर में। हां, अतीत में यह बात सच थी कि जो लोग बाहर रहने के लिए उत्सुक थे, वे भीतर का विरोध करते थे। उनके दिन लद गये। अब उनके मरे हुए संस्कारों को क्यों ढो रहे हो? और क्या दुनिया में कोई नई बात नहीं होने दोगे?

मेरा प्रयोग नया है। इसे किसी पुराने प्रयोग से जोड़ने की कोई जरूरत नहीं। मैं चाहता हूं प्रत्येक व्यक्ति सर्वांगीण रूप से समृद्ध हो। भीतर भी स्वर्ग का साम्राज्य हो और बाहर भी।

प्रश्न : भगवान श्री, उस दिन आपने कहा, मैं अराजवादी हूं, अनार्किस्ट हूं। इसे स्पष्ट करने की कृपा करें।

मैं व्यक्ति का सम्मान करता हूं और व्यक्ति मेरे लिए अंतिम इकाई है। उसकी स्वतंत्रता जीवन का परम मूल्य है। इसलिए जितना कम उसके ऊपर संगीनों का दबाव हो, जितना कम उसके ऊपर नियमों का दबाव हो, जितना कम उसके ऊपर दूसरों

द्वारा लादा हुआ अनुशासन हो, उतना शुभ। मैं व्यक्ति को मुक्त देखना चाहता हूं। और मैं चाहता हूं कि व्यक्ति को शिक्षण ऐसा मिले कि उसकी स्वतंत्रता के साथ ही साथ उसके जीवन में उत्तरदायित्व के फूल भी खिलें।

राज्य की जरूरत क्या है? राज्य की जरूरत इसीलिए है कि व्यक्ति बेईमान हैं, व्यक्ति चोर हैं, व्यक्ति हत्यारे हैं। जरा सोचो, राज्य की जरूरत तुम्हारा अपमान है। जितना ज्यादा राज्य जरूरी है, उतना ही ज्यादा तुम्हारा अपमान है। सड़कों पर खड़े हुए सिपाही, अदालतों की बड़ी-बड़ी इमारतें, ये सब तुम्हारे गौरव नहीं हैं। यह इस बात की सूचक है कि तुम भरोसे के योग्य नहीं हो। तुम्हें नियंत्रण में रखने के लिए बंदूकों पर भरोसा रखा जाएगा, तलवारों पर भरोसा रखा जाएगा, हिंसा पर भरोसा रखा जाएगा।

मैं अराजकवादी हूं इस अर्थ में कि मैं व्यक्ति को उसकी उस परम आभा में देखना चाहता हूं, जहां उसका खुद का चैतन्य, उसके खुद का बोध, उसके जीवन को अनुशासन देता हो ताकि बाहर से किसी अनुशासन की कोई जरूरत न रह जाए। नहीं, यह काम कोई एक दिन में हो जाएगा... और शायद यह काम कभी पूरा हो भी न पायेगा। लेकिन यह सौभाग्य है कि दुनिया में सपने देखने वाले लोग पैदा होते रहे हैं और होते रहेंगे। और हम जहां आज हैं, उन्हीं सपने देखने वाले लोगों की वजह से हैं। जो कुछ थोड़ी-बहुत गंध, थोड़ी-बहुत सुवास, कभी कहीं किसी फूल का खिल जाना, और कभी कहीं किसी दीप का जल जाना घटता है। यह उन लोगों की अनुकंपा है, जिन्होंने सपने देखे। शायद उनके जीवन में पूरे न हो पाये, लेकिन बीज वे जो बो गये, कभी न कभी कोई बरखा का झोंका, कभी न कभी कोई जमीन उन बीजों को फूल बना देती है। मैं यह समझता हूं कि शायद ही वह दिन आये, जब कि राज्य की बिलकुल जरूरत न रह जाए। लेकिन मेरी अन्तरात्मा यह मानने को तैयार नहीं होती, मेरी अन्तरात्मा फिर भी आशा करती है कि कभी न कभी वह दिन आएगा, जरूर वह सुबह होगी, रात अभी अंधेरी है तो क्या हुआ, रात बहुत लम्बी है तो क्या हुआ, सबेरा देर से नहीं हुआ तो क्या हुआ, हर रात की सुबह है, इस रात की भी सुबह होगी। दूर सही, बहुत दूर सही, मगर इस बात की आशा भी कि हम मनुष्य को इतनी जागरूकता दे सकते हैं कि सड़कों पर से पुलिसवालों की कोई जरूरत न रह जाए। हम इतनी शांति मनुष्य को दे सकते हैं कि अदालतों की कोई जरूरत न रह जाए, कि हम मनुष्य को इतना बोध दे सकते हैं कि वे किसी दूसरे मनुष्य के ऊपर, उसकी सीमाओं पर अतिक्रमण न करें। राज्य की जरूरत क्षीण होती जाएगी, क्षीण होती जानी चाहिए। जैसे-जैसे व्यक्ति जागे, वैसे-वैसे राज्य विदा हो। और यह तो एक

काल्पनिक दिन की बात है कि जिस दिन दुनिया का हर व्यक्ति बुद्धत्व की जगमगाहट से भरा होगा और यह जमीन, पूरी जमीन आदमियों की ज्योतियों से जगमग होगी, दीपावली होगी, उस दिन राज्य की कोई जरूरत न रह जाएगी, कहीं कोई जरूरत न रह जायेगी, न राजनीतिज्ञों की कोई जरूरत रह जाएगी। यह सीधा-सा सवाल है। अगर लोग बीमार पड़ना बन्द हो जाएं तो डाक्टरों की कोई जरूरत नहीं रह जाती।

एक सुबह बाजार जाते हुए मुल्ला नसरूद्दीन को उसके डाक्टर ने पकड़ लिया और कहा कि हद हो गई आज, चार महीने हो गये तकाजा करते हुए। मैंने तुम्हारे लड़के को ठीक किया। न तो तुमने मेरी फीस चुकाई, न दवाओं के पैसे चुकाए, मैं दवाखाना चलाता हूं या कोई धर्मादा चलाता हूं।

नसरूद्दीन ने कहा, ''देखो, बात को ज्यादा मत बढ़ाओ। असलियत बहुत कड़वी होती है।'' डाक्टर ने कहा, ''वाह, चोर उल्टे कोतवाल को डांट रहा है!''

भीड़ इकट्ठी हो गई। बाजार का मामला। और इस देश में कोई दो आदमियों को बातचीत थोड़े ही करने देता है। और ऐसी रसभरी बातचीत। नसरूद्दीन ने चिल्लाकर कहा कि भाइयो आ जाओ, सब आ जाओ, सब सुन लो। असलियत सुनाए देता हूं।

डाक्टर ने कहा, ''तुम हो कैसे आदमी! मैं अपनी फीस मांग रहा हूं, किसी असलियत की सुनने का कोई सवाल नहीं है। तुम मानते हो या नहीं कि मैंने तुम्हारे लड़के को ठीक किया, दवा दी, चार दफा देखने आया?''

नसरूद्दीन ने कहा, वह तो ठीक। लेकिन सारे स्कूल में चेचक की बीमारी किसने फैलाई? मेरे लड़के ने। और तुमने जो कमाई की है उसमें कमीशन किसका? एक भले आदमी की तरह मैं तुम्हारे घर नहीं आया, कि सोचा तुम खुद कमीशन भेज दोगे। अकल तुममें थोड़ी होगी। मेरा लड़का और आगे भी काम पड़ेगा। आखिर मेरा लड़का है। अरे जब कहोगे, तब बीमारी फैला देगा। मगर धंधे जैसी बात करो।''

डाक्टर ने कहा, ''धंधा? तुम्हारा मतलब है, मैं तुम्हें कुछ पैसे दूं?''

नसरूद्दीन ने कहा, ''मतलब, पैसा जनाब, रुपयों की बातें करो। स्कूल में कम से कम पांच सौ लड़के हैं। और मेरे अकेले लड़के ने वह मेहनत की चेचक फैलाने की। कुछ तो खयाल करो, कुछ तो आदमी जैसा व्यवहार करो। हिसाब-किताब की बात करो। पांच सौ लड़कों से कितने पैसे वसूल किये हैं। सबका हिसाब लेकर आ जाना। और अगर कल तक तुम न पहुंचे तो याद रखना मैं कांग्रेस का पुराना आदमी हूं। परसों से तुम्हारे द्वार पर हड़ताल कर दूंगा। और सारे गांव को पता चल जायेगा कि बेईमान डाक्टर

एक गरीब आदमी को लूट रहा है!''

वह डाक्टर बोला, ''भैया! तू मेरे साथ आ। अन्दर चल। दवाखाने के भीतर बैठकर बात कर लेंगे। जो कुछ तय करना हो कर लेंगे। ठीक है रुपयों की बात है तो रुपयों की बात कर लेंगे, मगर भीतर चल। यहां भीड़भाड़ में चर्चा मत कर। गांव में और भी डाक्टर हैं, भारी कम्पीटीशन है।''

दुनिया में बीमारी है तो डाक्टरों की जरूरत है। सिर्फ चीन एक देश है, जहां पांच हजार वर्षों से एक अनूठा नियम है। और जब भी पहली दफा उस नियम के संबंध में समझने की कोशिश करो तो हैरानी होगी। नियम यह है कि हर व्यक्ति को निजी रूप से किसी डाक्टर से संबंधित होना होगा। और हर महीने उस डाक्टर को कुछ बंधी हुई फीस देनी होगी, क्योंकि उस महीने वह बीमार नहीं पड़ा। जिस महीने वह बीमार पड़ेगा, उस महीने डाक्टर को उसकी फीस नहीं मिलेगी। उल्टे डाक्टर को उसके घर के खर्च के लिए, पत्नी और बच्चों के लिए इंतजाम करना पड़ेगा। हैरानी की बात मालूम पड़ती है। लेकिन बात बहुत मनोवैज्ञानिक है। डाक्टर का फर्ज है कि आदमी स्वस्थ रहे। और अगर वह उसको स्वस्थ नहीं रख सकता तो जुर्माना उसे चुकाना चाहिये। स्वास्थ्य का वह दाम ले सकता है।

सारी दुनिया में उल्टा है। हम यहां बीमारी के दाम देते हैं। और यह खतरनाक बात है कि आदमी की बीमारी के ऊपर डाक्टर को जिन्दा रहना पड़ता है। इसका मतलब हुआ कि हम उससे एक ऐसा काम करवा रहे हैं, जो विरोधाभासी है। मरीज जितनी देर तक मरीज रहे, उतनी देर तक डाक्टर को फायदा है। और डाक्टर का फर्ज यह है कि वह मरीज को जल्दी से जल्दी ठीक करे। यह तुम कैसे चक्कर में डाक्टर को डाल रहे हो?

एक युवक शिक्षा पाकर घर वापिस लौटा। डाक्टर हो गया। उसने अपने बाप से कहा, ''अब आप चिंता न करें। (बाप भी डाक्टर था।) अब आप निश्चिन्त हों। जिन्दगी भर आपने मेहनत की। अब मैं आ गया। अब मैं दवाखाना संभाल लूंगा।'' पिता ने कहा, ''ठीक है। तीन दिन का तुम्हें मौका देता हूं। देखता हूं, कैसे तुम संभालते हो। तीन दिन मैं छुट्टी पर आराम करता हूं।''

तीन दिन बाद लड़के ने बाप को खबर दी कि आप जानकर खुश होंगे कि जिस करोड़पति बुढ़िया को आप बाइस साल में ठीक नहीं कर पाये, मैंने तीन दिन में ठीक कर दिया। बाप ने अपनी खोपड़ी ठोंक ली। और कहा कि अगर इस तरह धंधा चला तो तेरे छोटे भाइयों का क्या होगा, तेरे बच्चे पैदा होंगे, उनका क्या होगा? उसी बुढ़िया पर तो

तेरी सारी शिक्षा पूरी हुई। उसी बुढ़िया के सहारे तो सारी शान-शौकत है। दरवाजे पर कार खड़ी है, बंगला है, बगीचा है, बच्चे अच्छे से अच्छे स्कूलों में पढ़ रहे हैं। नालायक! तीन दिन में तूने उसी बुढ़िया को ठीक कर दिया! हो गई प्रैक्टिस। कल से मुझे आना पड़ेगा। तुम्हारी हैसियत कम्पाउण्डर से ज्यादा की नहीं। अभी डाक्टर होने में तुम्हें वर्षों लगेंगे। अनुभव की बात है। धीरे-धीरे सीखोगे। अभी सिर्फ किताबें पढ़ी हैं। अभी जिन्दगी नहीं देखी है।

और यह बात सच है। गरीब आदमी बीमार पड़ता है तो जल्दी ठीक हो जाता है। वही दवाएं। अमीर आदमी बीमार होता है तो बड़ी देर लगती है। ठीक ही नहीं होता। बात और बिगड़ती ही चली जाती है, और भी स्पेशालिस्ट चाहिये और एक्स-रे चाहिये और नये एक्सपर्ट चाहिये। मामला फैलता ही चला जाता है। लेकिन मामला बिलकुल साफ है। अगर धन तुम्हारे पास है तो संभलकर बीमार होना। धन पास न हो, बेफिक्री से बीमार होना। गरीब आदमी जब चाहो, तब बीमार होओ, कोई हर्जा नहीं। मगर पैसे वाले आदमी को बहुत सोच-समझकर कदम रखना चाहिये, फूंक-फूंक कर कदम रखना चाहिये। यह मामला खतरे का है।

ठीक वही बात है। तुम अचेतन हो, बेहोश हो, इसलिए राज्य की जरूरत है और इसलिए राजनीतिज्ञ विरोधी हैं उन सब बातों के, जो तुम्हें होश से भर दें। उसकी मुझसे क्या दुश्मनी है? यही दुश्मनी है कि मैं उन सूत्रों की चर्चा कर रहा हूं, जो लोगों को होश से भर दे, जो लोगों को चेतना दे, जो लोगों की आत्मा को जगाये, जो लोगों को ठीक-ठीक अर्थों में बोध दे, और अपने बोध से जीने की हिम्मत दे। राज्य व्यर्थ हो जाता है, राजनीतिज्ञ व्यर्थ हो जाते हैं। उनकी कोई जरूरत नहीं रह जाती है। और वे अपनी जरूरत बनाए रखना चाहते हैं। वे नहीं चाहते कि आदमी ध्यान से भरे, या आदमी के जीवन में समाधि विस्तीर्ण हो।

तुम सोच सकते हो मैं एक रात भर के लिए इंग्लैंड में एअरपोर्ट पर रुकना चाहता था। क्योंकि मेरा हवाई जहाज बारह घंटे की उड़ान ले चुका था और पायलट को नियम के अनुसार इससे ज्यादा हवाई जहाज उड़ाने की आज्ञा नहीं है। तो सिर्फ छह घंटे के लिए, बारह बजे रात, सिर्फ इंग्लैंड के हवाई अड्डे पर विश्रामगृह में, जहां कोई भी यात्री रुक सकता है। लेकिन इंग्लैंड की पार्लियामेंट और इंग्लैंड की गवर्नमेंट पहले ही निश्चय कर चुकी थी कि मुझे इंग्लैंड में प्रवेश न दिया जाए। और आश्चर्य की बात तो यह है कि एअरपोर्ट के लाउंज में प्रवेश देश में प्रवेश नहीं है। मगर अधिकारी--और अधिकारी

अंधे होते हैं। मैंने लाख समझाया एअरपोर्ट के लाउंज में प्रवेश इंग्लैंड में प्रवेश नहीं है। यह अंतर्राष्ट्रीय एअरपोर्ट है। अन्यथा इसको अंतर्राष्ट्रीय होने का क्या मतलब, अगर यह इंग्लैंड है? और एअरपोर्ट के इस लाउंज से बाहर जाने का कोई दरवाजा नहीं है। छह घंटे मुझे सोना है। सुबह उठते ही मैं अपनी यात्रा पर निकल जाऊंगा। तुम्हें परेशानी क्या है?

वह बोला, ''मुझे कोई परेशानी नहीं है। मैं खुद परेशान हूं कि क्यों तुम्हें रोक रहा हूं। लेकिन यह फाइल। ऊपर से आज्ञाएं हैं कि मुझे हर तरह से परेशान किया जाए। और अगर मैं रुकने की जिद करूं तो मुझे जेल में रखा जाए, मुझे विश्रामालय में न ठहरने दिया जाए। क्योंकि यह आदमी खतरनाक है।''

मैंने कहा, ''तुम खुद ही सोचो, आदमी मैं निश्चित खतरनाक हूं। न मेरे पास बम है, न कोई बंदूक है पर आदमी मैं फिर भी खतरनाक हूं। मगर इस विश्रामालय में सोते हुए छह घंटे में मैं क्या खतरा कर सकता हूं? फाइल में दर्ज था कि यह आदमी खतरनाक है, इसकी मौजूदगी देश की नैतिकता नष्ट कर सकती है, इसकी मौजूदगी देश का धर्म नष्ट कर सकती है, इसकी मौजूदगी युवकों के मन को प्रभावित कर सकती है। यह आदमी बौद्धिक रूप से अति तेजस्वी है। इसलिए इसे इंग्लैंड में प्रवेश न दिया जाए। बौद्धिक रूप से तेजस्वी होना अपराध है? और छह घंटे एअरपोर्ट पर सो कर मैं ये सारे काम करूंगा या नींद लूंगा? देश की नैतिकता भ्रष्ट करूंगा, जिसको वे दो हजार साल में स्थापित कर पाये हैं, उसको मैं छह घंटे की नींद में नष्ट कर दूंगा।

नहीं, भय दूसरे हैं जो बताये नहीं जा रहे हैं। और जो बताया जा रहा है वह कुछ बात और है। भय है कि लोगों के पास क्षमता है। सिर्फ उन्हें याद दिलानी है। और क्षमता की यह खूबी है कि चाहे तुम दो हजार साल तक उसे भुलवाये रखो, वह एक क्षण में याद दिलाई जा सकती है। जैसे कोई भूली-बिसरी याद वर्षों याद न आई हो और कभी मौका पड़ जाए तो तुम कहते हो कि यूं जबान पर रखी है। याद है, जबान पर है मगर पकड़ में नहीं आ रही। और जितनी तुम कोशिश करते हो याद करने की उतना ही मुश्किल मालूम पड़ता है, बड़ी बेचैनी मालूम पड़ती है। उस घड़ी की बेचैनी बड़ी ज्यादा होती है क्योंकि पक्की तरह से मालूम है, नाम जबान पर रखा है यह भी समझ में आ रहा है, नाम क्या है किसी तल पर यह भी याद है और फिर भी उस तल तक पहुंचने में कुछ बाधा पड़ रही है। कुछ दीवालें खड़ी कर दी गई हैं। कुछ स्मृतियां बीच में आकर अड़ गई हैं। कुछ दरवाजे बन्द हो गये हैं। कुछ खिड़कियां बन्द हो गई हैं। रास्ता नहीं मिल रहा है कि उस स्मृति तक

कैसे पहुंचा जा सके। और फिर परेशान हो कर तुम छोड़ देते हो। बगीचे में चले जाते हो, वृक्षों को पानी देने लगते हो। और अचानक गुलाब की झाड़ी पर पानी को डालते हुए अचानक तुम्हें याद आ जाता है। और इतनी कोशिश से अटक गया था और बिना कोशिश के याद आ गया। जब तुम कोशिश कर रहे थे तो तनाव से भरे थे। जब तुमने कोशिश छोड़ दी, तुम शिथिल हो गये। और याद को उभर आने का मौका आ गया।

इसलिए एक लिहाज से वे ठीक हैं। उन्होंने दो हजार साल में भी जो धर्म खड़ा किया है वह झूठा है; जो नैतिकता लोगों को दी है वह असत्य है, क्योंकि उस नैतिकता से कोई नैतिक नहीं हुआ। जेलें बढ़ती चली गई हैं। कानून बढ़ते चले गये हैं। कानूनविद बढ़ते चले गये हैं। अदालतें बढ़ती चली गई हैं। अगर उन्होंने जो नैतिकता लोगों को दी थी, वह सच थी, सफल थी तो घटौती होनी चाहिये थी। मगर घटौती नहीं हुई है। और इसलिए उनका डर ठीक है। क्योंकि मैं तुम्हें उस बात की याद दिलाना चाहता हूं जो तुम्हारा स्वभाव है, जिसको उन्होंने ढांक रखा है न मालूम कितने पर्दों से। मगर उस स्वभाव को ऊपर उठाने में क्षण भर में भी, एक छोटे पल में भी सफलता पायी जा सकती है। मुझे अपनी याद है। मेरी मौजूदगी में मैं तुम्हें तुम्हारी याद दिला सकता हूं। मेरा दीया जल रहा है। अचानक तुम्हें भी याद आ सकती है कि तुम्हारे दीये का क्या हुआ? जरा-सी खोज और जो ऊपर से थोपा गया है वह यूं गिर जाता है जैसे कभी थोपा ही न गया हो।

मैं अराजकवादी हूं क्योंकि मैं व्यक्तिवादी हूं। व्यक्ति के पास आत्मा है और आत्मा में ही जीवन का सारा सत्य है, जीवन का सारा अमृत है। और मैं यह एक ही आकांक्षा, एक ही अभीप्सा रखता हूं कि व्यक्ति के भीतर इतना जागरण हो कि उसे किसी राज्य की, किसी कानून की, किसी बाहरी अनुशासन की कोई जरूरत न रह जाए। दूर....कहीं क्षितिज के पार....किसी दिन यह घटना शायद घटे। मगर हम सपना तो देख सकते हैं। कम से कम सपनों पर तो बेड़ियां नहीं हैं और एक अच्छा सपना एक बुरी असलियत से लाख दर्जा बेहतर होता है।

प्रश्न : भगवान श्री, अपराध, दण्ड और अपराधभाव की समस्याएं समय और स्थान के भेद से बदलती रहती हैं। लेकिन वे किसी न किसी रूप में सदा और सर्वत्र मनुष्य का पीछा करती हैं। क्या इन पर प्रकाश डालने की अनुकंपा करेंगे?

मैं कह रहा था कि जैसे-जैसे चैतन्य बढ़ जाए वैसे-वैसे राज्य की कोई

जरूरत न रह जाएगी। यह प्रश्न उसी का आनुषंगिक प्रश्न है। राज्य की इसीलिए आवश्यकता न रह जाएगी, क्योंकि अपराध सिर्फ अचेतन आदमी करता है। होश से भरे हुए आदमी से अपराध नहीं होता। होश से भरे हुए आदमी से न अपराध होता है, न दोष की कोई धारणा पैदा होती है।

यह सच है कि सदियों-सदियों से अपराध की, दोष की, अपराधी होने की धारणाएं बदलती रही हैं। लेकिन किसी न किसी रूप में, नये-नये रूपों में छाया की तरह मौलिक रूप से अपराधभाव मनुष्य का पीछा करता रहा है। वह तुम्हारी ही छाया है। और जब तक तुम अपने भीतर रोशनी से न भर जाओ, तब तक उस छाया के मिटने का कोई उपाय नहीं है। यूं देखो युधिष्ठिर को हमने धर्मराज कहा है। जमाना और था, हवा और थी। युधिष्ठिर जुआ खेल सकते हैं और फिर भी धर्मराज हो सकते हैं। और जुआ भी कोई ऐसा-वैसा जुआ नहीं, जिसमें सब हार जाते हैं, अपना सब कुछ हार जाते हैं, तो अपनी औरत को भी दांव पर लगा देते हैं, जिससे सिद्ध होता है कि उनके मन में स्त्रियों के प्रति भी सिवाय वस्तुओं के ज्यादा और कोई भाव न था। वे भी चीजें थीं। मकान दांव पर लगा दिया, महल दांव पर लगा दिया, औरत भी दांव पर लगा दी। वह भी एक परिग्रह थी, एक वस्तु थी और फिर भी भारत के पूरे इतिहास में कोई भी प्रश्न नहीं उठाता कि हम इस आदमी को धर्मराज कैसे कहे चले जाते हैं? और ये अगर धर्मराज के ढंग हैं तो हद हो गई, तो फिर अधर्मराज के ढंग क्या होंगे? लेकिन उस समय, उस काल में जुआ खेलना वैसा ही था जैसे क्रिकेट खेलना या टेनिस खेलना। कहीं कोई अड़चन न थी जुआ खेलने में। जुआ खेलने में कहीं कोई बुराई न थी।

उसी पुरानी याददाश्त को हिन्दू अभी भी दोहराये चले जाते हैं। हर दिवाली की रात थोड़ा-सा जुआ खेल लेते हैं। साल भर न सही, एक रात सही, बहुत ज्यादा न सही थोड़ा-सा सही, दस पांच रुपयों का दांव लगाया। मगर अपने बाप-दादों से तो जुड़े रहते हैं। अपनी परंपरा का तो गौरव रखते हैं। याद दिलाते रहते हैं अपने आपको कि हम भी युधिष्ठिर के वंशज हैं। मौका पड़ जाए तो अपनी औरत को भी अभी भी दांव पर लगा सकते हैं। नहीं लगाते यह और बात। क्योंकि औरतें खतरनाक हो गई हैं और उल्टे हमीं को दांव पर लगा दें। जमाना बदल गया है, बाकी इरादे नहीं बदले। लेकिन सारी मान्यताओं के पीछे मौलिक एक ही बात है कि आदमी अचेतन है। युधिष्ठिर को ख्याल में भी नहीं आया है कि वह जो कर रहे हैं वह अज्ञान है और स्त्री को दांव पर लगाना, स्त्री का अपमान है। उसे मनुष्य के तल से नीचे गिराकर वस्तुओं के तल पर ले जाना है। इसे

कभी भी क्षमा नहीं किया जा सकता।

वही बात हजारों उदाहरणों से तुम्हें मिल सकती है। आज भी तुम बहुत से काम कर रहे हो जो तुम्हें लगते हैं ठीक हैं। कल आने वाले लोग उन्हीं कामों पर तुम्हें अपराधी ठहराएंगे। यह कहानी जारी रहेगी तब तक, जब तक कि हम अधिकतम मात्रा में लोगों को जागरूकता की स्थिति में नहीं ले आते हैं।

जागरूकता का केवल इतना ही अर्थ होता है कि मैं कोई भी ऐसा कृत्य न करूं जिससे किसी का अधिकार छिनता हो, और किसी के भी व्यक्तित्व की सीमा का उल्लंघन होता हो। मैं कोई भी ऐसा कृत्य न करूं जिसे मुझे छुपाना पड़े। मैं कोई भी ऐसा कृत्य न करूं जिसके लिए मुझे कभी भी पछताना पड़े। जागरूक व्यक्ति के समक्ष ये सारी बातें अपने आप उपस्थित रहती हैं। इन सबसे छनकर उसके जीवन की क्रिया अपराध से, अपराध की छाया से मुक्त हो जाती है।

ओ के मैत्रेय।

भगवान श्री रजनीश
का हिन्दी साहित्य

उपनिषद

1.	सर्वसार उपनिषद (सा)	40.00
2.	कैवल्य उपनिषद (सा)	40.00
3.	अध्यात्म उपनिषद (डी)	75.00
4.	अध्यात्म उपनिषद (सा)	50.00
5.	कठोपनिषद (डी)	70.00
6.	असतो मा सद्गमय (सा)	25.00
7.	ईशावास्योपनिषद (सा)	15.00

कृष्ण

1.	गीता-दर्शन अध्याय 1-2 (डी)	65.00
2.	गीता-दर्शन अध्याय 3 (सा)	25.00
3.	गीता-दर्शन अध्याय 4-5 (डी)	65.00
4.	गीता-दर्शन अध्याय 6 (डी)	65.00
5.	गीता-दर्शन अध्याय 7-8 (डी)	65.00
6.	गीता-दर्शन अध्याय 8 (सा)	25.00
7.	गीता-दर्शन अध्याय 9-10 (डी)	65.00
8.	गीता-दर्शन अध्याय 10 (सा)	35.00
9.	गीता-दर्शन अध्याय 10 (डी)	50.00
10.	गीता-दर्शन अध्याय 11 (सा)	25.00
11.	* गीता-दर्शन अध्याय 12	
12.	* गीता-दर्शन अध्याय 13-14	
13.	गीता-दर्शन अध्याय 15-16 (डी)	60.00
14.	गीता-दर्शन अध्याय 15-16 (सा)	40.00
15.	* गीता-दर्शन अध्याय 17	
16.	गीता-दर्शन अध्याय 18 (डी)	100.00
17.	गीता-दर्शन अध्याय 18 (सा)	60.00
18.	कृष्ण मेरी दृष्टि में : भाग 1 (सा)	25.00

19.	कृष्ण मेरी दृष्टि में : भाग 2 (सा)	25.00

अष्टावक्र

1.	महागीता भाग 1 (सा)	25.00
2.	*महागीता भाग 2 (सा)	
3.	*महागीता भाग 3 (सा)	
4.	*महागीता भाग 4 (सा)	
5.	*महागीता भाग 5 (सा)	35.00
6.	महागीता भाग 6 (डी)	50.00
7.	महागीता भाग 7 (डी)	50.00
8.	महागीता भाग 8 (डी)	50.00
9.	महागीता भाग 9 (डी)	50.00

महावीर

1.	महावीर-वाणी भाग 1 (सा)	25.00
2.	महावीर-वाणी भाग 2 (सा)	25.00
3.	* महावीर-वाणी भाग 3 (सा)	50.00
4.	जिन-सूत्र भाग 1 (डी)	80.00
5.	जिन-सूत्र भाग 1 (सा)	50.00
6.	जिन-सूत्र भाग 2 (डी)	80.00
7.	जिन-सूत्र भाग 2 (सा)	50.00
8.	जिन-सूत्र भाग 3 (सा)	50.00
9.	जिन-सूत्र भाग 4 (डी)	60.00
10.	महावीर या महाविनाश (सा)	15.00
11.	महावीर मेरी दृष्टि में भाग 1 (सा)	25.00
12.	महावीर मेरी दृष्टि में भाग 2 (सा)	25.00

लाओत्से

1.	ताओ उपनिषद भाग 1 (सा)	40.00
2.	*ताओ उपनिषद भाग 2	
3.	ताओ उपनिषद भाग 3 (डी)	75.00
4.	ताओ उपनिषद भाग 3 (सा)	45.00
5.	ताओ उपनिषद भाग 4 (डी)	70.00
6.	ताओ उपनिषद भाग 5 (डी)	75.00
7.	ताओ उपनिषद भाग 6 (डी)	75.00

बुद्ध

1.	एस धम्मो सनंतनो भाग 1 (डी)	80.00
2.	एस धम्मो सनंतनो भाग 1 (सा)	50.00
3.	*एस धम्मो सनंतनो भाग 2 (सा)	50.00
4.	एस धम्मो सनंतनो भाग 3 (डी)	80.00
5.	एस धम्मो सनंतनो भाग 3 (सा)	50.00
6.	एस धम्मो सनंतनो भाग 4 (डी)	75.00
7.	एस धम्मो सनंतनो भाग 5 (डी)	75.00
8.	एस धम्मो सनंतनो भाग 6 (डी)	75.00

झेन, सूफी और उपनिषद की कहानियां

1.	बिन बाती बिन तेल (सा)	50.00
2.	सहज समाधि भली (सा)	50.00
3.	दिया तले अंधेरा (डी)	75.00
4.	दिया तले अंधेरा (सा)	50.00

1.	*भक्ति-सूत्र भाग 1 (नारद) (सा)	
2.	*भक्ति-सूत्र भाग 2 (नारद) (डी)	50.00
3.	भक्ति-सूत्र भाग 2 (नारद) (सा)	30.00
4.	*भज गोविन्दम (आदि शंकराचार्य) (सा)	
5.	*समाधि के सप्तद्वार (ब्लावट्सकी)	
6.	साधना-सूत्र (मेबिल कॉलिन्स) (सा)	25.00
7.	*तत्वमसि (पत्र-संकलन)	
8.	शिव-सूत्र (सा)	20.00
9.	अथातो भक्ति जिज्ञासा भाग 1 (शांडिल्य) (डी)	70.00
10.	अथातो भक्ति जिज्ञासा भाग 2 (शांडिल्य) (डी)	70.00

संत वाणी

1.	*सुनो भाई साधो (कबीर) (सा)	
2.	*कहे कबीर दिवाना (कबीर) (सा)	
3.	*मेरा मुझमें कुछ नहीं (कबीर) (सा)	

4.	कहे कबीर मैं पूरा पाया (**कबीर**) (सा)	30.00
5.	होनी होय सो होय (**कबीर**) (डी)	50.00
6.	पिव-पिव लागी प्यास (**दादू**) (सा)	50.00
7.	पिव-पिव लागी प्यास (**दादू**) (सा)	30.00
8.	सबै सयाने एक मत (**दादू**) (सा)	30.00
9.	*अकथ कहानी प्रेम की (**फरीद**)	
10.	*बिन घन परत फुहार (**सहजोबाई**) (सा)	30.00
11.	जगत तरैया भोर की (**दयाबाई**) (डी)	50.00
12.	जगत तरैया भोर की (**दयाबाई**) (सा)	30.00
13.	*गूंगे केरी सरकरा (**कबीर**)	
14.	*कस्तूरी कुण्डल बसे (**कबीर**)	
15.	एक ओंकार सतनाम (**नानक**) (सा)	50.00
16.	*मैंने राम रतन धन पायो (**मीरा**)	
17.	झुक आई बदरिया सावन की (**मीरा**) (डी)	50.00
18.	कन थोरे कांकर घने (**मलूकदास**) (डी)	50.00
19.	कन थोरे कांकर घने (**मलूकदास**) (सा)	30.00
20.	रामदुवारे जो मरे (**मलूकदास**) (डी)	50.00
21.	कानों सुनी सो झूठ सब (**दरिया**) (डी)	50.00
22.	अमी झरत बिगसत कंवल (**दरिया**) (डी)	60.00
23.	अजहूं चेत गंवार (**पलटू**) (डी)	70.00
24.	सपना यह संसार (**पलटू**) (डी)	75.00
25.	काहे होत अधीर (**पलटू**) (डी)	80.00
26.	नहीं सांझ नहीं भोर (**चरणदास**) (डी)	50.00
27.	जस पनिहार धरे सिर गागर (**धरमदास**) (डी)	50.00
28.	का सोवै दिन रैन (**धरमदास**) (डी)	50.00
29.	संतो मगन भया मन मेरा (**रज्जब**) (डी)	65.00
30.	हरि बोलो हरि बोल (**सुन्दरदास**) (डी)	50.00
31.	ज्योति से ज्योति जले (**सुन्दरदास**) (डी)	65.00
32.	नाम सुमिर मन बावरे (**जगजीवन**) (डी)	50.00
33.	अरी, मैं तो नाम के रंग छकी (**जगजीवन**)	50.00
34.	कहै वाजिद पुकार (**वाजिद**) (डी)	50.00
35.	मरो हे जोगी मरो (**गोरख**) (डी)	75.00
36.	सहज योग (**सरहपा-तिलोपा**) (डी)	75.00
37.	बिरहिनी मंदिर दियना बार (**यारी**) (डी)	50.00
38.	दरिया कहै सब्द निरबाना (**दरियादास बिहारवाले**) (डी)	60.00
39.	प्रेम-रंग रस ओढ़ चदरिया (**दूलन**) (डी)	50.00
40.	हंसा तो मोती चुगै (**लाल**) (डी)	50.00
41.	गुरु-परताप साध की संगति (**भीखा**) (डी)	50.00
42.	मन ही पूजा मन ही धूप (**रैदास**) (डी)	50.00
43.	झरत दसहुं दिस मोती (**गुलाल**) (डी)	80.00

प्रश्नोत्तर

1.	नहीं राम बिन ठांव (डी)	60.00
2.	नहीं राम बिन ठांव (सा)	40.00
3.	प्रेम-पंथ ऐसो कठिन (डी)	60.00
4.	उत्सव आमार जाति, आनंद आमार गोत्र (डी)	50.00
5.	मृत्योर्मा अमृतं गमय (डी)	50.00
6.	प्रीतम छवि नैनन बसी (डी)	65.00
7.	रहिमन धागा प्रेम का (डी)	60.00
8.	उड़ियो पंख पसार (डी)	50.00
9.	सुमिरन मेरा हरि करें (डी)	50.00
10.	पिय को खोजन मैं चली (डी)	50.00
11.	साहेब मिल साहेब भये (डी)	60.00
12.	साहेब मिल साहेब भये (सा)	30.00
13.	जो बोलैं तो हरिकथा (सा)	30.00
14.	बहुरि न ऐसा दांव (सा)	30.00
15.	ज्यूं था त्यूं ठहराया (डी)	65.00
16.	ज्यूं था त्यूं ठहराया (सा)	30.00
17.	ज्यूं मछली बिन नीर (सा)	30.00
18.	दीपक बारा नाम का (सा)	30.00
19.	अनहद में बिसराम (सा)	30.00

20.	लगन महूरत झूठ सब (सा)	30.00
21.	सहज आसिकी नाहिं (सा)	30.00
22.	पीवत रामरस लगी खुमारी (सा)	25.00
23.	रामनाम जान्यो नहीं (सा)	35.00
24.	सांच सांच सो सांच (सा)	25.00
25.	आपुई गई हिराय (सा)	30.00
26.	बहुतेरे हैं घाट	90.00

पुराने प्रवचन

1.	जिन खोजा तिन पाइयां (सा)	30.00
2.	मैं मृत्यु सिखाता हूं (सा)	45.00
3.	साधना-पथ (सा)	30.00
4.	नेति-नेति (सा)	20.00
5.	सम्भोग से समाधि की ओर (सा)	30.00
6.	भारत के जलते प्रश्न (सा)	25.00
7.	योग दर्शन भाग 1-2 (सा)	25.00
8.	असतो मा सद्गमय (सा)	25.00
9.	मैं कहता आंखन देखी भाग 2 (सा)	25.00
10.	देख कबीरा रोया (डी)	30.00
11.	* शिक्षा में क्रांति (सा)	

पाकेट बुक्स

1.	तंत्र-सूत्र भाग 1	7.00
2.	तंत्र-सूत्र भाग 2	7.00
3.	तंत्र-सूत्र भाग 3	7.00
4.	तंत्र-सूत्र भाग 4	7.00
5.	तंत्र-सूत्र भाग 5	7.00
6.	तंत्र-सूत्र भाग 6	7.00
7.	ध्यान-सूत्र	7.00
8.	चेति सके तो चेति	4.00
9.	चल हंसा उस देश	4.00
10.	कहा कहूं उस देस की	4.00
11.	पंथ प्रेम को अटपटो	4.00
12.	क्या सोवै तू बावरी	4.00
13.	आत्म-पूजा उपनिषद भाग 1	5.00
14.	आत्म-पूजा उपनिषद भाग 2	5.00
15.	आत्म-पूजा उपनिषद भाग 3	5.00
16.	माटी कहे कुम्हार सूं	5.00
17.	* हसिबा खेलिबा धरिबा ध्यानं	
18.	* रजनीश ध्यान योग	
19.	* रजनीश ध्यान दर्शन	
20.	* नये समाज की खोज	
21.	* जीवन ही है प्रभु	
22.	योग-दर्शन भाग 5	5.00
23.	योग-दर्शन भाग 6	5.00
24.	योग-दर्शन भाग 7	5.00
25.	योग-दर्शन भाग 8	5.00
26.	* केनोपनिषद भाग 1	
27.	* केनोपनिषद भाग 2	

भगवान श्री रजनीश का साहित्य जो अब उपलब्ध नहीं है :

1. अमृत-कण
2. अज्ञात के आयाम
3. अवधिगत संन्यास
4. अहिंसा दर्शन
5. आचार्य रजनीशः समन्वय विश्लेषण संसिद्धि
6. बिखरे फूल
7. भगवान मार्ग और मैं
8. ढाई आखर प्रेम का
9. घाट भुलाना बाट बिनु
10. हंसना मना है
11. ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया
12. जो घर बारे आपना

13. जीवन क्रान्ति के फूल
14. जीवन क्रान्ति की दिशा
15. कुछ ज्योतिर्मय क्षण
16. क्रांति की नई दिशा, नई बात
17. क्या है मार्ग? ज्ञान भक्ति या कर्म
18. काम योग धर्म और गांधी
19. मिट्टी के दीये
20. महावीर और मैं
21. मुल्ला नसरुद्दीन
22. मेडिसिन और मेडीटेशन
23. महावीरः परिचय और वाणी
24. नये संकेत
25. न आंखों देखा न कानों सुना
26. प्रेम के पंख
27. प्रेम के फूल
28. प्रेम है द्वार प्रभु का
29. पूर्व का धर्मः पश्चिम का विज्ञान
30. परिवार नियोजनः एक दार्शनिक चिन्तन
31. पद घुंघरू बांध
32. प्रेम के स्वर
33. पाथेय
34. सिंहनाद
35. शान्ति की खोज
36. सत्य की पहली किरण
37. समाधि के द्वार पर
38. सूली ऊपर सेज पिया की
39. समुंद समाना बुंद में
40. संसार के कदम परमात्मा की ओर
41. सारे फासले मिट गये
42. व्यस्त जीवन में ईश्वर की खोज
43. विवाह और परिवार
44. योगः नये आयाम

अन्य पॉकेटबुक्स

अमृत की दिशा
अंतर्यात्रा
आप कहां हैं?
अनंत जीवन की ओर
आठ पहर यों झूमते
अमृत-द्वार
अपने मांहि टटोल
आंखों देखी सांच
असंभव क्रांति
आनंद-गंगा
अमृत-वर्षा
आऊंगा न जाऊंगा (अप्रकाशित)
भारत, गांधी और मैं
चेतना का विज्ञान
चित चकमक लागै नहीं
चेतना का सूर्य
दरिया देखे जानिए
एक नया द्वार
गहरे पानी पैठ
काम, ध्यान, अध्यात्म
क्रांति-बीज
क्या ईश्वर मर गया है?
करुणा और क्रांति
मैं कौन हूं?
महावीर : अहिंसा, अहंकार और मोक्ष
महावीर : भोग और त्याग
महावीर : प्रेम और सेक्स
महावीर : ब्रह्मचर्य, कर्मवाद और पुनर्जन्म
मैं कहता आंखन देखी
मिट्टी के दीये

मृत्यु है द्वार अमृत का
नव-संन्यास क्या?
नये भारत की ओर
नारी और क्रांति (अप्रकाशित)
नानक दुखिया सब संसार
नये भारत की खोज
प्रभु की पगडंडियां
गिरह हमारा सुन्न में
जीवन-रस-गंगा
जीवन-दर्शन
ज्योतिष : अद्वैत का विज्ञान
जीवन-मृत्यु
जीवन-संगीत
जीवन की खोज
जीवन-रहस्य
जीवन-गीत
सूली ऊपर सेज पिया की
सुख नहीं, आनंद
शून्य के पार
शून्य की नाव
सत्य की खोज
संघर्ष
पथ के प्रदीप
प्रेम और विवाह
पथ की खोज
प्रेम-गंगा
प्रभु मंदिर के द्वार पर
प्रेम-दर्शन
पानी केरा बुदबुदा (अप्रकाशित)
रोम-रोम रस पीजिए
समाजवाद से सावधान
समाजवाद अर्थात आत्मघात
संभावनाओं की आहट

शून्य का दर्शन
संभोग समाधि एक समान
समुंद समाना बुंद में
शून्य समाधि
संबोधि के क्षण
त्याग
तमसो मा ज्योतिर्गमय
युवक और सेक्स
यौन शक्ति
योग मोक्ष मार्ग (अप्रकाशित)

***पुस्तकें अब आउट आफ प्रिंट हैं**
(सा) सामान्य संस्करण (डी) डीलक्स संस्करण

पाक्षिक प्रकाशन :	वार्षिक शुल्क	प्रकाशन तिथि
रजनीश टाइम्स (हिन्दी)	60 रुपये	11 तथा 25
रजनीश टाइम्स (अंग्रेजी)	60 रुपये	11 तथा 25

साहित्य की समस्त जानकारी, आर्डर एवं राशि भेजने के लिए सम्पर्क सूत्र :

रजनीशधाम
17, कोरेगांव पार्क, पूना - 411 001 (महाराष्ट्र)
फोन : 60953, 60954, 60963